वेदान्तपरिभाषा.

भाषाटीकासमेता.

ॐ

वेदान्तपरिभाषा.

काशीनिवासि निर्मल पं० स्वामिगोविन्दसिंहजी
निर्मित आर्यभाषा विवृति विभूषिता.

सेयम्
क्षेमराज श्रीकृष्णदास
इत्यनेन
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशिता.
मुंबई.
संवत् १९६७, शक १८२२.

Printed at the Shri Venkateshwar
Steam Press:—BOMBAY.

काशीनिवासिनिर्मल पं० स्वामी गोविन्दसिंहजी साधुः ।



अथ भाषाटीकोपेतावेदान्तपरिभाषाकी–भूमिका ।

इस विविध प्राणिपूरिताखण्डदण्डायमान प्रचण्ड प्रपञ्चप्रवाहमें प्रवाहक परेशके लीलालेशवशात् प्रत्यहं अनेकानेकभावोंका प्रादुर्भाव तिरोभाव तथा अनन्तानन्त प्राणियोंके जन्मजरामरणादि को यह जीव अनुभव करता हुआ भी स्वयं मोहमदिरा उन्मत्त होकर अपनेको औरोंसे स्वाभाविक ही कुछ विलक्षण प्रकृति का मानताहै । यद्यपि यह विचार इसका कदाचित् किसी एक अंशमें यथार्थ ही है. तथापि जिस अंशमें यह यथार्थ है उस तात्पर्य्य का इसको कभी स्वप्नभी नहीं है, किन्तु यह वृथा ही अपनी मूढतासे अवश्यंभावि अनवस्थित पदार्थों में सुस्थित बुद्धि करता हुआ गुञ्जापुञ्जगत पावकप्रमितिवत् मनमाने आशामोद-कोंसे दीर्घकालतक मुदित रहता है। स्वकीय परम प्रेमास्पदीभूत धनधान्यादि पुत्र कलत्र परिवारसे परिवारित होकर इन्द्रादिकोंके ऐश्वर्य्य को तथा यमराजादि कों की यातना को भी सपरिकर तुच्छ समझता है परन्तु ऐसा वह कौन है? जो जिस का यहाँ स्वाभिलाषाअनुरूप सर्वथा स्वरूप बना रहे जो कल था सो आज नहीं, जो आजहै सो प्रातर्न होगा. बस इसी तरहसे प्रत्येक कृत्रिमभाव पदार्थोंका स्वरूप क्षणक्षण में और का और होता चला जाता है.यहां चींटीसे लेकर चतु-र्मुखतक की एकही कांटे में तुलना हुआ करतीहै. बड़े २ ऋषि, महर्षि, मुनि, महामुनि, योगि, यति, सिद्ध, तपस्वी, पीर, पैगंबर औलिये तथा अवतार या साक्षात् परमेश्वर स्वरूप जिन्होंने अपने को जाना या लोगोंने माना उनके अनुरोध का भी यहां तृण या क्षणमात्रतक अवसर नहीं है. विशेष इतना ही है कि, असाधारण बल वीर्य्य असाधारण साहस असाधारण संयम या विचित्र चरित्र तथा विलक्षण विचारादिकों को देख सुनकर यथा सम्भव प्राणिपुञ्ज उनका अनुसरण करने लगजाता है. या उनसे किसी एक विषय में दबनेही लग जाता है तो वे अपनी वर्तमानदशा में कतिपय जनसन्तान पर अपना स्वाराज्यसा जमा कर शेष में इतर साधारण प्राणियों की तरह विवश वर्तिसे होकर सर्वप्रिय कायकुहर का परित्याग कर जाते हैं । परन्तु भावि प्रजाके

हृदयों पर जनश्रुति परम्परा प्राप्त उनके सद्गुण समुदायके अङ्क ऐसे दृढरूपसे अङ्कित होजाते हैं कि, उचित समय पर उनके निराकरण करने का सामर्थ्य ब्रह्मा विष्णु महेश तथा बृहस्पति में भी होना दुर्घट है. उनकी प्रतिष्ठा, उनके सन्मान, उनके प्रेम, उनके गुणानुवाद, उनके हृदय ग्राही भावों के आगे सहस्रों लक्षों तथा करोडों जनसमुदाय में इतर साधारणों की प्रतिष्ठा सन्मान प्रेम गुणगणकीर्तन तथा हृदयग्राहीभाव निष्फल या असार से दीखने लगजाते हैं. दीर्घकालके व्यतीत होनेसे भी उनके जन्मदिनोंके उत्सव तथा मरण दिनों के शोक प्रतिवर्ष भावि नूतन प्रजाके स्वच्छ स्वान्तों में उसी प्रचलित धर्म्मके मानों पौधे से बोया करते हैं. अनेक लोग उनके विचारों तथा आचारों के अनुकरण करते हुए या विशेष रूप से अनुगामि होते हुए अपनी अपनी सद्गोष्ठि में धर्मप्रयुक्त गौरव को लाभ करते हैं । उनके सदुपदेशोंके वशवर्ति होना, उनके वचनोंके पावन्द होना, उनके अप्रतिहत विचारों के आगे अपने विचारों को तुच्छ समझना, उनके परम उदार पवित्र चरित्रों को गाय गायकर गद्गद होना, तथा उनके अव्याहत नाम पर आत्म समर्पण करना यह आबाल वृद्ध तथा आरङ्क राजा महाराजाओंका सहज धम होताहै. अनेक लोग राजदण्डोंसे दण्डित नहीं होते अनेकलोग कुलपरम्परागत दण्डोंसे दण्डित नहीं होते बहुतसे लोग शत्रुप्रयुक्त दण्डोंसे दण्डित भी नहीं होते. एवं अनेक लोग विविधरोगप्रयुक्त दण्डोंसे दण्डित भी नहीं होते. ऐसेही बहुतेरे लोग क्रूर प्राणी प्रयुक्त दण्डोंसे दण्डित भी नहीं होते परन्तु संसारभरमें ऐसा एक मनुष्यभी मिलना कठिन है, जो कि किसी ना किसी महानुभावके प्रबलदण्डसे दण्डित न हो. भाव यह किं, राजशासना को लोग नमाने तो ना माने, मातापिताकी शासनाको ना मानें, तो ना मानें स्वस्वजातिगणकी शासना, यमराजकी शासना तथा परमेश्वरके अस्तित्वको भी ना माने तो ना माने, परन्तु उक्त महानुभावोंके विषयमें किसीको इनकार करने का कदापि साहस नहीं होता. अन्तर केवल इतनाही है कि, किसी जनसमुदायके हृदयके भाव किसी महानुभाव की ओर आकर्षित हैं तथा दूसरे जनसमुदायके दूसरे की तरफ. परन्तु उन महानुभावोंमें पर्य्यवस्थित विश्वव्यापिनी आकर्षणशक्ति सन्निकर्षसे असन्निकृष्ट होने की सम्भावना एक जन्तुमात्रमें होनी भी दुर्घट है. कारण इसमें यही है कि, प्रायः पुरुष पुद्गल से लेकर परम प्रवीण पण्डितावधि प्रत्येक प्राणी प्रायः अपना २ कुछ ना कुछ जैसा तैसा अभिप्राय लक्ष्य उपास्य या उद्देश्य अवश्य रखताहै. परन्तु उसकी कल्पना यह स्वयं नहीं कर सकता. इसलिये किसी विशेष कल्पक के उपकारोंसे

उपकृत होकर आजन्म उसको अपना उपास्य या आश्रय मान लेता है ऐसे कल्पक पुरुष एक दो चार या दस वीस हुए हों सो नहीं है किन्तु इस अनादि संसारचक्रप्रवाह में असंख्यात हुए हैं । जिनके आचार विचारों चरित्रोंकी तो क्या कथा है? नामतक स्मरण होना कठिन है । पश्चात् होनेवाले प्रभावशाली महापुरुषोंके स्वच्छ विचारोंके आगे प्राचीन महापुरुषोंके कतिपय विचार विशेष रूपसे प्रचार भी पाते हैं तथा अनेक प्रकारके विचार दब भी जाते हैं दीर्घ कालसे या तदीय विचारोंके निर्मूल हो जानेसे उन प्राचीनोंका नाम भी अस्तप्राय हो जाता है फिर नवीन शिक्षाके प्रचारसे नवीनधर्मके उपदेशोंसे नवीन युक्ति युक्त कथनसे आकर्षित हुआ जनसमुदाय का सरल स्वान्त अपनी वंशपरम्परामें दीर्घकालतक उसी नूतन आचार्य्यउक्त धर्मको प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है इसी तरहके अनादि प्रचलित प्रवाहमें धर्म शासनाके प्रवर्तक आचार्य्यलोग प्रायः दो तरहके होते चले आते हैं । एक वे लोग हैं, जो कि अपने विचारोंको सर्वथा स्वतन्त्र मानते हैं अर्थात् अपने विचारोंके अनुकूल चाहो किसी साधारणका वचन भी हो तो प्रमाणक मानते हैं । परन्तु अपने विचारोंसे विपरीत ब्रह्माका वचन भी हो तो नहीं स्वीकार करते । दूसरे वे लोग हैं, जो कि अपने विचारों को स्वतन्त्र नहीं मानते; किन्तु परम प्राचीन शब्दप्रमाणके पराधीन मानते हैं । यहां पर यदि विचार किया जाय तो यथासम्भव उभयत्र ही पोल प्रतीत होता है । क्योंकि स्वतन्त्र विचारवालोंसे यदि यह पूँछा जाय कि, आपके स्वतन्त्र विचार यथार्थ हैं, इसमें क्या प्रमाण है? तो वे सिवाय इसके कि हमारी बुद्धि इसीको मानती है, और कुछ नहीं कह सकते. और यदि बुद्धिपरही विश्वास किया जाय तौभी ठीक नहीं; क्योंकि बुद्धि का स्वभाव प्रत्येक विचारशील पुरुष को स्वयं विदित है, कि यह जल्दी २ व्यवसायात्मिका नहीं होती किन्तु विचार करने से प्रतिमास या प्रतिवर्ष पलटती चलीजाती है. स्वतन्त्र बुद्धिको यदि किसी प्रमाणान्तरके पराधीन न माना जाय तो यह बुद्धि इस जीवके शरीर त्यागसे पूर्व पूर्व सहस्रों सिद्धान्तोंकी अदला बदली करती हुई भी शेषमें अव्यवसायात्मिकाही रहेगी. यहांपर यदि कोई श्रद्धालु पुरुष ऐसा कहे कि, साधारण संसारी जीवों की बुद्धिमें अदला बदली हुआ करती है किन्तु स्वयंसिद्ध ज्ञानवान् आचार्य्यलोग स्वप्रादुर्भाव समयहीसे निर्भ्रान्तता अप्रतिहत विचारोंवाले प्रादुर्भूत होतेहैं। तो इसका उत्तर यहहै कि यह केवल श्रद्धालु पुरुषकी श्रद्धासे कथन मात्र है। कि उस स्वतन्त्र विचारवाले पुरुषके पास अपने स्वतन्त्रविचारोंके यथार्थ होने का कोई प्रतिष्ठापत्र या टाईटल है यदि श्रद्धालु की श्रद्धामात्र है तो भ्रान्तिहै संसा-

रमात्रमें एक दूसरे से अधिक तथा विलक्षण ज्ञानवाले अनेक पुरुष और ना एकही वस्तुको भिन्न २ प्रकारसे जानने माननेवाले अनेकों पुरुषोंका अनुभव यथार्थ होही सकताहै परन्तु वे सभीनिर्भ्रान्त हैं इसमें कोई प्रबल प्रमाण नहीं है भ्रान्ति होना जीवका सहजधर्म है. जोलोग जन्ममरणके चक्रमें आयेहैं वे सभीजीवहैं. इस लिये अपने स्वतन्त्र विचारोंपर विश्वास रखना या स्वतन्त्र विचारवाले पुरुषके अनुगामी होना किसीभी पुरुष का कदापि कल्याण कर नहीं है स्वस्व अनुभव के अनुसार हरएक पुरुषको व्यवहार तथा धर्माधर्मादि के विचार जैसे तैसे अवश्य स्फुरण हुवाही करतेहैं परन्तु उनमें जैसे व्यावहारिक विचारों के स्वतन्त्र रखनेवाले को अर्थात् राजाज्ञासे विपरीताचरण करनेवाले को दण्डभागी होना पड़ताहै वैसेही धर्मविचारोंके स्वतन्त्र रखनेवाले को भी दण्डभागी होना अवश्यही है अथवा जैसे पुरुषके राजदण्डसे भयभीत होकर राजनीतिके अनुकूल व्यवहार करना पड़ताहै तो व्यावहारिक स्वतन्त्र विचार वहां दबजाते हैं, वैसे ही धर्म्मदण्ड से भयभीत होकर हर एक पुरुष को धर्मनीतिके अनुकूल अपना व्यवहार करना उचित है; परन्तु ऐसा करने में धर्मविषयक स्वतंत्र विचारों में अत्यन्त प्रतिरोध होता है. इसलिये व्यावहारिक विचारों में पराधीन रहते हुए भी धर्मविचारों में विचार कुशल लोग अपनी स्वाधीनता रखते हैं । वह धर्मावगाही स्वतन्त्र विचार उनका यथार्थ हो या अयथार्थ हो यह विचारान्तर है । परन्तु प्रचलित विचार समय में उनको बुद्धिविरुद्ध पदार्थों को मानकर अव्यवस्था का क्लेश नहीं उठाना पड़ता अथवा राजनीति विचारों में भी जो राजघरानेके प्रबल पुरुष हैं, वे कदापि नहीं दबते किन्तु जो राजनीति अपने विचारोंके अनुकूल हो उसको अपने काम में लाते रहते हैं । प्रतिकूल हो तो उसको उसी काल में परित्याग करते हैं किन्तु अपने विचारों से विरुद्ध राजनीति को साधारण जनसमुदायके लिये मानकर उपराम रहते हैं । वैसेही स्वतन्त्र विचारों वाले महापुरुष लोग भी अपने विचारोंके अनुकूल धर्मनीति अर्थात् प्राचीन शब्द प्रमाणको समय २ पर स्वीकार करते हैं प्रतिकूल हो तो उस में उपराम रहते हुए उसको इतर साधारण जनसमुदायके लिये जानते हैं या निरर्थक ही मानते हैं । ऐसे २ स्वतन्त्र विचारोंवाले महात्मालोग प्रायः दो तरहके हुआ करते हैं, एक तो ऐसे हैं जो कि, सर्वांश में अपने स्वच्छ विचारों ही को स्वतन्त्र मानते हैं और अपने विचारोंके आगे इतर साधारणों के विचारों को तुच्छ तथा निर्मूलक मूढ प्रलापवत् समझते हैं. ऐसे ऐसे महात्मालोग बुद्ध तथा बृहस्पति आदि असंख्यात हुए हैं और दूसरे स्वतन्त्र विचारोंवाले वे महात्मालोग हैं जो कि स्वयं तो प्राचीन शब्दप्रमाणके पावन्द

नहीं होते परन्तु अपने शिष्यमण्डल में प्रचार के लिये प्राचीनको तो नहीं परन्तु आप्त प्रोक्त शब्दप्रमाण मात्र को मानते हैं 'आप्त' नाम यथार्थ वक्ताका है; परन्तु वे लोग सिवाय अपने दूसरेमें आप्तवक्तृत्व कदापि नहीं मानते. भाव इसका यही हुआ कि, ऐसे महात्मालोग आप तो किसीका कहा नहीं मानते किन्तु अपने को स्वतन्त्र प्रज्ञ समझते हैं. परन्तु अपना कहा स्वकीय शिष्यमण्डलमें शब्दप्रमाणत्वेन निरन्तर प्रचारित करते हैं । ऐसे महात्मालोग जैनसिद्धान्त के प्रचारक भी ऋषभदेव, अजितनाथादि अनेक होचुके हैं.इसी ऋषभदेवकी पौराणिक लोग अपने चौबीस अवतारोंमें भी गणनाकरलेते हैं पौराणिकों के मतसे यह प्राचीन शब्दप्रमाणके पराधीन प्रतीत होताहै परन्तु जैनसिद्धान्तसे यह स्वतन्त्र प्रज्ञ समझा जाता है. एकही धर्मी में उभयपक्षसे परस्पर विरुद्ध धर्मोंकी कल्पना है दोनों में एकामिथ्या अवश्य होगी अथवा ऐसे कहें कि, प्राचीन शब्दप्रमाणअस्वीकर्तृत्व पौराणिकोंके अवतारत्वका प्रतिद्वन्द्वि नहीं है. इसीलिये प्राचीन शब्दप्रमाणके तिरस्कर्ता बुद्धादिकोंको भी पौराणिकों ने भगवदवतार ही माना है. जो कुछ भी हो हमारा कहने का यहां तात्पर्य्य यह है कि ऐसे २ स्वतन्त्र विचारों वाले महापुष भी असंख्यात होचुकेहैं दूसरे अपने विचारों को प्राचीनशब्दप्रमाण के पराधीन रखनेवाले महात्मालोगभी वसिष्ठ व्यास शंकरस्वामी रामानुजाचार्य्य आदि अनेक हुएहैं. प्राचीन शब्दप्रमाण के स्वीकार करने में लाभ यह है कि परम प्राचीन परम्पराप्राप्त विलक्षण विचारों का आभास सहजही पुरुषके स्वान्तर्गत होजाताहै तथा अपने विचारोंको सर्वथा प्राचीन शब्दप्रमाणके अनुकूल करता हुआ यह पुरुष शेषमें भ्रम प्रमादादि दोषरहित परम सिद्धान्तको प्राप्त होता है. दोष यह है कि प्राचीन शब्दप्रमाणको प्रमाणीभूत माननेवाले पुरुषको स्वार्थप्रक्षिप्त अनेक प्रकारके स्वार्थसाधक वचनोंकी जगह २ पर व्यवस्था लगानी बहुतही कठिन पड़तीहै. प्रक्षिप्त कहने से प्रचलित प्रथामें नास्तिक बनना पड़ताहै और स्वीकार करनेसे अपने प्राचीन शब्दप्रमाणके अनुकूल पवित्र विचारों में बाधा आतीहै । वह प्राचीन शब्दप्रमाणद्वारा परम्पराप्राप्त अनेक प्रकारके विचारोंके प्रभावसे शेषमें इस पुरुषके हृदयमें एक ऐसा अप्रतिहत सिद्धान्त उत्पन्न होता है जो कि कतिपय वाक्यरचनाके विपरीत भावको स्वयमेव विपरीत जानलेताहै. प्राचीन शब्दप्रमाण का अनुसरण करते हुएही पूर्वमीमांसाकारोंने वेदको विधि, मन्त्र, नामधेय निषेध तथा अर्थवाद भेद से पाँच प्रकारका मानाहै. तथा उत्तरमीमांसा कारोंने कर्मउपासना तथा ज्ञानकाण्ड भेदसे तीन प्रकारका मानाहै. प्रथम पक्षवालों के सिद्धान्तसे प्रथम पक्ष सबसे प्रबल है और उत्तरपक्षवालों के सिद्धान्तसे उत्तरपक्ष सबसे प्रबल है, प्रथम पक्षकी पुष्टिमें "आम्नयस्य

क्रियार्थत्वादनर्थक्यमतदर्थानाम्'' इत्यादि पूर्वमीमांसा का वचन प्रमाण है और उत्तरपक्षकी पुष्टिमें 'सर्वं कर्म्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते' इत्यादि भगवद्वचन प्रमाण है. यद्यपि इनके सिवाय और भी प्राचीनशब्द प्रमाणमें मुख्यता माननेवाले नैयायिक सांख्याचार्य्यादि अनेकलोग हुएहैं तथापि पूर्वमीमांसाकार तथा उत्तरमीमांसाकार प्राचीनशब्दप्रमाणके विशेषरूपसे अभिमानी हैं. इसलिये इनहींको प्राचीनशब्द प्रमाण माननेवालों में अग्रगण्य समझना चाहिये. ये लोग प्रायः अपने २ बोल चालमें एक दूसरे को नास्तिक बतलाया करतेहैं अर्थात् प्राचीनशब्दप्रमाणको माननेवाला दल ना माननेवाले को नास्तिक बतलाता है तथा ना माननेवाला दल प्राचीन शब्दप्रमाणके माननेवालेको नास्तिक बतलाता है इत्यादि अनेकप्रकारके परस्पर आक्षेपवचन महानुभावों के महत्त्वके द्योतक नहीं हैं. प्रत्युत लाघवके द्योतक हैं. प्राचीनशब्दप्रमाणके स्वाधीन होनेवाले गणमें या स्वतन्त्र विचार वाले गणमें स्वयं आपसमें ही यदि सम्भूय सम्मति होय तो भी दूसरे पर आक्षेप करना उचित प्रतीत होय परन्तु इनका तो आपसमें भी बिलनिःसृत विलक्षण कीटकदम्बवत् परस्पर विपरीत ही मुख प्रतीत होता है. प्रथम स्वतन्त्र विचार वालोंहीकी ओर दृष्टि दीजिये, इन लोगोंने भी जीव, ईश, कर्म, सृष्टि मोक्षादि यावत् विषयों पर विचार किया है परन्तु आश्चर्य्य यह है कि, ना तो स्वतन्त्र विचार आपसमें मिलते हैं और नाहीं परतन्त्र विचार वालों की परस्पर संमति हैं. यद्यपि स्थूल कतिपय मन्तव्यों में स्वतन्त्र विचारों वाले पुरुषोंका या परतन्त्र विचार वाले पुरुषों का परस्पर एकमत प्रतीत होताहै तथापि विचारणीय सिद्धान्तों में नीर निक्षिप्त तैल बूँदकी तरह हर एककी बुद्धिमें, ऐसी विलक्षण विशीर्णता प्रतीत होती है जो जिसको देखके अधिकारीके चित्तमें 'यह सत्यहै या कि यह सत्यहै' इत्यादि सन्देह हुए विना कदापि न रहे. जैसे एक जीवहीके विचार में देखिये चार्वाकके सिद्धान्तसे बृहस्पति ने जीवका स्वरूप मातापितृभुक्त अन्न उदक द्वाराया स्वयं वीर्य्यरूपसे परिणत हुए पृथिवीआदि चारभूतोंहीमें उद्बुद्ध हुई चिच्छक्ति को जीव मानाहै। उनका यह भी कथन है कि, प्राचीनशब्दप्रमाणके अनुगामि परमज्ञानी महर्षि याज्ञवल्क्यने भी अपनी प्रिय स्त्री मैत्रेयी को "विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवाऽनु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः" (१२॥ अ० ४ ब्राह्म४) इत्यादि वचनोंसे इसी गुह्य सिद्धान्त का उपदेश किया है; इसलिये परमज्ञानी पुरुषोंका गुह्यसिद्धान्तरूप परम उपकारक उपदेश तो यही है और बाकी वञ्चक धूर्तलोगों ने तो घर घर रंग रंग की दुकानें जमा रक्खी हैं उनसे मुमुक्षु पुरुषको सिवाय धनधान्यादि अपहरेजाने के

अधिक लाभही क्या है! इत्यादि एवं बौद्धसिद्धान्तके प्रवर्तक बुद्ध महात्माने रूप-विज्ञानादि पंच स्कन्धोंही को आत्मा माना है रूप विज्ञान वेदना संज्ञा संस्कार येह उसके पाञ्चस्कन्ध हैं. इनमें अपने अपने विषयों के सहित पाञ्चो ज्ञानइन्द्रियों का नाम रूपस्कन्ध है ॥ १ ॥ आलयविज्ञान तथा प्रवृत्तिविज्ञान प्रवाह का नाम विज्ञानस्कन्ध है ॥ २ ॥ इन रूप तथा विज्ञान दोनों स्कन्धोंके सम्बन्धसें उत्पन्न होनेवाले सुखदुःखादि प्रत्ययोंके प्रवाह का नाम वेदनास्कन्ध है ॥ ३ ॥ घटपटादि संज्ञाको उल्लेखि विज्ञानके प्रवाह का नाम संज्ञास्कन्ध है ॥ ४ ॥ एवं वेदनास्कन्ध निबन्धन रागद्वेषादि मान मदादि तथा धर्माधर्मका नाम संस्कार स्कन्ध है ॥ ५ ॥ बस, यह पाञ्च स्कन्धही बुद्धके सिद्धान्तका आत्मा है इनसे व्यतिरिक्त कोइ आत्मा वस्तु नहीं है. यह यद्यपि प्रवाहरूपसे अनेकप्रकारके जन्म जन्मान्तर पाता रहताहै तथापि स्वरूपसे पुनर्जन्म नहीं है बुद्धमहात्माने अपने सिद्धान्तमें पदार्थमात्रमें 'सर्वं क्षणिकं क्षणिकं' 'सर्वं दुःखं दुखं' 'सर्वं स्वलक्षणं स्वलक्षणं' 'सर्वं शून्यं शून्यं' इत्याकारक भावना चतुष्टयसे परमपुरुषार्थ की प्राप्ति मानी है । नीतिपूर्वक अनेक प्रकारके अर्थोंको उपार्जन करके द्वादश आयतनोंके पूजन करने से भी बुद्धके सिद्धान्तसे पुरुषका कल्याण होता है. पाञ्चज्ञान इन्द्रिय पाञ्चकर्मइन्द्रिय मन तथा बुद्धि इन द्वादश का नाम द्वादश आयतन है. भाव इसका यहीहै कि नीतिपूर्वक शरीर का पालन पोषण करनाही बुद्धके सिद्धान्तसे श्रेयस्कर है पूर्वोक्त भावनाचतुष्टय का भी संसारके पदार्थों से उपराम होकर इस जीव के जीवित सुखसम्पादन में तात्पर्य्य है इत्यादि । एवं जैनोंके सिद्धान्तमें जीवका स्वरूप शुभाशुभ कर्मोंका कर्ता भोक्ता परिणामी शरीर मात्र परिमाणवाला चेतनस्वरूप जीव है । अनादिसिद्ध यावत् कर्मोंके क्षयसे मुमुक्षु जीव का मोक्षहोता है । ज्ञान दर्शन तथा चारित्र ये तीन उक्त जीव की मुक्तिके उपाय हैं. तत्त्वके प्रकाश का नाम ज्ञान है । तत्त्वमें रुचिवर्द्धक का नाम दर्शन है, पापात्मक क्रिया के आरम्भमात्रका भी त्याग करना इसका नाम चारित्र है. इन ज्ञानादि तीनों के प्रवृद्ध होने से इस जीवके रागादि का क्षयहोता है । रागादि क्षयसे यावत् कर्मों का प्रक्षय होता है क्षीणक-र्मोंवाला जीव अपने शरीर के आकार के समान आकारको धारण करता हुआ स्वभावसिद्ध ऊर्द्ध्वगतिवाला होता है. शेषमें लोकाग्रमें प्राप्त होकर स्थिरताको लाभ करता है । इत्यादि । ऐसेही चार्वाक बुद्ध तथा जिनादि सिद्धान्तोंके आचा-र्य्यलोगोंने इसके सिवाय औरभी अनेक प्रकारके जीवों के सूक्ष्मभेद माने हैं. जिनके दिखलाने का प्रकृतमें कुछ विशेष उपयोग नहीं है यह सभी स्वतन्त्र विचारवालोंके विचार हैं. एवं प्राचीन शब्दप्रमाणके अनुरोधसे विचार करनेवाले

महापुरुषों के विचारों में भी परस्पर अत्यन्त विरोध प्रतीत होताहै. महर्षि कपिल महर्षिपतञ्जलि महर्षि व्यास तथा महर्षि जैमिनि इन चारोंने जीवात्मा का स्वरूप चेतन व्यापक तथा नाना मानाहै. एवं महर्षि कणाद तथा महर्षि गौतम इन दोनों ने जीवका स्वरूप ज्ञानका अधिकरण विभु तथा नाना माना है । इनके अतिरिक्त आधुनिक आचार्य्योंके मन्तव्य में भी परस्पर महा विरोध है । जैसे रामानुजस्वामी, मध्वस्वामी, निम्बार्कस्वामी तथा विष्णुस्वामी, इन चारों वैष्णव सम्प्रदायके आचार्योंके सिद्धान्त में जीवात्माका स्वरूप चेतन अणुपरिमाणवाला तथा नाना हैं । एवं शंकरस्वामी वास्तव में जीव को ब्रह्मस्वरूप मानता हुआ भी केवल जिज्ञासुके स्वस्वरूप बोधके लिये अन्तःकरण या अविद्या में ब्रह्म चेतनके प्रतिविम्ब को जीव बतलाता है । इन पूर्वोक्त आचार्य्यों तथा ऋषि महर्षियों से अतिरिक्त इसी विषय में इनके शिष्यप्रशिष्यमण्डलने भी यथा बुद्धि विचित्र भिन्न भिन्न ही विचार किया है । ये पूर्वोक्त पृथक् पृथक् विचित्र विचार तो हमारे भारतीय महानुभावोंके हैं इनके अतिरिक्त यूरोपके विचारशील लोग तथा अर्बके आलमलोग तो अपने विचित्र प्राचीन शब्दप्रमाणके भरोसे पर इस जीव को परमात्माकी इच्छा से नूतन उत्पन्न होनेवाला तथा भाविकर्मों का कर्ता भोक्ता मानते हैं । यह सब पूर्वोक्त लेख तो वर्तमानसमयकी स्थितिके अनुरोध से किया गया है. इनके अतिरिक्त भूत या भविष्यत् कालकी दृष्टि से देखा जाय तो इस निरवच्छिन्नानादि निरवधि संसारचक्रमें किस किस समय में कौन २ महापुरुषने प्रत्येक विषय में कैसी कैसी विलक्षण कल्पना करी और उस कल्पना का कैसा कैसा प्रभाव इतर जन साधारणपर हुआ या होगा इस विषय की आनुपूर्वी जानने लिखने या बतलाने के लिये गीर्वाणगुरु तथा चतुर्मुखादि भी अचतुर से दीख पड़ते हैं. हाँ, आनुमानिक ऐसी कल्पना करसकते हैं कि भूतभविष्यत् में होनेवाले विचारशील महापुरुषोंके विचारभी प्रायः प्रचलित प्रदर्शित विचारोंके अनूकूल ही होने चाहिये । या ऐसे भी कहना कुछ अनुचित नहीं है कि, प्रचलित विचारों के अतिरिक्त विलक्षण कल्पना के लिये पृथक् बाकी मार्ग ही नहीं है. अब जो कोई पुरुष विशेष अपने महत्त्वसम्पादन के लिये प्रत्येक विषयपर प्रचलित विचारों से पृथक् ऊंधा सूधा विलक्षण मार्ग निकाला चाहेगा; वह अन्त में घट्टकुटीप्रभातन्याय से प्रचलित विचारों ही के पेट में आन पड़ेगा अथवा मुख्य मुख्य बहुत से विचार पूर्वजों के लेकर स्वात्मामें नूतन आचार्य्यत्व सम्पादन करनेके लिये आंशिक विचारों में हेर फेर करके स्वार्थ सिद्ध करेगा ऐसी चेष्टा का नाम आचार्य्यपन नहीं है किन्तु धूर्तपन है. यद्यपि साहसपूर्वक ऐसी चेष्टा करनेवाला पुरुष भी कतिपय मूर्ख मण्डलमें अपनी

प्रतिष्ठा जमा सकता है तथापि विज्ञश्रेणी उसको गौरवबुद्धि से नहीं देखती. हमारे प्राचीन ऋषिमहर्षि लोगों की तो ऐसी प्रथा है कि जो अपना मन्तव्य दूसरे के साथ मिलताहै उसको जैसेका तैसा उद्धृत करके शेष विषयोंपर स्वमन्तव्य प्रगट करते हुए विचार समाप्त करतेहैं. परन्तु हमारे नूतन उत्थित आचार्य्यलोगों का यह स्वभाव है कि स्वमन्तव्य शतकोटि दोषसमुदाय से दूषित क्यों न हो परन्तु लिखेंगे तो पूर्वप्रतिष्ठित आचार्य्यलिखित लेखसे विपरीत ही यह तो हमारे धर्मगुरु लोगों की व्यवस्था है. एकही प्राचीन शब्दप्रमाणके अनुरोधसे एकही विषयमें एकही विचारमें एक आचार्य्य का मुख पूर्वको है तो दूसरेका उससे विपरीत अर्थात् पश्चिमको अवश्य होगा यह मेरा कथन कुछ दोष दृष्टिसे नहींहै किन्तु विचार होताहै कि ये लोग हमारे पूर्वज पूज्य तथा महानुभाव धर्मगुरु होचुके हैं इन लोगोंके विचारोंमें परस्पर तेजस्तिमिरकी तरह विरोध क्यों प्रतीत होताहै? आप कल्पना कर लीजिये कि एक जिज्ञासु मुमुक्षु ऐसाहै कि जिसकी श्रद्धा भक्ति प्रेम तथा अनुराग भारतभूमि मात्रके महानुभाव आचार्य्य लोगोंमें समानरूपसे है. धीरे धीरे उसने विचार करते करते सभी आचार्य्यों के हार्दको स्वान्तर्गत किया. अवशेषमें यह विचार उसको अवश्य होता है कि मैं कौन महत्पुरुषके कहेपर विश्वास करूं? प्रतिष्ठा गौरव सन्मान जनसमुदाय की अभिरुचि समारोहपूर्वक सयुक्तिक लेख सभीका समानही है. प्राचीन शब्दप्रमाणकी सम्मति भी सभीने स्वस्वसिद्धान्त की पुष्टिमें वहुत ही उत्तमरीतिसे जगह जगह पर समानही दिखलाई है. जिसके सिद्धान्तके पुस्तकको मैं उठाकर देखता हूं वह मेरे अभ्यास कालमें अपनी सत्यता तथा यथार्थता ही मेरे हृदयमें प्रकाश करताहै परन्तु फिर जब दूसरेके सिद्धान्तको देखता हूं तो वह उससे कुछ औरभी हृदयग्राही होता है तात्पर्य्य इसीतरह शतशः वारं वार आचार्य्योंके सिद्धान्तों को अवलोकन करभी अब किसपर अपना विश्वास करूं? इत्याकारिका अन्तमें जिज्ञासु मुमुक्षु की बुद्धि अवश्य होजातीहै. शेषमें उसी जिज्ञासु विचारेको इन आचार्य्यलोगों की कृपासे "संशयात्मा विनश्यति" इस भगवद्वचनके पात्र होना पड़ताहै. जो पुरुष किसी विशेष कीलक का पशु है अर्थात् जो पुरुष सिवाय एकके दूसरे की सुनता ही नहीं या ऐसा पुरुष जो कि किसी एक विशेषव्यक्ति हीमें श्रद्धालु है अर्थात् सिवाय किसी एकके दूसरेको आप्तही नहीं मानता या ऐसा पुरुष जो कि भिन्न आचार्य्य लोगोंके लेखको देखता हुआभी अपने सम्प्रदायादि के दुराग्रहवशसे हठात् एकपक्षही को यथार्थ कहता तथा बाकी सभीको अनाप्त ही बतलाता है. इन तीनके सिवाय ऐसा कौन विचारकुशल पुरुषहै जो कि इन सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्य लोगोंके विचारजालमें फंसकर फिर निर्भ्रान्त हृदयसे निकलजावे इसवार्ता का

हरएक विचारशील सोच सकताहै कि यदि कोई अप्रबुद्ध सुकुमार राजकुमार को यक्षराक्षसादि बलात् हरणकर किसीएक महा आरण्यमें फैंक देवें फिर कालान्तरमें प्रवुद्ध हुए उसी राजकुमारको दश महात्मा साधुवेश लिये मिले और वह दशों ही उस राजकुमारके स्वागार मार्ग पूँछने से दशोंदिशाओंमें भिन्न २ बतलावें उस अत्यल्पविचार सुकुमार राजकुमार को किसके कहेपर कौन मार्ग पर चलना चाहिये? सभी समानरूप साधुके वेश लिये आप्त प्रतीत होते हैं. परन्तु उस राजकुमारको किसका कहा उचित है? ऐसी राजकुमारमें विचारशक्ति नहीं है जो वह स्वयं उचितानुचित शोच सके । हाँ, इतना राजकुमार अवश्य जान जाता है कि यह दशके दशही आप्त तो कदापि नहीं बन सकते. क्योंकि मेरा घर दशों-दिशामें नहीं है किन्तु किसी एक दिशामें है और इन सबका कथन आपसमें पर-स्पर विरुद्ध है.इसलिये यातो यह है कि, इन सबको भी मेरे घरकी पूरी खबर नहीं है अथवा यह है कि, यह लोग वास्तवमें साधु नहीं है किन्तु वञ्चक हैं इत्यादि. यद्यपि इन पूर्वोक्त मतमतान्तरीय विचारोंको कोइ भी पुरुष अपनी माताके पेटसे लेकर ही उत्पन्न नहीं होता किन्तु स्वयं सुबोध होकर साधारण या विशेषरूपसे अवश्य सब कोई गुरुपरम्पराहीसे ऐसे २ उत्तम आध्यात्मक विचारोंको लाभ करता है तथापि हमारे शोकाक्रान्त हृदयमें समय २ पर वारंवार यही विचार उत्पन्न होते हैं कि, हे दैव! यह भारतीय सम्प्रदायक आचार्य्य लोगोंकी गुरुपरं-परा कहांसे तथा कैसे बिगड़ने लगी जो अहोरात्रकी तरह विपरीत लेखोंको लिखती हुई इनकी अप्रतिहत निर्लज्ज लेखनीने जराभी संकोच न किया, लोक कहा करते हैं कि "शत सुबोधकी एकमति, और मूर्खां आपोआपनी" अर्थात् सैकडों बुद्धि-मानोंका भी एक विचारणीय वस्तुमें एकही मत रहता है परन्तु मूर्खोंका प्रत्येक का एकही विषयमें भिन्न २ रहता है. अब यहां विचारशील पुरुष विचार कर-सकते हैं कि हमारे सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्य्यलोगोंकी किस कोटिमें गणना होनी चाहिये? मेरेको तो सभी समान पूज्य हैं परन्तु विचारप्रकरणमें विवश होकर वस्तुस्थिति ही कहनी पडती है.पूर्वोक्त जीव आत्म विचारमें सम्प्रदायक आचा-र्य्योंका परस्पर विमतती एक निदर्शन मात्र है ऐसेही हर एक विचारणीय स्थलमें एककी दूसरेके साथ सम्मति नहीं है, किन्तु शीतोष्णवत् विरुद्ध कथन है. अथवा विचारणीय स्थल काहेको कहना है विचारणीय अविचारणीय साधारण हरएक विषयको ऐसा परस्पर पृथकरूपसे लिखा है कि; जिसको मानकर एक सम्प्रदा-यका पुरुष दूसरी सम्प्रदायवाले पुरुषोंमें जायकर छिपा तो क्यारहेगा निर्वाह तक न करसके. यद्यपि यह ऐसी २ सर्वांग पूर्ण कार्य्यवाही केवल सम्प्रदाय प्रव-र्तक मूल आचार्य्य लोगोंहीकी नहीं किन्तु उनके अनुयायि सुयोग्य शिष्य वर्गकी

भी है. इसलिये परदोषोंसे अपरको दूषित करना बुद्धिमत्ता नहीं है. तथापि उस प्रणालीका बीजभूत वेही लोग हैं. इसलिये उनही लोगोंके चरणोंमें निवेदन किया जाता है कि, आपने इन अनाथ भारतवासियोंको कहां पहुँचानेके लिये ऐसे प्रयत्न किये? परन्तु प्रशंसनीय भारतीय सन्तानकी श्रद्धा प्रशंसनीय भारत संतानकी आचार्य्य भक्ति प्रशंसनीय भारतीय प्रजाका धर्मप्रेम तथा प्रशंसनीय भारतीय प्रजाका दृढविश्वास कि अभीतक भी अर्थात् इतने होनेपरभी अपने प्रेमांकित हृदयोंके भाव कदापि नहीं मोडते । फिरभी इस भारतीय प्रजाका कुछ सौभाग्यशेष समझना चाहिये कि जिसके अनुरोधसे यह बिचारी मरती गिरती भी सभ्य विदेशी राज्यशासनासे शासित हुई मृतप्रायसी जीती दीख पडरही है. अब यहां पर यदि कोई हमारे को ऐसा कहे कि, केवल लेखकोंके परस्पर विरोध का प्रकाश करके विना अपनी सम्मति प्रकाश किये अपने लेखको समाप्त करना आपको भी उचित नहीं है ? क्योंकि प्रथम आपने ऐसा लिखा है कि, अनेक सिद्धान्तोंके अवलोकन करनेसे विद्वान् पुरुषके चित्तमें एकऐसा मन्तव्य प्रगट होताहै कि, जिसके पलट देनेका ब्रह्मादिमें भी सामर्थ्य नहीं रहता. इत्यादि एवं अनेक मतमतान्तरके देखनेसे जो आपके चित्तका विलक्षण उद्रेक है उसको भी प्रकाशकरना चाहिये तो इसके उत्तरमे मैं यह कहता हूं कि हार्दिकसिद्धान्त तो गुरुपरम्परागम्यहै उसको पुस्तकरूपसे प्रकाशकरने की हमारे देशकी प्रणाली नहींहै. शेषरहा उक्तविषयों पर सम्मति देना सो यदि विचारकर देखा जाय तो कोई आचार्य्य भी अपने प्रामाण्यबोधनार्थ परमेश्वरीय महाविद्यालयसे प्रतिष्टापत्रतो लायाही नहीं किन्तु सभीने अपनी २ बुद्ध्यनुसार कल्पना करीहै. परन्तु उनमें मैंने जहांतक मतमतान्तरोंके ग्रन्थोंको अवलोकन कियाहै उनमें से वर्तमान समयमें प्रचलित पुस्तकों के देखनेसे यहीप्रतीत हुआहै कि, शंकरस्वामी जैसा सरललेख, शंकरस्वामी जैसी प्रौढयुक्ति, शंकरस्वामी जैसी अपूर्वकल्पना, शंकरस्वामी जैसा श्रुत्यर्थसमन्वय; तथा शंकरस्वामीजैसी सुयोग्य शिष्यमण्डली इतर आचार्य्योंको सातजन्म लेकर भी प्राप्त होनी कठिनहै. उसी महापुरुषके गम्भीर लेखान्तर्गत परिभाषाज्ञानकेलिये यह बह्वर्थबोधक लघुभूत वेदान्तपरिभाषा नामक ग्रन्थहै.शास्त्रान्तरमें निविष्ट विद्वान पुरुषोंको शंकरसिद्धान्तमें प्रविष्ट होनेके लिये इस स्वल्पग्रन्थको द्वारीभूत समझना चाहिये. व्यवहारदशामे शंकर स्वामीको प्रायः कुमारिल भट्टका सिद्धान्त स्वीकृतहै उसीके अनुरोधसे सर्वथा भाष्यादिमें अनिरूपित प्रमाण विचारका परिभाषाकारने भट्टके मतसे षट् प्रमाणों का तथा उनके अन्तर्गत तत्तद्विशेष मन्तव्योंका निरूपण कियाहै. यहग्रन्थ अक्षरोंसे परम लघुभूतभी अपने अर्थगौरवसे भारतभूमिमात्रके प्रांतोंमें सर्वत्र समानरूपसे प्रतिष्ठापूर्वक पठन पाठनादिद्वारा शंकरसिद्धान्तका उज्जीवनकरताहुआ चिरकालसे

अद्यावधि विराजमानहै. कर्ता इसका धर्मराज नामक याजक विशेष करके दक्षिण देशके किसी एक प्रान्तका प्रतीत होताहै. चाहो किसीभी प्रान्तका हो इस विचारसे कुछ विशेष लाभ नहीं है. तथापि विद्या इस महापुरुषकी परमप्रशंसनीय तथा दीर्घकालतक विद्वान्गणद्वारा स्मरणीय प्रतीत होती है. इससे प्रथम भी यद्यपि शंकरसिद्धान्तके पोषक तथा मतमतान्तरोंके दूषक भामती खण्डन चित्सुखी पञ्चपादिका विवरणादि अनेक ग्रन्थ प्रकाश होचुकेथे. तथापि ऐसे परमगुह्य गहन सिद्धान्तप्रवेशके लिये जैसे इस महापुरुषने अपूर्व प्रयास कर स्वल्पअक्षरोंमें सरल रूपसे महासिद्धान्तका हार्द दिखलाया है. इससे पूर्व किसीनेभी न दिखलायाथा.वस्तुतः इस ग्रन्थको वेदान्तशास्त्रका प्रथम पुस्तक समझना चाहिये, कहीं २ आपने वेदान्तशास्त्रउपयोगि अपूर्वकल्पना भी करी है। जैसे 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंमें लक्षणासे विनाही निर्वाह होनेका प्रकार सिवाय इनके किसी प्राचीन आचार्य्य ने नहीं लिखा है. इनके निर्माण किये यद्यपि वेदान्तशास्त्रके ग्रन्थान्तरोंका उपलभ नहीं होता तथापि इसी ग्रन्थके आद्यमें 'येन चिन्तामणौ टीका' इत्यादि लेखसे तथा 'वन्देऽहंतर्क चूडामणिमणि जनन क्षीरधींस्तातपादान्' इत्यादि इनके पुत्रके लेखसे इनका बनाया 'न्याय चिन्तामणि' की टीका 'तर्क चूडामणि' नामक ग्रन्थ न्यायशास्त्र का अवश्य प्रतीत होता है. परन्तु वर्तमान कालमें उसका पठन पाठन आदिद्वारा प्रचार या सर्वरूपसे भारतके किसीभी प्रान्तमें उपलब्धि होनी सर्वथा दुर्घट है. अर्थात् उसको भी केवल नाम मात्र अवशिष्ट समझना चाहिये. इतना भी केवल इनके स्वकीय लिखनेहीसे प्रतीत होता है अन्यथा संज्ञा भी लुप्तप्राय अवश्य होती ऐसेही अन्य २ शास्त्र विषयक कृति भी यदि ऐसे महापुरुष की कालप्रभावसे लुप्तप्राय या निर्मूलही होगई हो तो आश्चर्य्यही क्या है ? इस "वेदान्तपरिभाषा" नामक ग्रन्थसे शास्त्रानुरागी लिखा पढा पुरुष कोई भी अपरिचित्त नहीं है प्रत्युत (Government) गवर्नमेण्ट द्वारा परीक्षाविभागमें नियत होकर यह ग्रन्थ और भी प्रचारको प्राप्त हुआ है. इस ग्रन्थकी परीक्षा देनेवाले विद्यार्थिगणकी सुगमताके लिये तथा संस्कृत विद्यामें अल्पाभ्यासि मुमुक्षु पुरुषोंके लिये मैंने इसको यथामति उत्तमरीतिसे प्रतिपंक्ति भाव सहित आर्य्य भाषामें अनुवादित किया है और बंबईके प्रसिद्धसेठ **खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर"** यन्त्रालयके अध्यक्षने मुद्रितकर प्रसिद्ध किया है। मुझे यह पूर्ण आशा है कि, वेदान्त विद्यानुरागी सज्जन लोग इसके पठन पाठनादिसे लाभ उठाते हुए मूलकारकी कीर्तिके साथ साथ मेरेभी श्रमको सफल अवश्य करेंगे ॥ इति शम् ॥

निवेदक काशी निवासि निर्मल पण्डित स्वामी गोविन्दसिंह साधुः ।

विदुषामभ्यर्थना।

अत्रास्माकं मुद्रणालय ऋग्वेदादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादि महापुराणोपपुराणानि धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-व्याकरण-न्याय-योग-सांख्य-मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः, काव्य-नाटक-चम्पू-प्रहसन व्यायोग सट्टकाऽऽख्यायिकादिग्रंथाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्थाश्च विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैर्मनोहरं मुद्रितास्ते योग्यमूल्येन क्रय्याः सन्ति । तांश्च ग्राहका यथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः ।

क्षेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-मुम्बई.

ॐ

भाषाटीकोपेता--वेदान्तपरिभाषा विषयसूची ।

भा० टी० वे० प० विषयसूची।

इति विषयसूचीसमाप्ता।

ॐ

अथ वेदांतपरिभाषा.

भाषाटीकासमेता।

प्रत्यक्षपरिच्छेदः १.

कुर्वन्तः सत्कृतिं सन्तः संस्मरन्ति यमव्ययम्।
येन केनाभिधानेन वन्द्यो ऽसौ नानको गुरुः ॥ १ ॥
मूढस्तु मूढ एवास्ति तत्त्वज्ञस्त्वस्ति तत्त्ववित्।
तस्मादर्धप्रबुद्धा ये ते सन्त्यत्राधिकारिणः ॥ २ ॥

यदविद्याविलासेन भूतभौतिकसृष्टयः।
तं नौमि परमात्मानं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ १ ॥

जिस परमेश्वरके अविद्याविलाससे अर्थात् सम्यक् ज्ञानके विना अथवा जिस परमेश्वरकी माया अपर नामक अविद्यारूप शक्तिसे आकाशादि सूक्ष्म स्थूल भूत तथा चराचरभेदसे अनेकप्रकारके भूतोंके कार्य्य उत्पन्न तथा विनाश हुवा करतेहैं ऐसे सत् चित् तथा आनन्द (विग्रह) स्वरूप परमात्माको मैं धर्मराजाध्वरीन्द्र नमस्कार करताहूँ ॥ १ ॥

यदंतेवासिपंचास्यैर्निरस्ताभेदिवारणाः।
तं प्रणौमि नृसिंहाख्यं यतीन्द्रं परमं गुरुम् ॥ २ ॥

जिन्होंके (अन्तेवासि) समीप रहनेवाले (पञ्चास्यैः) सिंहसम पराक्रम वाले शिष्यलोगोंने अनेक भेदवादी हास्तियोंको निरास किया है ऐसे यतिवर्य्य नृसिंह नामक परमगुरुओंको भी मैं परमभक्तिसे नमन करताहूँ ॥ २ ॥

श्रीमद्वेङ्कटनाथाख्यान् वेलांगुडिनिवासिनः ।
जगद्गुरूनहं वन्दे सर्वतंत्रप्रवर्त्तकान् ॥ ३ ॥

पठनपाठनादिद्वारा सर्वशास्त्रोंके प्रवर्तक तथा वेलांगुडि नामक ग्राममें निवास करनेवाले ऐसे संसारमात्रके विद्वानोंके विद्यागुरु श्रीमद्वेङ्कटनाथ नामक विद्यागुरुओंको भी मेरी वारंवार वन्दना है ॥ ३ ॥

येन चिन्तामणौ टीका दशटीकाविभञ्जिनी ।
तर्कचूडामणिर्नाम कृता विद्वन्मनोरमा ॥ ४ ॥

जिसने गांगेशोपाध्यायकृत चारोंखण्डरूप चिन्तामणिनामक ग्रन्थपर प्रथम होने वाली दशटीकाके खण्डन करनेवाली ' तकचूडामणिः ' नामक टीका, विद्वान्-जनमनोविनोदिका निर्माण करीहै ॥ ४ ॥

तेन बोधाय मन्दानां वेदान्तार्थावलंबिनी ।
धर्मराजाध्वरीन्द्रेण परिभाषा वितन्यते ॥ ५ ॥

उसी धर्मराजाध्वरीन्द्रने अर्थात् धर्मराज नामक याजकने मन्दबुद्धिवाले जिज्ञासु जनोंके बोधके लिये इस वेदान्तरूप अर्थके आश्रयण करनेवाली (परिभाषा) सांकेतिक संज्ञाका सविस्तर निरूपण कियाहै ॥ ५ ॥

इह खलु धर्मार्थकाममोक्षाख्येषु चतुर्विधपुरुषार्थेषु मोक्ष एव-परमपुरुषार्थः "न स पुनरावर्त्तते" इतिश्रुत्या तस्य नित्यत्वा-वगमात् इतरेषां त्रयाणां प्रत्यक्षेण "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्य चितो लोकः क्षीयते" इत्यादि श्रुत्याचानित्यत्वावगमात् स च ब्रह्मज्ञानादिति । ब्रह्म तज्ज्ञानं तत्प्रमाणं च सप्रपंचं निरूप्यते ॥

(इह) इस परिभाषामें अथवा लोकमें हम (खलु) निश्चयपूर्वक ब्रह्म, ब्रह्म ज्ञान तथा तद्विषयकप्रमाणोंको सप्रपञ्च निरूपण करनेकी प्रतिज्ञा करतेहैं-क्योंकि इस पुरुषके वांछित धम, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चार पदाथामें परम पुरुषार्थत्व मोक्षात्मक पदार्थहीमें प्रतीत होताहै । इस मोक्षहीको ' वह फिर जन्ममरणमें नहीं आता २ ' इत्यादि अथक श्रुतिवचनोंसे नित्यश्रवण कियाहै । बाकी धर्मादि तीनोंको प्रत्यक्ष प्रमाणसे तथा 'जैसे इसलोकमें कृष्यादि कर्म्मोंसे सम्पादित सस्यादिलोकका कार्य्यरूपसे नाश देखनेमें आताहै वैसेही

(अमुत्र) परलोकमें पुण्यादृष्टसम्पादित स्वर्गादिलोकको भी कार्य्य होनेसे नाश होनेकी कल्पना करसकते हैं' इत्यादि अर्थक श्रुतिवचनोंसे अनित्य निश्चय किया है । वह मोक्ष ब्रह्मज्ञानसे होताहै । इसलिये ब्रह्म ब्रह्मका ज्ञान तथा ब्रह्ममें प्रमाणोंका हम सविस्तर निरूपण करते हैं ॥

तत्र प्रमाकरणं प्रमाणम् तत्र स्मृतिव्यावृत्तं प्रमात्वं अनधिगताबाधितविषयज्ञानत्वम् । स्मृतिसाधारणं त्वबाधितविषयकज्ञानत्वम् । नीरूपस्यापि कालस्येन्द्रियवेद्यत्वाभ्युपगमेन धारावाहिकबुद्धेरपि पूर्वपूर्वज्ञानाविषयतत्तत्क्षणविशेषविषयकत्वेन न तत्राव्याप्तिः ॥

(तत्र) इन तीनोंमेंसे प्रमाण नाम प्रमाके करणका है । और करण नाम व्यापारवाले असाधारण कारणका है । उसमें स्मृति व्यावृत्त तथा स्मृति साधारण भेदसे वह प्रमात्व दो प्रकारका है । उनमें अनधिगत अर्थात् प्रथम न देखे हुए तथा अबाधित अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानका नाम 'स्मृतिव्यावृत्तप्रमात्व है' । और केवल अबाधित अर्थको विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति साधारण प्रमारूप है. (शंका) 'अयं घटः २' इत्याकारक धारावाहिक बुद्धिस्थलमें दूसरा तीसराआदि ज्ञान सभी अधिगत अर्थात् प्रथम देखे हुए विषयको विषय करनेवाले हैं इसलिये स्मृति व्यावृत्त प्रथम प्रमालक्षणकी ऐसे स्थलमें अव्याप्ति है । (समाधान) रूपरहित कालको भी हम 'इदानीं घटो वर्तते' इत्यादि प्रतीतिबलसे नेत्रादि इन्द्रिय ग्राह्य मानतेहैं । इसलिये 'अयं घटः २' इत्याकारक धारावाहिक बुद्धिभी पूर्व पूर्व ज्ञानके न विषय होनेवाले तत्तत्क्षण विशेषको विषय करती है अर्थात् प्रथम ज्ञानका प्रथम क्षण विशेषण विशिष्ट घट विषय है और द्वितीय ज्ञानका द्वितीय क्षण विशेषण विशिष्ट घट विषय है । ऐसेही उत्तर उत्तर ज्ञान क्षणमें पूर्व पूर्व विशेषणरूप क्षणके न होनेसे क्षणरूप विशेषणाभाव प्रयुक्त घटरूप विशेषका अभाव भी कह सकते हैं । इसलिये प्रतिक्षणमें क्षणात्मक नूतन विशेषण विशिष्ट हुआ घट सर्वथा अनधिगत तथा अबाधित अर्थरूप है याते उसमें अव्याप्तिकी शंका नहीं है ॥

किंच सिद्धांते धारावाहिकबुद्धिस्थले न ज्ञानभेदः, किन्तु यावद्घटस्फुरणं तावत् घटाकारान्तःकरणवृत्तिरेकैव, नतुनाना, वृत्तेः स्वविरोधिवृत्त्युत्पत्तिपर्यंतं स्थायित्वाभ्युपगमात् । तथा

च तत्प्रतिफलितचैतन्यरूपं घटादिज्ञानमपि तत्र तावत्कालीन मेकमेवेति नाव्याप्तिशंकाऽपि ॥

किञ्च, और वक्तव्य यह है कि हमारे वेदान्त सिद्धान्तमें धारावाहिक बुद्धि-स्थलमें ज्ञानका भेद स्वीकार नहीं है किन्तु जबतक घटकी स्फूर्ति रहे तबतक अन्तःकरणकी घटाकारवृत्ति एकही मानी है, अनेक नहीं मानी; क्योंकि हम घटाद्य-वगाहिनी वृत्तिको (स्व) अपनेसे विरोधी वृत्तिकी उत्पत्ति पर्यन्त स्थायी मानतेहैं अर्थात् घटाकारवृत्तिसे विरुद्ध जबतक अन्तःकरण पटाकार वृत्ति रूपेण परिणत नहो तबतक प्रथमवृत्ति निरवच्छिन्न एकही रहती है । एवं उस वृत्तिमें प्रतिफलित चैतन्यस्वरूप घटादिकोंका ज्ञान भी उतना काल पर्यन्त एकही है. इस रीतिसे ऐसे स्थलमें अव्याप्तिकी शंका भी नहीं बन सकती ॥

ननु सिद्धांते घटादेर्मिथ्यात्वेन बाधितत्वात् तज्ज्ञानं कथं प्रमाणम् । उच्यते । ब्रह्मसाक्षात्कारानन्तरं हि घटादीनांबाधः "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत्" इतिश्रुतेः। न तु संसारदशायां बाधः "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति" इति श्रुतेः।तथाचाबाधितपदेन संसारदशाया-मबाधितत्वं विवक्षितमिति न घटादिप्रमायामव्याप्तिः तदुक्तम्–

"देहात्मप्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः ।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वाऽऽत्मनिश्चयात्" ॥ १ ॥

ब्रह्मसाक्षात्कारपर्यन्तमित्यर्थः । लौकिकमिति घटादिज्ञान-मित्यर्थः ॥

(शंका) आपके वेदान्तसिद्धान्तमें घटादि पदार्थ भी शुक्तिरूप्यकी तरह मिथ्या होनेसे बाधित हैं इस लिये उनका ज्ञान भी प्रमाण अथात् प्रमालक्षण का लक्ष कैसे हो सकता है? (समाधान) (उच्यते) घटादि पदार्थोंका बाध हम शुक्तिरूप्यकी तरह संसार दशामें नहीं मानते किन्तु ब्रह्मसाक्षात्कारके अनन्तर घटादि पदार्थोंका बाध मानतेहैं । 'जिस तत्त्वसाक्षात्कार दशामें इस ब्रह्मज्ञानी पुरुषको सम्पूर्ण वस्तु आत्मस्वरूप प्रतीत होती है उस ऐसी अवस्थामें किन नेत्रादि करणोंसे किस वस्तुको देखे? अर्थात् सब पदार्थजातका तत्त्वज्ञानसे बाध हुआहै' इत्यादि अर्थक श्रुतिवचन भी इसमें प्रमाण हैं ।किन्तु संसारदशामें हमने घटादि

पदार्थोंका बाध नहीं माना है ' जिस संसारदशामें द्वैतकी तरह यावत् पदार्थ प्रतीत होने लगतेहैं उसी अवस्थामें यह आप इतर होकर अपनेसे इतर पदार्थ जातको देखता है ' इत्यादि अर्थक श्रुतिवचन संसार दशामें प्रमाण हैं एवं संसार दशामें घटादि पदार्थोंको अबाधित होनेसे उनका ज्ञानभी उक्त प्रमालक्षणका लक्ष्य होसकता है तथा उसमें अव्याप्तिकी शंका करके समाधानरूप ग्रन्थ भी असंगत नहीं है । (तथाच) इस रीतिसे लक्षण निष्ठ 'अबाधित' पद संसार दशामें अबाधितत्वका बोधक है. इसलिये घटादि प्रमामें अव्याप्ति नहीं है । इसीको वार्तिककारने भी कहाहै अर्थात् ' ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहं ' इत्याकारकदेहात्मरूप प्रत्यय (ज्ञान) जैसे याजक लोगोंने प्रमाणत्वेन स्वीकार किया है वैसेही लौकिक सामग्रीजन्य यह घटादि ज्ञान भी आत्मसाक्षात्कार पर्यन्त प्रमाणरूपही मानना उचित है ॥ १ ॥ यहां आङ्–उपसर्ग मर्यादाअर्थक है इसलिये आ आत्मनिश्चयात् इसका ब्रह्माभिन्न स्वात्म साक्षात्कार पर्यन्त अर्थ है ॥ लौकिक शब्दसे घटादि ज्ञान का ग्रहण है ॥

तानि च प्रमाणानि षट् प्रत्यक्षानुमानोपमानागमार्थापत्त्यनुपलब्धिभेदात्। तत्र प्रत्यक्षप्रमायाःकरणं प्रत्यक्षप्रमाणम् । प्रत्यक्षप्रमा चात्र चैतन्यमेव "यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म" इतिश्रुतेः । अपरोक्षादित्यस्यापरोक्षमित्यर्थः । ननु चैतन्यमनादि तत्कथं चक्षुरादेस्तत्करणत्वेन प्रमाणत्वमिति। उच्यते । चैतन्यस्यानादित्वेपि तदभिव्यञ्जकान्तःकरणवृत्तिरिन्द्रियसन्निकर्षादिना जायते । इतिवृत्तिविशिष्टं चैतन्यमादिमादित्युच्यते । ज्ञानावच्छेदकत्वाच्च वृत्तौज्ञानत्वोपचारः । तदुक्तं विवरणे–"अंतःकरण वृत्तौज्ञानत्वोपचारात् इति" ॥

एवं उक्त लक्षणलक्षित प्रमाके करण प्रमाण प्रत्यक्ष अनुमान उपमान आगम अर्थापत्ति अनुपलब्धि इस भेदसे छः हैं । उनमें प्रत्यक्षप्रमाके करण का नाम 'प्रत्यक्षप्रमाण' है । और 'वेदान्त' सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष प्रमानाम चैतन्यका है । 'जो ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष स्वरूप है' इत्यादि अर्थक श्रुतिवचन उसमें प्रमाण हैं । अपरोक्षात् इस पञ्चमीका प्रकरणानुरोधसे प्रथमान्त विपरिणाम करके अर्थ है । (शंका) आपका चैतन्य तो अनादि अर्थात् सनातन होनेवाला है एवं नेत्रादि इन्द्रियोंमें उस चैतन्यकी करणता प्रयुक्त प्रमाणत्व व्यवहार कैसे होसकता है ?

(समाधान) (उच्यते) चैतन्यके अनादि होनेसे भी उस चैतन्यकी अभिव्यंजक अर्थात् चैतन्यके प्रतिबिम्बको ग्रहण करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रादि इन्द्रियोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होतीहै । इसलिये वृत्तिविशिष्ट चैतन्य आदिमत् अर्थात् उत्पत्तिवाला कहा जाताहै । ज्ञानस्वरूप चैतन्यका (अवच्छेदक) भेदक होनेसे वृत्तिमें ज्ञानव्यवहारका उपचार है अर्थात् वृत्तिमें ज्ञानव्यवहार गौण रूपेण होताहै । इसीवार्ताको विवरणाचार्यने भी कहा है कि– 'अन्तःकरणकी वृत्तिमें ज्ञानशब्दका प्रयोग गौणरूपसे होताहै' इति ॥

ननु निरवयवस्यान्तःकरणस्य परिणामात्मिका वृत्तिः कथम्। इत्थम्। न तावदन्तःकरणं निरवयवं सादिद्रव्यत्वेन सावयवत्वात्सादित्वं च "तन्मनोऽसृजत" इत्यादिश्रुतेः वृत्तिरूपज्ञानस्य मनोधर्मत्वे च "कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाअश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव" इतिश्रुतिर्मानम्। धीशब्देन वृत्तिरूपज्ञानाभिधानात्। अतएव कामादेरपि मनोधर्मत्वम्। ननु कामादेरन्तःकरणधर्मत्वेहमिच्छाम्यहंजानाम्यहं बिभेमीत्याद्यनुभव आत्मधर्मत्वमवगाहमानः कथमुपपद्यते। उच्यते। अयःपिंडस्य दग्धृत्वाभावेपि दग्धृत्वाश्रयवह्नितादात्म्याध्यासात् यथा अयोदहतीति व्यवहारस्तथासुखाद्याकारपरिणाम्यन्तःकरणैक्याध्यासात् अहंसुखीदुःखीत्यादिव्यवहारः ॥

(शंका) परिणाम सावयवपदार्थका होताहै और अन्तःकरण निरवयव पदार्थ है एवं उसकी परिणामआत्मिका वृत्ति कैसे होसकती है ? (समाधान) (इत्थं) प्रथम तो अन्तःकरणको निरवयवही कहना उचित नहीं क्योंकि वह उत्पत्ति वाला द्रव्य होनेसे सावयव हो सकता है उसकी उत्पत्तिका श्रवण हमने 'वह परमात्मा मनको उत्पन्न करता भया' इत्यादि अथक श्रुतिसे किया है । वृति रूप ज्ञानभी मनका धर्म है इसमें '(काम) इच्छा, संकल्प (विचिकित्सा) संशय श्रद्धा अश्रद्धा धृतिः अधृतिः (ह्रीः) लज्जा (धीः) बुद्धि (भीः) भय ये सभी मनहीसे उत्पन्न होतेहैं' इत्यादि अथक श्रुति प्रमाणहै । इस श्रुतिनिष्ठ धी शब्दसे वृत्तिरूपज्ञानका कथनहै (अतएव) इस श्रुतिवचनहीसे कामादिभी मनहीके धर्म सिद्ध होते हैं । (शंका) कामादिकोंको अन्तःकरणका धर्म माननेसे 'मैं इच्छा करताहूं' 'मैं जानता हूं' 'मैं डरताहूं' इत्यादि अनेक प्रकारके अनु-

भवोंका आत्मधर्मत्वेन प्रतीत होना कैसे उपपन्न होगा? (समाधान) (उच्यते) लोहपिण्डके दाहक न होनेसे भी दाहक अग्निके तादात्म्याध्यासरूप सम्पर्कसे जैसे 'लोह दहन कररहा है' ऐसा व्यवहार होता है वैसेही सुखादि आकार परिणामी अन्तःकरणके साथ तादात्म्यैक्याध्यास होनेसे 'मैं सुखीहूं' 'मैं दुःखीहूं' इत्यादि व्यवहार आत्मामें भी मिथ्याही प्रतीत होते हैं ॥

नन्वन्तःकरणस्येन्द्रियतयाऽतीन्द्रियत्वात्कथमहमिति प्रत्यक्षविषयतेति । उच्यते । नतावदन्तःकरणमिन्द्रियमित्यत्र मानमस्ति "मनः षष्ठानीन्द्रियाणि" इतिभगवद्गीतावचनं प्रमाणमिति चेन्न अनिन्द्रियेणापि मनसा षट्त्वसंख्यापूरणाविरोधात् नहीन्द्रियगतसंख्यापूरणमिन्द्रियेणैवेतिनियमः "यजमानपंचमा इडांभक्षयंति" इत्यत्रऋत्विग्गतपंचत्वसंख्याया अनृत्विजापियजमानेन पूरणदर्शनात् ॥

"वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान्"

(शंका) अन्तःकरणको अनेक विद्वान् लोगोंने इन्द्रिय माना है और इन्द्रिय नियमसे अतीन्द्रियही होता है एवं उसमें 'अहं' इत्याकारक ज्ञानकी प्रत्यक्ष विषयता कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती (समाधान) (उच्यते) प्रथम तो अन्तःकरण इन्द्रिय है इस वार्तामें कोई प्रवल प्रमाणही नहीं है । और यदि–"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥ मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥ गी० अ० ॥ १५॥ अर्थात् इस जीवलोक संसारमें जीवरूपको प्राप्त हुआ सनातन आत्मा मेराही अंश अर्थात् स्वरूप है वही जीवात्मा प्रकृतिमें स्थिति वाले तथा मन है छठवां जिनमें ऐसे इन्द्रियोंको आकर्षण करता है" इस भगवद्गीतावचनको मनके इन्द्रिय होनेमें प्रमाण कहो तो सो भी ठीक नहीं क्योंकि मन इन्द्रिय नाभी होय तोभी षट्त्व संख्याका पूरक हो सकता है इन्द्रियगत संख्याकी पूर्ति इन्द्रियहीसे होती है, ऐसा कोई नियम नहीं है । त्यजमान है पांचवां जिनमें ऐसे ऋत्विग् लोग 'इडा' नामक हवनपदार्थको भक्षण करें, इत्यादि अर्थक वाक्यमें ऋत्विग्लोगोंमें होनेवाली पञ्चत्व संख्याका पूरक ऋत्विग्लोगोंसे भिन्न यजमान है अर्थात् यजमान ऋत्विग् नहीं भी है परन्तु ऋत्विग्गत पंचत्व संख्याका पूरक है । एवं 'महाभारत है पांचवां जिनमें ऐसे वेदोंका महर्षि अपने शिष्योंको अध्यापन कराता भया' ॥

इत्यत्रवेदगतपंचत्वसंख्याया अवेदेनापिमहाभारतेन पूरण-दर्शनात् । "इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्चपरंमनः" इत्यादि श्रुत्यामनसोऽनिन्द्रियत्वावगमाच्च । नचैवं मनसोनिन्द्रियत्वे सुखादिप्रत्यक्षस्यसाक्षात्त्वंनस्यादिन्द्रियाजन्यत्वादितिवाच्यम्। नहीन्द्रियजन्यत्वेन ज्ञानस्यसाक्षात्त्वम् । अनुमित्यादेरपि मनो जन्यतयासाक्षात्त्वापत्तेः ईश्वरज्ञानस्यानिन्द्रियजन्यस्यसाक्षा-त्त्वानापत्तेश्च ॥

इत्याद्यथक वाक्यमें भी वेदगत पञ्चत्व संख्याका पूरक वेदोंसे भिन्न महा-भारत है अर्थात् महाभारत वेद नहीं भी है परन्तु वेदगत पञ्चत्व संख्याका पूरक है इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध हुआ कि तत्तत् पदार्थ गत तत्तत् संख्याका पूरक तत्तत्सजातीय पदार्थही हो इस वार्त्ताका नियम नहीं है और 'इन्द्रियोंके गोल-कोंसे परे इन्द्रियोंके अर्थ अर्थात् इन्द्रिय शब्द वाच्यहै उससेपरे मनहै मनसे परे बुद्धिहै' ॥ इत्याद्यथक श्रुतिवचनोंसे मनमें इन्द्रियत्वधर्मका अभाव प्रतीत होताहै (शंका) इस रीतिसे यदि मन इन्द्रिय नहीं है तो सुखादि प्रत्यक्षका साक्षात्कार नहीं होना चाहिये । क्योंकि विषयसाक्षात्कारका इन्द्रियजन्यत्वके साथ नियमहै अर्थात् जहां जहां विषयका साक्षात्कार होताहै वहां २ नियमसे इन्द्रियजन्यही होताहै एवं सुखादि प्रत्यक्ष भी यदि इन्द्रिय जन्य नहीं है तो साक्षात्कार भी नहीं होना चाहिये (समाधान) पूर्वोक्त व्याप्ति ज्ञान आपका यथार्थ नहीं है क्योंकि इन्द्रियजन्य ज्ञान नियमसे साक्षात्कारही होताहै इस वार्ताका नियम नहीं है मनको यदि इन्द्रियभी मान लिया जाय तो उसको अनुमिति आदि ज्ञानोंके प्रतिभी कारणताहै एवं अनुमित्यादि ज्ञानभी साक्षात्कारात्मक होने चाहिये. (शंका) अनुमित्यादि ज्ञानोंमें व्यभिचारहै इसलिये हम 'इन्द्रियजन्य ज्ञान नियमसे साक्षा-त्कारात्मकही होताहै' ऐसा नियमका स्वरूप नहीं मानते किन्तु 'साक्षात्कारात्मक ज्ञान इन्द्रियजन्यही होताहै' ऐसा नियम मानतेहैं एवं अनुमित्यादि ज्ञानोंमें व्यभिचार शंका भी नहीं है और सुखादि साक्षात्कारमें आपत्तिभी वैसेही है।अथवा अनुमित्यादि ज्ञानोंके प्रति मनको इन्द्रियत्वेन कारणता नहीं किन्तु मनस्त्वेनहै और साक्षात्कारत्वावच्छिन्नके प्रति इन्द्रियत्वेन इन्द्रिय जन्यत्व प्रयोजक है इसलिये अनुमित्यादि ज्ञानोंमें व्यभिचार नहीं है. (समाधान) ईश्वरका ज्ञान इन्द्रियत्वेन इन्द्रियजन्य नहीं है अर्थात् ईश्वरके नेत्रादि इन्द्रिय नहीं है एवं ईश्वरका ज्ञान भी आपके सिद्धान्तसे साक्षात्कारात्मक नहीं होना चाहिये ॥

सिद्धांतेप्रत्यक्षत्वप्रयोजकं किमितिचेत् किंज्ञानगतस्य प्रत्यक्षत्वस्यप्रयोजकं पृच्छसि किंवाविषयगतस्य । आद्येप्रमाणचैतन्यस्य विषयावछिन्नचैतन्याभेद इतिब्रूमः। तथाहि । त्रिविधं चैतन्यं प्रमातृचैतन्यंप्रमाणचैतन्यं विषयचैतन्यं चेति । तत्रघटाद्यवछिन्नचैतन्यं विषयचैतन्यम्। अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नं चैतन्यं प्रमाणचैतन्यम्।अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं प्रमातृचैतन्यम्।

(शंका) आपके वेदान्त सिद्धान्तमें प्रत्यक्षका प्रयोजक कौन है ? (समाधान) हमारे मतमें ज्ञानगत विषयगत भेदसे प्रत्यक्ष दो प्रकारका है. सो तुम ज्ञानगत प्रत्यक्षका प्रयोजक पूंछते हो ? या कि विषयगत प्रत्यक्षका ? यदि प्रथम कहो तो 'प्रमाणावच्छिन्न चैतन्यका विषयावच्छिन्न चैतन्यके साथ अभेद होना ' हम मानते हैं (तथाहि) उसका प्रकार यह है कि प्रमातृप्रमाण विषयचैतन्य भेद से चेतन तीन प्रकारकाहै ।उनमें घटाद्यवच्छिन्न अर्थात् जितने स्थलमें घटादिस्थितहैं उतने स्थलमें वर्तनेवाले चैतन्यका नाम विषय चैतन्य है । एवं अन्तःकरण वृत्त्यवच्छिन्न अर्थात् अन्तःकरणकी वृत्ति जितने प्रदेशमें रहती है उतने प्रदेशमें वर्तनेवाले चैतन्यका नाम प्रमाणचैतन्य है । ऐसेही अन्तःकरणावच्छिन्न अर्थात् जितने प्रदेशमें अन्तःकरण रहता है तत्प्रदेश वृति चैतन्यका नाम प्रमातृचैतन्य है ॥

तत्रयथातडागोदकं छिद्रान्निर्गत्य कुल्यात्मनाकेदारान्प्रविश्य तद्वदेवचतुःकोणाद्याकारं भवति तथातैजसमन्तःकरणमपि चक्षुरादिद्वारानिर्गत्य घटादिविषयदेशं गत्वा घटादिविषयाकारेण परिणमते सएवपरिणामो वृत्तिरित्युच्यते। अनुमित्यादिस्थले तु नान्तःकरणस्य वह्न्यादिदेशगमनं वह्न्यादेश्चक्षुराद्यसंनिकर्षात् तथाचायं घटः इत्यादिप्रत्यक्षस्थलेघटादेस्तदाकारवृत्तेश्च बहिरेकत्रदेशेसमवधानात्तदुभयावच्छिन्नं चैतन्यमेकमेव ॥

(तत्र) उन तीनों उपाधियोंमेंसे जैसे (तडाग) तालावका जल तडागके किसीएक छिद्र द्वारा निकलकर (कुल्या) नशारवत् लम्बायमान होकर क्षेत्रके केदारोंमें प्रविष्ट हुआ उन केदारोंहीकी तरह त्रिकोण चतुष्कोणादि आकारको प्राप्त होता है वैसे ही तैजस अर्थात् सूर्यकिरणकी तरह स्वच्छ होनेसे अतिशीघ्र-

गामी अन्तःकरणभी नेत्रादि इन्द्रियद्वारा निकलकर घटपटादि विषय देशको प्राप्त हुआ घटपटादि विषयरूपसे परिणामको प्राप्त होताहै । उसी परिणामका नाम 'वृत्ति' है । और अनुमिति ज्ञानादि स्थलमें तो नेत्रादि इन्द्रियोंके साथ अग्निका सम्बन्धही नहीं होता इसलिये ऐसे स्थलोंमें अन्तःकरणका अग्निआदि विषय देशमें गमन मानना उचित नहीं इसरीतिसे 'अयं घटः' इत्यादि प्रत्यक्ष स्थलमें घटादि विषय तथा घटादि विषयाकार वृत्ति इन दोनोंको बाह्य एक स्थलमें मिलाप होनेसे उन दोनोंसे अवच्छिन्न अर्थात् घट घटाकार वृत्त्युपहित चैतन्य एकही है ॥

विभाजकयोरप्यन्तःकरणवृत्तिघटादिविषययोरेकदेशस्थत्वेन भेदाजनकत्वात् अतएव मठान्तर्वर्तिघटावच्छिन्नाकाशोन मठावच्छिन्नाकाशाद्भिद्यते।तथाचायं घट इति घटप्रत्यक्षस्थले घटाकारवृत्तेर्घटसंयोगितया घटावच्छिन्नचैतन्यस्य तद्वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्याभिन्नतया तत्रघटज्ञानस्यघटांशे प्रत्यक्षत्वम्। सुखाद्यवच्छिन्न चैतन्यस्य तद्वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यस्यच नियमे नैकदेशस्थितोपाधिद्वयावच्छिन्नत्वात् नियमेनाहंसुखीत्यादि ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वम् । नन्वेवं स्ववृत्तिसुखादिस्मरणस्यापि सुखाद्यंशे प्रत्यक्षत्वापत्तिरितिचेन्न, तत्रस्मर्यमाणसुखस्याती-तत्वेन स्मृतिरूपान्तःकरणवृत्तेर्वर्तमानत्वेन तत्रोपाध्योर्भिन्न-कालीनतया तत्तदवच्छिन्नचैतन्ययोर्भेदात् । उपाध्योरेकदे-शस्थत्वेसत्येककालीनत्वस्यै वोपधेयाभेदप्रयोजकत्वात् ॥

वदान्तसिद्धान्तमें चैतन्य वास्तवसे एकही है भेद केवल उपाधिभेदसे प्रतीत होताहै एवं विभाजक अर्थात् चेतनमें भेद व्यवहारके सम्पादक अन्तःकरणकी वृत्ति तथा घटादि विषय ये दोनों बाह्य एक देशमें स्थित होनेसे भेदके जनक नहीं होसकते (अत एव) एक देशस्थित उपाधिद्वयमें भेदव्यवहार जनन योग्यता नहीं होती इसीसे मठके भीतर होनेवाले घटावच्छिन्न आकाशका मठाव-च्छिन्न आकाशसे भेद विद्वान् लोगोंने नहीं मानाहै (तथाच) इस रीतिसे एक देशस्थित उपाधिद्वयको जव भेदाजनकता सिद्ध हुई तो 'अयं घटः' इत्याकारक घट प्रत्यक्षस्थलमें घटाकारको प्राप्त हुई अन्तःकरणकी वृत्तिको घटके साथ

संयोगवाली होनेसे घटावच्छिन्न चैतन्य तथा घटाकार अन्तःकरण वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य इन दोनोंके अभिन्न होनेसे ऐसे स्थलमें घटज्ञान पटांशमें प्रत्यक्ष है एवं सुखादि अवच्छिन्न चैतन्य तथा सुखाकार अन्तःकरणकी वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यको नियमसे एक अन्तःकरणरूप देशमें स्थित होनेवाली उपाधिद्वय अर्थात् सुखादि अन्तःकरणके धर्म हैं और 'अहंसुखी' इत्याकारक सुखाकार अन्तःकरणकी वृत्तिभी अन्तःकरणहीमें रहती है. एवं एक देशस्थित उपाधिद्वयावच्छिन्न अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य हुआ, इसलिये ऐसे स्थलमेंभी नियमसे 'अहंसुखी' इत्याकारक ज्ञानको प्रत्यक्षात्मक कह सकते हैं. (शंका) यदि उपाधिद्वयके एक देशस्थित होने मात्रसे चेतनद्वयमें भेद नहीं रहता तो 'अहंपूर्वसुखी' इत्यादि प्रत्ययसे अपनेमें होनेवाले सुखादिकोंके स्मरणकाभी सुखादि अंशमें प्रत्यक्ष होना चाहिये. (समाधान) केवल उपाधिद्वयका एक देशमें स्थित होना मात्रही उपहित पदार्थके अभेदका प्रयोजक नहीं है किन्तु उपाधिद्वयमें एककालीनत्वभी अपेक्षित है एवं स्मृतिज्ञानमें प्रत्यक्ष लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं है क्योंकि स्मृति स्थलमें उपाधिद्वयका परस्पर भिन्नकाल है (तत्र) अन्तःकरणवृति सुखादि स्मरण स्थलमें स्मर्यमाण सुखादि बीत चुकेहैं और स्मरण करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्ति वर्तमान कालमें विद्यमान है। ऐसे स्थलमें इस रीतिसे उपाधिद्वयको परस्पर भिन्नकालगत होनेसे उन दोनों उपाधियोंसे उपहित चैतन्योंका भी अवश्य भेदही है । एवं उपाधिद्वयका एक देशमें स्थित होकर एक कालमें स्थित होनाही (उपधेय) उपहित पदार्थके अभेदका प्रयोजक है ॥

यदिचैकदेशस्थत्वमात्रमुपधेयाभेदप्रयोजकं तदाहं पूर्वं सुखीत्यादिस्मृतावतिव्याप्तिवारणाय वर्तमानत्वं विषयविशेषणं देयं नन्वेवमपि स्वकीयधर्माधर्मौ वर्त्तमानौ यदाशब्दादिना ज्ञायेते तदाताद्दशशाब्दज्ञानादावतिव्याप्तिः तत्रधर्माद्यवच्छिन्नतद्वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्ययोरेकत्वादितिचेन्न योग्यत्वस्यापि विषयविशेषणत्वात् अंतःकरणधर्मत्वाविशेषेपि किंचिदयोग्यंकिंचिद्योग्यमित्यत्र फलबलकल्प्यः स्वभाव एव शरणं अन्यथान्यायमतेप्यात्मधर्मत्वाविशेषात् सुखादिवद्धर्मादेरपिप्रत्यक्षत्वापत्तिर्दुर्वारा ॥

और यदि उपाधिद्वयका एक देशमें स्थित होना मात्रही उपहित पदार्थके

अभेदका नियामक माने तो 'अहंपूर्वं सुखी' इत्यादि स्मृतिस्थलमें अतिव्याप्ति वारण केलिये 'वर्तमानत्व' विषयका विशेषणदेना उचित है । अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानका 'विषय' हमेशा वर्तमान होना चाहिये. भाव यह कि प्रमाण चैतन्यका वर्तमान विषयावच्छिन्न चैतन्यके साथ अभेद होना ज्ञानगत प्रत्यक्षका लक्षण है एवं स्मर्यमाण सुखादि वर्तमान नहीं हैं याते स्मृतिरूप ज्ञानमें प्रत्यक्ष लक्षणकी अतिव्याप्तिभी नहीं है. (शंका) ऐसा लक्षण करनेसेभी जब अपनी वर्तमान अवस्थाके धर्म्मा धर्म्म 'भवान् धार्मिकः' 'भवान धार्मिकः' इत्यादि दूसरेके कहनेसे शब्दादिसे जाने जातेहैं तब तादृश शाब्दज्ञानमें अतिव्याप्ति होगी क्योंकि (तत्र) उस शाब्दज्ञानमें धर्माद्यवच्छिन्न तथा धर्माद्यकार वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यकी एकता है. (समाधान) हम योग्यत्वकोभी विषयमें विशेषणीभूत मानते हैं अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानका विषय प्रत्यक्षके योग्य होना उचितहै यद्यपि सुख दुःख धर्माधर्मादि सभी अन्तःकरणके धर्म समानही हैं तथापि उनमें कोई प्रत्यक्षके अयोग्य है और कोई योग्य है इस निर्णयके लिये फल बलसे कल्पना कियागया तत्तत् पदार्थका स्वभावही (शरण) नियामक है (अन्यथा) यदि फल बल कल्प्यदार्थ स्वभावको नियामक न माने तो आपके न्यायमतमें भी तो यह धर्माधर्मभी सुखादिकोंकी तरह समानही आत्मधम हैं इनकाभी सुखादिकोंकी तरह आपको प्रत्यक्ष होना चाहिये ॥

नचैवमपि वर्तमानतादशायां त्वं सुखीत्यादिवाक्यजन्यज्ञानस्य प्रत्यक्षतास्यादितिवाच्यम् । इष्टत्वात् दशमस्त्वमसीऽत्यादौ सन्निकृष्टविषयेशब्दादप्यपरोक्षज्ञानाभ्युपगमात् । अतएव पर्वतोवह्निमानित्यादिज्ञानमपि वह्न्यंशे परोक्षं पर्वतांशेऽपरोक्षं पर्वताद्यवच्छिन्नचैतन्यस्य बहिर्निःसृतान्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्याभेदात् । वह्न्यंशेत्वन्तःकरणवृत्तिनिर्गमनासम्भवेन वह्न्यवच्छिन्नचैतन्यस्यप्रमाणचैतन्यस्यच परस्परंभेदात्।तथाचानुभवः "पर्वतंपश्यामि वह्निमनुमिनोमीति" ॥

(शंका) ऐसे निवेश करनेसेभी आपके सिद्धान्तसे वर्तमानदशामें 'त्वं सुखी' इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञानका प्रत्यक्ष होना चाहिये परन्तु ऐसे स्थलमें योग्यता तो शाब्दबोधकी है. (समाधान) यह वार्ता हमको इष्ट ही है (दशमस्त्वमसि) अर्थात् दशम तुम हो, इत्यादि समीपवर्ति विषय

स्थलमें शब्दसे भी हम अपरोक्ष ज्ञानही मानतेहैं (अतएव) प्रमाणचैतन्य का योग्य वर्तमान विषय चैतन्यके साथ अभेदको प्रत्यक्षका प्रयोजक होनेहीसे 'पर्वतोवह्निमान्' इत्यादि अनुमित्यात्मक ज्ञानभी वह्नि अंशमें परोक्ष है अर्थात् अनुमित्यात्मक है और पर्वतांशमें अपरोक्षात्मक है क्योंकि ऐसे स्थलमें पर्वतावच्छिन्न चैतन्य तथा बहिर्निर्गत जो अन्तःकरणकी वृत्तिः तादृश वृत्त्य-वच्छिन्न चैतन्यका अभेद है । और वह्नि अंशमें अन्तःकरणकी वृत्तिका निर्गमन हुआ नहीं है इस लिये वह्नि अवच्छिन्न चैतन्यका प्रमाण चैतन्यके साथ अभेद भी नहीं है । और ऐसेही अनुभवभी यही होता है कि ' पर्वतको मैं देखताहूं ' तथा उसमें ' वह्निका अनुमान करताहूं ' ॥

न्यायमते तुपर्वतमनुमिनोमीत्यनुव्यवसायापत्तिः।असन्निकृष्ट-पक्षकानुमितौ तु सर्वांशेपि ज्ञानं परोक्षं सुरभिचंदनमित्या-दिज्ञानमपि चंदनखंडांशे अपरोक्षं सौरभांशेतुपरोक्षं सौरभ्य-स्यचक्षुरिन्द्रियायोग्यतया योग्यत्वघटितस्यनिरुक्तलक्षण-स्याभावात् ॥

परन्तु ' पवतावह्निमान् ' इत्यादि ज्ञानको सर्वांशमें अनुमितिरूप माननेवाले नैयायिकको ऐसे स्थलमें 'मैं पर्वतका अनुमान करताहूं' इत्याकारक अनुव्यवसा-यभी होना चाहिये। एवं 'पृथिवी परमाणुर्गन्धवान् पृथिवीत्वात् घटादिवत्' इत्यादि असन्निकृष्टपक्षक अनुमितिमें ज्ञान सर्वांशमें परोक्षही रहताहै और ' सुरभि-चन्दनं' इत्यादि ज्ञानभी चन्दन खण्ड अंशमें अपरोक्षहै तथा सौरभ अंशमें परोक्ष है क्योंकि 'सौरभ' नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं है इसलिये पूर्वोक्त योग्यता-घटित लक्षणका लक्ष्यभी नहीं है ॥

नचैवमेकत्र ज्ञाने परोक्षत्वापरोक्षत्वयोरभ्युपगमे तयोर्जातित्वं नस्यादितिवाच्यम् । इष्टत्वात् ।जातित्वोपाधित्वपरिभाषायाः सकलप्रमाणागोचरतया अप्रामाणिकत्वात् । घटोयमित्या-दिप्रत्यक्षंहि घटत्वादिसद्भावेमानं नतुतस्यजातित्वेपि ॥

(शंका) 'पर्वतो वह्निमान्' या 'सुरभिचन्दनं ' इत्यादि एकही ज्ञानमें आंशिक परोक्षापरोक्षत्व माननेसे इन दोनों धर्मोंमेंसे किसीको भी जातिरूपता सिद्ध न

होगी क्योंकि जहां एक धर्मीमें दो धर्म हों वहां संकर दोष जातिका बाधक होताहै। (समाधान) यह वार्ता हमारे इष्टही है ' जाति उपाधि ' आदि रूप नैयायिकोंके संकेतमें कोई प्रमाण नहीं है किन्तु उनके स्वकल्पित अप्रमाणिक संकेत हैं ' अयं घटः इत्यादि प्रत्यक्ष घटत्वादिपदार्थके सद्भावमें प्रमाणहै किन्तु उसको जाति या उपाधिरूपता नहीं कहता ॥

जातित्वरूपसाध्याप्रसिद्धौ तत्साधकानुमानस्याप्यनवकाशात् । समवायासिद्धया ब्रह्माभिन्ननिखिलप्रपंचस्यानित्यतयाचनित्यत्वसमवेतत्वघटितजातित्वस्य घटत्वादावसिद्धेश्च । एवमेवोपाधित्वमपिनिरसनीयम् ॥

(शंका) 'घटत्वादिकं जातिः उपाधिभिन्न सामान्यधर्म्मत्वात् सत्तावत्' इत्यादि अनुमान प्रमाणसे जातिकी सिद्धि होसकती है (समाधान) जातिरूप साध्यके सर्वथा अप्रसिद्ध होनेसे जातिके साधक अनुमानकाभी प्रकृतमें कुछ उपयोग नहींहै आपने 'नित्यसम्बन्ध' को समवाय मानाहै और नित्यत्वे सति अनेक समवेतरूपा जाति मानी है परन्तु विचार करनेसे समवाय कुछ वस्तु नहीं है तथा तद्घटित जाति भी कुछ पदार्थ नहीं है वेदान्त सिद्धान्तमें ब्रह्मसे भिन्न यावत् प्रपञ्च अनित्य है इसलिये ' नित्यत्व ' तथा 'समवेतत्व' घटित जातिकी सिद्धिः घटादि पदार्थोंमें होनी दुर्घट है इसीरीतिसे उपाधिका निरासभी समझ लेना चाहिये ॥

पर्वतोवह्निमानित्यादौ चपर्वतांशे वह्न्यंशेचान्तःकरणवृत्तिभेदांगीकारेण तत्तद्वृत्त्यवच्छेदकभेदेन परोक्षत्वापरोक्षत्वयोरेकत्रचैतन्येवृत्तौ नविरोधः । तथाच तत्तदिन्द्रिययोग्यवर्तमानविषयावच्छिन्नचैतन्याभिन्नत्वं तत्तदाकारवृत्त्यवच्छिन्नज्ञानस्य तत्तदंशेप्रत्यक्षत्वम् ॥

---

१ परस्पर अत्यन्ताभावके समानाधिकरणमें रहनेवाले धर्मद्वयके एकत्रसमावेशका नाम संकरहै जैसे भूतत्त्व धर्मके अत्यन्ताभावके अधिकरण मनमें मूर्तत्व है और मूर्तत्व धर्मके अत्यन्ताभावके अधिकरण आकाशमें भूतत्त्वहै परन्तु पृथिविआदि चारोंमें भूतत्व मूर्तत्त्व दोनों धर्म हैं इसलिये ये दोनों धर्म जातिरूप नहीं हैं एवं प्रकृतमें भी परोक्षत्व अपरोक्षत्व आत्मक परस्पर विरुद्धधर्मद्वयका 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यादि ज्ञानमें एकत्र समावेश होनेसे संकर दोष होसकता है ॥

'पर्वतो वह्निमान्' इत्यादि ज्ञानस्थलमें पर्वतअंशमें तथा वह्निअंशमें अन्तः-करणकी वृत्तिका भेद माना है इसलिये तत्तद्वृत्त्यवच्छेदकके भेदसे चैतन्य प्रतिबिम्बित वृत्त्यात्मक ज्ञानमें परोक्षत्वापरोक्षत्वका एकस्थलमें भी परस्पर कुछ विरोध नहीं है (तथाच) इसरीतिसे तत्तद्वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यका तत्तद् इन्द्रियके योग्य जो 'वर्तमानविषय' तादृश विषयावच्छिन्न चैतन्यके साथ अभेद होना ही तत्तद् ज्ञान अंशके प्रत्यक्षमें प्रयोजक है. यही तत्तदाकारवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यका तत्तदंशमें प्रत्यक्ष है ॥

घटादेर्विषयस्य प्रत्यक्षत्वंतु प्रमात्रभिन्नत्वं।ननुकथं घटादेरन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्याभेदः अहमिमंपश्यामिइतिभेदानुभवविरोधादितिचेत् । उच्यते । प्रमात्रभेदोनामनतदैक्यं किंतुप्रमातृसत्तातिरिक्तसत्ताकत्वाभावः। तथाच घटादेः स्वावच्छिन्नचैतन्येऽध्यस्ततया विषयचैतन्यसत्तैवघटादिसत्ता। अधिष्ठानसत्तातिरिक्ताया आरोपितसत्ताया अनंगीकारात् । विषयचैतन्यंचपूर्वोक्तप्रकारेणप्रमातृचैतन्यमेवेति । प्रमातृचैतन्यस्यैवघटाद्यधिष्ठानतया प्रमातृसत्तैवघटादिसत्ता नान्येतिसिद्धं घटादेरपरोक्षत्वम् ॥

दूसरा घटादिविषयगत प्रत्यक्ष तो 'प्रमात्रभिन्नत्व' अर्थात् प्रमातृसत्तासे अभिन्नसत्ताकत्व मात्र है (शंका) पूर्वोक्त रीतिसे प्रमाता नाम अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य का है एवं उस अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यके साथ घटादिविषयोंका अभेद कैसे होसकता है? क्योंकि 'मैं इस घटको देखता हूं' इत्यादि विषयविषयी भावके भेदके बोधक अनुभवसे विरोध प्रतीत होताहै (समाधान) हमारे सिद्धान्तमें प्रमाताके साथ घटादिविषयका अभेद उन दोनों का एकस्वरूप होजाना रूप नहीं है किन्तु घटादिविषयोंको प्रमातृसत्तासे अतिरिक्त सत्ता शून्य होना मात्र है (तथाच) एवं हमारे वेदान्तसिद्धान्तमें घटादिपदार्थोंको स्व स्वावच्छिन्न चैतन्यमें अध्यस्त अर्थात् असत्वे सति प्रतीयमान होनेसे विषयचैतन्यसत्ताही घटादि पदार्थोंकी सत्ताहै क्योंकि आरोपित पदार्थकी सत्ता स्वअधिष्ठानसत्ताके अतिरिक्त अंगीकार नहीं है और विषयचैतन्य तो पूर्वोक्त रीतिसे प्रमातृ चैतन्य स्वरूपही है; एवं प्रमातृचैतन्य ही घटादि पदार्थों का अधिष्ठान स्वरूप होनेसे प्रमातृसत्तास्वरूप ही घटादि पदार्थोंकी सत्ताहै इसरीतिसे घटादि पदार्थोंमें अपरोक्षताभी सिद्ध होती है ॥

अनुमित्यादिस्थलेत्वन्तःकरणस्य वह्न्यादिदेशनिर्गमनाभावे नवह्न्यवच्छिन्नचैतन्यस्य प्रमातृचैतन्यानात्मकतया वह्न्यादि-सत्ताप्रमातृसत्तातोभिन्नेतिनातिव्याप्तिः । नन्वेवमपिधर्माधर्मादि गोचरानुमित्यादिस्थले धर्माधर्म्मयोःप्रत्यक्षत्वापत्तिः धर्मा-द्यवच्छिन्नचैतन्यस्य प्रमातृचैतन्याभिन्नतया धर्मादिसत्तायाः प्रमातृसत्तानतिरेकादितिचेन्न योग्यत्वस्यापि विषयविशे-षणत्वात् ॥

और अनुमिति आदि ज्ञानस्थलमें अन्तःकरणका वह्नि आदिदेशमें गमन नहीं है इसलिये वह्नि अवच्छिन्न चैतन्य प्रमातृचैतन्यात्मक न होनेसे तथा वह्नि आदिकी सत्ता प्रमातृसत्तासे भिन्न होनेसे अनुमिति ज्ञानमें अतिव्याप्ति नहीं है (शंका) इस पूर्वोक्त निवेश करनेसे भी धर्माधर्मादिविषयक अनुमितिस्थलमें धर्म्माधर्मका भी प्रत्यक्ष होना चाहिये क्योंकि उक्तरीतिसे धर्माद्यवच्छिन्न चैतन्यका प्रमातृचैतन्यके साथ अभेद है इसीलिये धर्मादिसत्ता भी प्रमातृ सत्तासे पृथक् नहीं हैं (समाधान) योग्यत्वको भी विषयका विशेषण देना चाहिये अर्थात् साक्षात्कार करणीय पदार्थ प्रत्यक्षके योग्य होना चाहिये उक्त धर्मादि प्रत्यक्षके योग्य नहीं है इसलिये उनमें लक्षणकी अतिप्रसक्तिरूप दोष भी नहींहै ॥

नन्वेवमपिरूपीघट इति प्रत्यक्षस्थले घटगतपरिमाणादेः प्रत्य-क्षत्वापत्तिःरूपावच्छिन्नचैतन्यस्यपरिमाणाद्यवच्छिन्नचैतन्यस्य चैकतया रूपावच्छिन्नचैतन्यस्य प्रमातृचैतन्याभेदे परिमाणा-द्यवच्छिन्नचैतन्यस्यापि प्रमात्रभिन्नतया परिमाणादिसत्तायाः प्रमातृसत्तातिरिक्तत्वाभावादितिचेन्न तत्तदाकारवृत्त्युपहितत्व-स्यापि प्रमातृविशेषणत्वात् । रूपाकारवृत्तिदशायां परिमाणा द्याकारवृत्त्यभावेन परिमाणाद्याकारवृत्त्युपहितप्रमातृचैतन्या-भिन्नसत्ताकत्वाभावेनातिव्याप्त्यभावात् ॥

(शंका) उक्त निवेश करनेसेभी ' रूपवान् घटः ' इत्याकारक ज्ञानकालमें घटगत परिमाणादिका भी प्रत्यक्ष होना चाहिये क्योंकि रूप तथा परिमाण दोनों घटरूप एकाधिकरणमें रहते हैं इसलिये रूपावच्छिन्न चैतन्यही परिमाणाव-वच्छिन्न चैतन्य है एवं रूपावच्छिन्न चैतन्यका यदि प्रमातृचैतन्यके साथ अभेद

है तो परिमाणाद्यवच्छिन्न चैतन्यकाभी प्रमातृचैतन्यके साथ अभेदही है। इस रीतिसे परिमाणादिसत्ताको प्रमातृसत्तासे अतिरिक्त न होनेसे उक्त विषय प्रत्यक्षलक्षणकी परिमाणादिमें अतिव्याप्ति है। (समाधान) तत्तद्विषयाकार वृत्त्युपहितत्व भी प्रमातामें विशेषण देना चाहिये। एवं जिससमय प्रमाताकी रूपाकार वृत्ति है अथात् जिसकालमें प्रमातारूपाकार वृत्ति उपहित है उसकालमें परिमाणाकार वृत्तिउपहित नहीं है। एवं परिमाणादि आकार वृत्तिउपहित प्रमातृचैतन्यके साथ अभिन्न सत्ताके अभाव होनेसे घटादिगत रूप साक्षात्कारकालमें परिमाणादिकोंमें अतिव्याप्ति नहीं है ॥

नन्वेवंवृत्तावव्याप्तिः अनवस्थाभिया वृत्तिगोचरवृत्त्यनंगीकारेण तत्रस्वाकारवृत्त्युपहितत्वघटितोक्तलक्षणाभावादिति चेत् न अनवस्थाभियावृत्तेर्वृत्त्यन्तराविषयत्वेऽपिस्वविषयत्वाभ्युपगमेन स्वविषयवृत्त्युपहितप्रमातृचैतन्याभिन्नसत्ताकत्वस्यतत्रापिभावात् । एवंचान्तःकरणतद्धर्मादीनांकेवलसाक्षिविषयत्वेपि तत्तदाकारवृत्त्यभ्युपगमेनोक्तलक्षणस्य तत्रापिसत्वान्नाव्याप्तिः ॥

(शंका) आपने परिमाणादिकोंमें अतिव्याप्तिवारणके लिये 'तत्तदाकार वृत्तिउपहितत्व' प्रमातामें विशेषण दिया है परन्तु इस विशेषण देनेसे वृत्तिमें अव्याप्ति होती है क्योंकि अनवस्थाके भयसे वृत्तिविषयक वृत्ति तो स्वीकारही नहीं. एवं (तत्र) उस वृत्तिमें (स्व) वृत्त्याकार वृत्त्युपहितत्व घटित पूर्वोक्त लक्ष्मण समन्वित नहीं है। (समाधान) अनवस्थाके भयसे यद्यपि वृत्तिमें वृत्यन्तरकी विषयता नहीं है तथापि वृत्ति अपने को आप विषय कर सकती है, ऐसा हम अनुभवानुरोधसे मानते हैं. एवं अपनेको विषय करनेवाली वृत्तिसे उपहित जो प्रमाता तादृश प्रमातृचैतन्यके साथ अभिन्न सत्तावाली उक्त वृत्ति है इसलिये उसमें अव्याप्तिरूप दोष नहीं है ऐसेही जैसे वृत्तिको अपनेको आप विषय करनेवाली मानके अव्याप्ति दूर करीहै वैसेही अन्तःकरण तथा उसके कामक्रोधादि धर्मोंको केवल साक्षिवेद्य होनेसेभी तत्तत् काम क्रोधादि आकार वृत्तिके अंगिकार करनेसे पूर्वोक्तलक्षणकी संगति कामादि स्थलमें भी होसकती है इसलिये ऐसे स्थलमें भी अव्याप्तिरूप दोष नहीं है ॥

नचान्तःकरणतद्धर्मादीनां वृत्तिविषयत्वाभ्युपगमे केवलसाक्षिविषयत्वाभ्युपगमविरोध इतिवाच्यम् नहि वृत्तिंविनासाक्षिविषयत्वं केवलसाक्षिवेद्यत्वं किंत्विन्द्रियानुमानादिप्रमाणव्यापारमन्तरेणसाक्षिविषयत्वम् । अतएवाहंकारटीकायामाचार्य्यैरहमाकारान्तःकरणवृत्तिरंगीकृता अतएवचप्रातिभासिकरजतस्थलेरजताकाराविद्यावृत्तिः सांप्रदायिकैरंगीकृता तथाचान्तःकरणतद्धर्मादिषुकेवलसाक्षिवेद्येषु वृत्त्युपहितत्वघटितलक्षणस्यसत्वान्नाव्याप्तिः ॥

(शंका) अन्तःकरण तथा उसके कामादि धमाम आपने वृत्तिकी विषयता भी मानी हैं परन्तु इस मन्तव्यका आपके इनको केवल साक्षी वेद्यत्व मानने रूप मन्तव्यके साथ विरोध है अर्थात् आपके वेदान्त सिद्धान्तमें अन्तःकरण तद्धर्म्मादि यावत् साक्षि वेद्य माने हैं. अब उनमें वृत्तिविषयता माननी उचित नहीं । (समाधान) वृत्तिसे विना केवल साक्षीके विषय पदार्थ का नाम साक्षिवेद्य नहीं है किन्तु इन्द्रियअनुमानादि प्रमाणोंके व्यापारसे बिना जो विषय हो वह पदार्थ साक्षिवेद्य है (अत एव) साक्षिका विशेषणी भूत केवल पद वृत्तिका व्यावर्त्तक नहीं है इसीसे अहंकार निरूपण पर ग्रन्थकी टीकामें पद्मपादाचार्य्यने 'अहमाकार' अन्तःकरणकी वृत्ति अङ्गीकार करी है इसीलिये प्रातिभासिक रजतस्थलमें रजताकारा अविद्याकी वृत्ति सवज्ञ मुनिप्रभृति सांप्रदायक लोगोंने मानीहै. (तथाच) इसरीतिसे अन्तःकरण तथा उसके धर्मों को केवल साक्षिवेद्य होनेसे भी उनमें पूर्वोक्त वृत्तिउपहितत्व घटित लक्षणके विद्यमान होनेसे अव्याप्तिरूप दोष नहीं है ॥

तदयंनिर्गलितोर्थः स्वाकारवृत्त्युपहितप्रमातृचैतन्यसत्तातिरिक्तसत्ताकत्वशून्यत्वेसतियोग्यत्वंविषयस्यप्रत्यक्षत्वं तत्रसंयोगसंयुक्ततादात्म्यादीनांसन्निकर्षाणांचैतन्याभिव्यंजकवृत्तिजननेविनियोगः ॥

वही यह उक्त विशेषण विशिष्ट समुदित लक्षण ऐसे हुआ कि (स्व) विषयावगाहिनी जो वृत्ति तादृश वृत्त्युपहित जो प्रमातृचैतन्य तादृश प्रमातृचैतन्य

१ शारीरक चतुःसूत्रीके भाष्यपर पञ्चपादिका नामक व्याख्यामें अहंकारका निरूपण किया है उसके ऊपर पद्मपादाचार्य्यकी टीका है.

सत्तासे अतिरिक्त सत्ताशून्य होकर प्रत्यक्षके योग्य होना विषयगत प्रत्यक्षका लक्षण है (तत्र) उक्त प्रत्यक्षमें संयोग तथा संयुक्त तादात्म्यादि सम्बन्धोंका चैतन्यकी अभिव्यक्ति करनेवाली वृत्तिके उत्पादनमें विनियोग है अर्थात् संयोग का घटाकार वृत्तिके उत्पादनमें विनियोग है संयुक्त तादात्म्यका 'रूपवान् घटः' इत्याकारक वृत्तिके उत्पादनमें विनियोग है तथा संयुक्ताभिन्न तादात्म्य रूप सम्बन्धका 'रूपत्वविशिष्टरूपवान् घटः' इत्याकारक वृत्तिके उत्पादनमें उपयोग है ॥

साचवृत्तिश्चतुर्विधा संशयोनिश्चयोगर्वःस्मरणमिति एवंविध वृत्तिभेदेनएकमप्यन्तःकरणंमनइतिबुद्धिरितिअहंकारइतिचित्तमितिव्याख्यायते । तदुक्तं—

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमान्तरम् ॥
संशयोनिश्चयो गर्वः स्मरणं विषया इमे ॥

वहपूर्वोक्त अन्तःकरणकी वृत्ति 'संशय' 'निश्चय' 'गव' तथा 'स्मरण' भेदसे चार प्रकारकी है इस प्रकारके वृत्तिभेदसे एकही अन्तःकरण 'मन' 'बुद्धि' 'अहंकार' तथा 'चित्त' इन चार संज्ञाको लाभ करता है (तदुक्तं) इसी वार्ताको पूर्व आचार्य्योंनेभी लिखा है कि मन, बुद्धि, अहंकार, तथा चित्त यह चार प्रकारका अन्तःकरण है. संशय, निश्चय, गव, तथा स्मरण, ये चार यथाक्रम उक्त अन्तःकरणके विषय हैं ॥

तच्चप्रत्यक्षंद्विविधम् सविकल्पकनिर्विकल्पकभेदात् । तत्रसविकल्पकंवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं यथाघटमहंजानामीत्यादि ज्ञानं निर्विकल्पकंतुसंसर्गानवगाहिज्ञानं यथासोयंदेवदत्तः तत्त्वमसीत्यादिवाक्यजन्यज्ञानम् ॥

पूर्वोक्त विषयावच्छिन्न चैतन्याभिन्न वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यरूप प्रत्यक्ष सविकल्पक, निर्विकल्पक भेदसे फिर दो प्रकारका है; उनमें सविकल्पक प्रत्यक्ष तो वैशिष्ट्यावगाही ज्ञानका नाम है जैसे 'घटमहं जानामि' इत्यादि ज्ञानको घट विशेषणविशिष्ट जो (अयंघटः) इत्यादिज्ञान, तादृश ज्ञानके अवगाहन करनेवाला होनेसे वैशिष्ट्यावगाही कहसकते हैं ऐसेही संसर्गानवगाही ज्ञान का नाम निर्विकल्पक ज्ञान है जैसे " सोऽयं देवदत्तः " इत्यादि ज्ञानको विशेषण विशेष्य सम्बन्धरूप वैशिष्ट्यानवगाही होनेसे संसर्गानवगाही कह सकते हैं विशेषण विशेष्य सम्बन्ध

का नामही 'संसर्ग' है. उसीको 'वैशिष्ट्य' भी कहते हैं देशकालसे उपलक्षित देवदत्तरूप अभेद विषयस्थलमें 'सोऽयं देवदत्तः' इत्याकारक इन्द्रियजन्य ऐक्य प्रत्यक्ष होनेसे सन्निकर्ष वशसे उपलक्षक देशकालादिकोंका भी भान होताहै और 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'वही तू है' इत्यादि शब्दजन्य ज्ञानस्थलमें तो वक्ताके तात्पर्यके विषयहीका नियम से भान होता है. प्रकृतमें अभेद मात्र तात्पर्य्यका विषय है ॥

ननुशाब्दमिदंज्ञानं नप्रत्यक्षमिन्द्रियाजन्यत्वादितिचेत् न नहि इन्द्रियजन्यत्वंप्रत्यक्षत्वेतंत्रं दूषितत्वात् किंतुयोग्यवर्तमानविषयकत्वेसतिप्रमाणचैतन्यस्य विषयचैतन्याभिन्नत्वमित्युक्तम् तथाचसोऽयंदेवदत्तः इतिवाक्यजन्यज्ञानस्यसन्निकृष्टविषयतयाबहिर्निःसृतान्तःकरणवृत्त्यभ्युपगमेन देवदत्तावच्छिन्नचैतन्यवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्ययोरभेदेन सोऽयंदेवदत्तः इतिवाक्यजन्यज्ञानस्यप्रत्यक्षत्वम् ॥

(शंका) 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञान शाब्दज्ञान है; इसलिये इसको इन्द्रियअजन्य होनेसे प्रत्यक्ष कहना उचित नहीं. (समाधान) प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक इन्द्रियजन्यत्वरूप धर्म्म नहीं है क्योंकि इसका हमने मनोरूप इन्द्रियसे जन्य अनुमिति आदिकों में अतिव्याप्ति प्रदर्शनसे पूर्व खण्डन कियाहै किन्तु प्रत्यक्षके योग्य जो वर्तमान विषय तादृश विषयावगाही प्रमाणचैतन्य के साथ विषय चैतन्य का अभेद ही पूर्वोक्त प्रत्यक्ष है (तथाच) इसरीतिसे "सोऽयं देवदत्तः" इत्यादि वाक्यजन्यज्ञानका विषय सन्निकृष्ट होनेसे बाह्य निर्गत अन्तःकरण की वृत्तिके स्वीकार करनेसे देवदत्तावच्छिन्न चैतन्यका तथा तद्विषयक वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यका परस्पर अभेद होनेसे 'सोऽयंदेवदत्तः' इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञानको प्रत्यक्षात्मकता सिद्ध है ॥

एवं तत्त्वमसिइत्यादिवाक्यजन्यज्ञानस्यापि तत्र प्रमातुरेवविषयतया तदुभयाभेदस्य सत्वात् ननु वाक्यजन्यज्ञानस्यपदार्थसंसर्गावगाहितया कथंनिर्विकल्पकत्वम्। उच्यते। वाक्यजन्यज्ञानविषयत्वेहिनपदार्थसंसर्गत्वंतंत्रं अनभिमतसंसर्गस्यापिवाक्यजन्यज्ञानविषयत्वापत्तेः किंतुतात्पर्यविषयत्वम् ॥

ऐसेही 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञानका विषयभी सन्निकृष्ट होनेसे अर्थात् 'तत्त्वं' पदोंके लक्षभाग प्रमाताको विषय करनेवाली उक्तवाक्यजन्य अन्तःकरण की वृत्तिके स्वीकार करनेसे लक्षचैतन्य का तथा वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यका परस्पर अभेद होनेसे प्रत्यक्ष कह सकतेहैं । प्रकृतमें 'त्वं' पद लक्षके साथ 'तत्' पद लक्षका अभेद है. (शंका) संसर्गता प्रकारता अनवगाही ज्ञानका नाम निर्विकल्पक ज्ञान है और 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञान 'गामानय' इत्यादि ज्ञानकी तरह पदार्थ संसर्गावगाही है अर्थात् जैसे 'गामानय' इत्यादि वाक्यमें गोपदार्थका कर्मत्वेन आनयनरूपा क्रियामें तथा क्रियाका अनुकूलत्वेन कृतिमें तथा कृतिका आश्रयत्वेन देवदत्तादि कर्तामें संसर्गावगाहन होकर पश्चात् "गोकर्मकं यदानयनं तादृशानयनानुकूला वर्तमानकालिका या कृतिः तादृशकृत्या श्रयो भव" इत्यादि शाब्दबोध होताहै वैसेही 'तत्वमसि' आदि वाक्योंमे भी पदार्थ संसर्गावगाहन होसकताहै एवं पदार्थसंसर्गावगाही होनेसे वाक्यजन्य ज्ञानको निर्विकल्पक नहीं कह सकते. (समाधान) उच्यते। वाक्यजन्य ज्ञानीय विषयतामें कोई पदार्थ संसर्गको कारणता नहीं है यदि ऐसा होय तो भोजन प्रकरणमें 'सैन्धवमानय' इत्यादि वाक्यसे अनभिमत अश्वादिके संसर्गकी भी स्फूर्ति होनी चाहिये 'किन्तु' तात्पर्य्य विषयताको विद्वानोंने वाक्यजन्य ज्ञानीय विषयतामें कारण माना है ॥ ३१ ॥

प्रकृतेच "सदेवसोम्येदमग्रआसीत्" इत्युपक्रम्य "तत्सत्यंस आत्मातत्त्वमसि श्वेतकेतो" इत्युपसंहारेण विशुद्धे ब्रह्मणिवे दान्तानांतात्पर्यमवसितमितिकथंतात्पर्याविषयसंसर्गमवबोध येत् इदमेवतत्त्वमस्यादिवाक्यानामखंडार्थत्वम्, यत्संसर्गान वगाहियथार्थज्ञानजनकत्वमिति ॥

उस तात्पर्य्यके निर्णायक उपक्रमोपसंहारादि षड्विध लिङ्ग हैं. प्रकृतमें अद्वितीय ब्रह्म ही 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंके तात्पर्य्यका विषय है क्योंकि छान्दोग्य षष्ठ प्रपाठकमें उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतुके प्रति 'सदेव सोम्य' अर्थात् हे प्रिय दर्शन (इदं) यह परिदृश्यमान जगत् (अग्रे) अपनी उत्पत्तिसे पूर्व (सदेव) सद्रूपही (आसीत्) था इत्यादि अर्थक वचनका (उपक्रम) आरम्भ करके मध्यमें यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् आत्मस्वरूप है, इत्याद्यर्थक अनेक वाक्योंके उपदेशके अनन्तर 'हे श्वेतकेतो वह सत्यस्वरूप आत्मा है वही तेरा स्वरूप है' इत्याद्यर्थक वाक्यसे शेषमें (उपसंहार) अर्थात् समाप्ति करी है एवं इत्यादि श्रुतिवचनोंके तात्पर्य्यावधारणसे विशुद्ध ब्रह्महीमें यावत् वेदान्त

वचनोंके तात्पर्य्यका निश्चय होताहै इसलिये स्वतात्पर्य्याविषयभूत संसर्गादिके बोधनमें वेदान्तोंका सामर्थ्य नहीं है. संसर्गादिको न विषय करनेवाला जो यथार्थज्ञान तादृश यथार्थ ज्ञानके जनक होनाही 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्तवाक्यों में अखण्डार्थकता है ॥

तदुक्तम्–संसर्गासंगिसम्यग्धीहेतुतायागिरामियम् ॥
उक्ताखंडार्थतायद्वातत्प्रातिपदिकार्थता ॥ १ ॥
प्रातिपदिकार्थमात्रपरत्वंवाखंडा र्थत्वमितिचतुर्थपादार्थः॥

इसी वार्ताको (संसर्गासंगी) इत्यादि कारिकासे चित्सुखाचार्य्यजीने भी कहाहै (गिरां) तत्त्वमस्यादिवाक्योंको (या) जो (इयं) यह (संसर्गासंगिसम्यग्धीहेतुता) संसर्गता प्रकारता अनवगाहि यथार्थज्ञान जनकता है उसीका नाम 'अखण्डार्थकता' है अथवा उसीका नाम 'प्रातिपदिकाथकता' है अथवा 'प्रातिपदिकार्थ मात्र परत्व होना अर्थात्' प्रातिपदिकार्थ मात्र के बोधक होनाही वाक्य को 'अखण्डार्थकत्व' है ऐसा चौथे पादका अर्थ जानना ॥ १ ॥

तच्चप्रत्यक्षंपुनर्द्विविधं जीवसाक्षिईश्वरसाक्षिचेति तत्रजीवो नामान्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यं तत्साक्षितुअंतःकरणोपहितचैतन्यं अन्तःकरणस्यविशेषणत्वोपाधित्वाभ्यामनयोर्भेदः विशेषणंचकार्यान्वयिव्यावर्त्तकं उपाधिश्चकार्य्यानन्वयीव्यावर्तकेवर्तमानश्च रूपविशिष्टोघटोऽनित्यइत्यत्ररूपंविशेषणम् । कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नंनभःश्रोत्रमित्यत्रकर्णशष्कुल्युपाधिः । अयमेवोपाधिर्नैयायिकैःपरिचायकइत्युच्यते ॥

पूर्व कहा सविकलपक निर्विकलपक भेदसे दो प्रकारका प्रत्यक्षही 'जीवसाक्षी' ईश्वरसाक्षी' भेदसे दो प्रकारका है अर्थात् एक जीवके साक्षीसे जन्य है, और दूसरा ईश्वर के साक्षीसे जन्य है उनमें जीव नाम अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य, का है और जीवसाक्षी नाम अन्तःकरण उपहित चैतन्यका है. एकही अन्तःकरण विशेषण तथा उपाधिरूप होकर एकही चेतन में 'जीव' तथा 'जीव साक्षी' व्यवहार को करवाता है अर्थात् वही अन्तःकरण जीवका विशेषण है और जीवसाक्षी की उपाधि है 'कार्य्यमें अन्वित होकर स्ववर्तमान अव–

स्थामें व्यावर्त्तक' का नाम विशेषण है. तथा 'कार्य्यमें अनन्वित होकर स्ववर्त-मान अवस्थामें व्यावतक' का नाम उपाधि है. ' कार्य्य ' पद प्रकृतमें अवच्छे-द्यान्वय योग्य पदार्थ पर है विशेषण उदाहरण जैसे ' रूपविशिष्टो घटोऽनित्यः' इत्यादि स्थलमें रूप विशेषण है. एवं ' कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाश श्रोत्र ' है इत्यादि स्थलमें कर्णशष्कुली उपाधि है ' इसी उपाधिको नैयायिक लोग ' परिचायक ' भी कहते हैं ॥ ३४ ॥

प्रकृतेचान्तःकरणस्यजडतयाविषयभासकत्वायोगेनविषयभसकचैतन्योपाधित्वम् ।अयंचजीवसाक्षीप्रत्यात्मन्नानाएकत्वेमैत्रावगतेचैत्रस्याप्यनुंसंधानप्रसंगः । ईश्वरसाक्षितुमायोपहितचैतन्यंतच्चैकम् ।तदुपाधिभूतमायाया एकत्वात्“इन्द्रोमायाभिः पूरुरूपईयते ”इत्यादिश्रुतौमायाभिरितिवहुवचनस्य मायागतशक्तिविशेषाभिप्रायतयामायागतसत्त्वरजस्तमोरूपगुणाभिप्रायतयावोपपत्तेः ॥

प्रकृतमें अन्तःकरणको जड होनेसे उसमें विषय प्रकाश करनेका सामथ्य नहीं है अतःकरणकीआवृत्तियांभी नाना हैं इसलिये तत्तद्वृति अवच्छिन्न चैतन्य भी अनेक हैं सम्पूर्ण विषयोंके अनुसन्धान करनेवाला एक कोइभा नहीं है प्रमाताको स्वयं अतःकरणावच्छिन्न हानेसे यावत् विषयोंके अनुसन्धानके लिये किसी अन्यकी अपेक्षा अवश्य है वह वही एक अन्तःकरणोपहित ब्रह्म भिन्नसाक्षीही हो सकताहै. यह जीवसाक्षी प्रत्येक जिवात्माके भेदसे भिन्न है, यदि सम्पूर्ण जीवोंका जीवसाक्षी एकही मानालिया जाय तो चैत्रावगत, अर्थात् चैत्रादि पुरुष के ज्ञात पदार्थोंका मैत्रादिकोभी चिन्तन होना चाहिये. एवं मायाउपहित चैतन्यका नाम ईश्वरसाक्षी है वह एकही है क्योंकि उसकी उपाधि स्वरूपा माया एकही है. (शंका) ईश्वरसाक्षीका एक मानना (इन्द्रो मायाभिः०) अर्थात् “इन्द्र परमेश्वर अपनी अनेक प्रकारकी मायासे (पुरु) नाना रूपको प्राप्त होता है” इत्यादि अर्थवाली श्रुतिसे विरुद्ध है क्योंकि इस श्रुतिमें 'मायाभिः' यह बहु वचन माया के बहुत्वका बोधक है एवं तदुपहित ईश्वरसाक्षी भी बहुतही होने चाहिये (समाधान) उक्त श्रुति गत ' मायाभिः ' यह बहुवचन मायागत विचित्र अनेक प्रकारकी शक्तिविशेषके तात्पर्य्यसे है अथवा मायागत सत्वरजस्तमो रूपगुणोंके अभिप्रायसे भी कहसकते हैं ॥

मायांतुप्रकृत्तिंविद्यान्मायिनंतुमहेश्वरम्

“ अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांवह्वीःप्रजास्सृजमानांसरूपाः ॥
अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेतेजहात्यनांभुक्तभोगामजोन्यः ”

तरत्यविद्यांविततांहृदियस्मिन्निवेशिते ॥
योगीमायाममेयायतस्मैविद्यात्मनेनमः ॥ १ ॥

इत्यादिश्रुतिस्मृतिषुएकवचनबलेन लाघवानुगृहीतेनमायाया एकत्वंनिश्चीयते ततश्चतदुपहितचैतन्यंईश्वरसाक्षि, तच्चानादि तदुपाधेर्मायायाअनादित्वात् ॥

(शंका) उक्त श्रुतिगत बहुवचनसे मायामें बहुत्व ही मान लिया जाय तो हानि क्या है? (समाधान) यह पुरुष–मायाको इस संसारकी ' प्रकृति ' अर्थात् आद्यकारण तथा (मायी) परमेश्वरको सबका स्वामीस्वरूप जाने, एवं ' अजा एका सत्त्वरजस्तमोमयी अनेक प्रकारकी विचित्र बहुत प्रजाके रचनेवालीका एक अजन्माजीव सेवन करता हुआ ' अनुशेते ' अर्थात् उसके कार्य्य शरीरादिक साथ तादात्म्यापन्न होताहै तथा अन्य अज ईश्वर अथवा विवेकी इस भुक्त भोगाको अर्थात् जिसद्वारा भोग भोग लिये हैं ऐसी को त्याग देता है अर्थात् उसके कार्य्यसंघातके साथ तादात्म्याध्यास नहीं करता है । इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनोंसे तथा जिस परमात्माके चित्तवृत्तिमें आरूढ करनेसे योगी पुरुष विस्तारवाली मायाको तरजाता है ऐसे ज्ञानस्वरूप तथा अप्रमेय परमेश्वरको नमस्कार हो, इत्यादि अथवाले स्मृतिवचनोंसे सर्वत्र मायावाचक शब्दोंमें एक वचनके बलसे तथा लाघवके अनुरोधसे मायामें एकत्वका निश्चय होता है । इसालिये मायामें बहुत्व मानना उचित नहीं है. एवं एक मायाके सिद्ध होनसे तादृशमायाउपहित चैतन्यहीका नाम ईश्वरसाक्षी है वह ईश्वरसाक्षी स्वउपाधिभूत मायाके अनादि होनेसे अनादि है ॥

मायावच्छिन्नंचैतन्यंपरमेश्वरःमायाया विशेषणत्वे ईश्वरत्वमुपाधित्वेसाक्षित्वमितिईश्वरत्वसाक्षित्वयोर्भेदः नतुधर्मिणोरीश्वरतत्साक्षिणोः । सचपरमेश्वरएकोपिस्वोपाधिभूतमायानिष्ठसत्त्वरजस्तमोगुणभेदेनब्रह्मविष्णुमहेश्वरइत्यादिशब्दवाच्यतांलभते ॥

मायाअवच्छिन्न चैतन्यका नाम परमेश्वर है । एकही चेतनमें मायाको विशेषण मानने से ' ईश्वर ' व्यवहार तथा उपाधि माननेसे ' साक्षी ' व्यवहार होताहै अर्थात् एकही माया इश्वरका विशेषण है तथा ईश्वर साक्षीकी उपाधि है । यही

ईश्वर तथा ईश्वर साक्षीका भेद है । किन्तु ईश्वर ईश्वरसाक्षीरूप धर्मीमें कुछ भेद नहीं है वह परमेश्वर वास्तवसे एकही है तौ भी अपनी उपाधिभूत माया के सत्त्वरजस्तमोगुणके भेदसे ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादि अर्थात् रजःप्रधान ब्रह्मा, सत्वप्रधानविष्णु, तमःप्रधान महादेव इत्यादि शब्द वाच्यताको लाभ करता है ॥

नन्वीश्वरसाक्षिणोऽनादित्वे "तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेय" इत्यादि नासृष्टिपूर्वसमयेपरमेश्वरस्यागन्तुकमीक्षणमुच्यमानंकथमुप पद्यते।उच्यते। यथाविषयेन्द्रियसन्निकर्षादिकारणवशेनजीवोपा ध्यन्तःकरणस्यवृत्तिभेदाजायन्ते तथासृज्यमानप्राणिकर्मव शेनपरमेश्वरोपाधिभूतमायायावृत्तिविशेषा इदमिदानींस्रष्टव्य मिदमिदानींपालयितव्यमिदमिदानींसंहर्तव्यमित्याद्याकारा जा यन्ते तासांचवृत्तीनांसादित्वात्तत्प्रतिविम्बचैतन्यमपिसादीत्यु च्यते एवं साक्षिद्वैविध्येन प्रत्यक्षज्ञानद्वैविध्यं प्रत्यक्षत्वंचज्ञेयग तंज्ञप्तिगतंचेतिनिरूपितम् ॥

(शंका) यदि ईश्वरसाक्षी आप के सिद्धान्त में अनादि है तो 'वह परमेश्वर इच्छा करता भया कि 'मैं बहुत रूपसे प्रादुर्भूत होवों' इत्यादि अर्थवाली श्रुतिसे सृष्टिके आद्यकाल में परमेश्वर का ईक्षण अर्थात् इच्छा (आगन्तुक) अनित्य कहा हुआ कैसे उपपन्न होगा? अर्थात् सृष्टिके प्रथम कालमें अनुपहित स्वरूप एक चिदात्मामें 'साक्षी आदि व्यवहार की योग्यता नहीं है और यदि उक्त इच्छा के अनन्तर साक्षी व्यवहार मानें तो साक्षीको तथा ईश्वरको नित्य कहना योग्य नहीं (समाधान) उच्यते । जैसे घटाद विषय तथा नेत्रादि इन्द्रियाके परस्पर सम्बन्धादिरूप कारणके वशसे जीवकी उपाधिभूत अन्तःकरणके अनेक प्रकारके वृत्तियोंके भेद उत्पन्न होतेहैं । वैसेही संसृज्यमान प्राणियोंके अनेक प्रकारके कर्माके वशसें परमेश्वरकी उपाधि अथात् विशेषणीभूता मायाके 'यह पदार्थ इसकाल में उत्पन्न करने चाहिये' 'इन पदार्थोंका इस कालमें पालन करना चाहिये' तथा 'इन थदार्थोंका इस कालमें संहार करना चाहिये' इत्यादि अनेक प्रकारके वृत्तियोंके भेद उत्पन्न होते हैं । उन मायावृत्तियोंके सादि होनेसे उनमें प्रतिविम्बित चैतन्यमें भी सादि व्यवहार होता है।एतावता चिदात्मस्वरूप साक्षीको अनित्यता नहीं होसकती एवं पूर्वोक्त प्रकारसे जीवसाक्षी ईशसाक्षी भेद से साक्षी को दो प्रकारका होनेसे पूर्वोक्त प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो प्रकारहीका सिद्ध हुआ इस रीतिसे (ज्ञेय) विषय गत तथा (ज्ञप्ति) ज्ञानगत प्रत्यक्षका निरूपण किया ॥

तत्रज्ञातिगतप्रत्यक्षत्वस्यसामान्यलक्षणंचित्वमेव पर्वतोवह्निमानित्यादावपिवह्न्याद्याकारवृत्त्युपहितचैतन्यस्यस्वात्मांशेस्वप्रकाशतयाप्रत्यक्षत्वात् तत्तद्विषयांशप्रत्यक्षत्वंतुपूर्वोक्तमेव तस्यच भ्रान्तिरूपप्रत्यक्षेनातिव्याप्तिःभ्रमप्रमासाधारणप्रत्यक्षत्वसामान्यनिर्वचनेनतस्यापिलक्ष्यत्वात् । यदातुप्रत्यक्षप्रमायाएवलक्षणंवक्तव्यं तदापूर्वोक्तलक्षणेऽबाधितत्वंविषयविशेषणंदेयम् शुक्तिरूप्यादिभ्रमस्य संसारकालीनबाधविषयप्रातिभासिकरजतादिविषयकत्वेनोक्तलक्षणाभावान्नातिव्याप्तिः।

उनमें (ज्ञप्ति) ज्ञानगत प्रत्यक्षका सामान्यरूपसे लक्षण 'चेतन' मात्र है । 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यादि अनुमित्यात्मक ज्ञानोंमें भी वन्ह्यादि आकार त्ति उपहित चैतन्यको स्वात्मांशमें अर्थात् अपने आपके प्रत्यक्षमें स्वप्रकाश स्वरूपता है इसलिये स्वात्मांशमें प्रत्यक्षही है । और वन्ह्यादि तत्तद् अनुमेय विषयोंमें अप्रत्यक्षत्व व्यवहार तथा घटपटादि विषयोंमें प्रत्यक्षत्वव्यवहार तो पूर्व कहही चुके हैं । (शंका) आपके पूर्वोक्त ज्ञेयगत प्रत्यक्षकी शुक्तिरजतादि असद् विषयस्थलमें अतिव्याप्ति है क्योंकि उक्तरीतिसे शुक्तिरजतादि, प्रत्यक्षके योग्यभी हैं तथा स्वगोचरवृत्तिउपहित प्रमातृचतन्यसत्तासे अतिरिक्त सत्ता शून्य भी हैं (समाधान) हमारे पूर्वोक्त विषयांश प्रत्यक्षकी शुक्तिरजतादि भ्रमस्थलीय प्रत्यक्ष में अतिव्याप्ति नहीं है । क्योंकि हमने भ्रम प्रमा साधारण प्रत्यक्ष सामान्यका निर्वचन किया है । इसलिये भ्रमस्थलीय विषयभी हमारे उक्त लक्षणका लक्षही है और यदि भ्रमात्मक ज्ञानसे भिन्न केवल प्रत्यक्ष प्रमा मात्रका अर्थात् ज्ञेयगत यथाथ प्रत्यक्ष मात्रका लक्षण कहना इष्ट होय तो पूर्वोक्त प्रमाके लक्षणमें 'अबाधितत्व' विषय का विशेषण देना चाहिये । अर्थात् प्रत्यक्षके योग्य तथा अबाध्यमान विषयको स्वगोचरवृत्तिउपहित प्रमातृ चैतन्यसत्तासे अतिरिक्त सत्ताशून्य होना चाहिये । उक्त शुक्तिरजतादि विषयक भ्रमात्मक ज्ञानको संसारदशामें ही बाधित विषय प्रातिभासिक रजतादि विषयक होनेसे पूर्वोक्त लक्षणका ऐसे स्थल में अभाव होनेसें अतिव्याप्ति नहीं है ॥

ननुविसंवादिप्रवृत्त्याभ्रांतिज्ञानसिद्धावपितस्यप्रातिभासिकतत्कालोत्पन्नरजतादिविषयकत्वे न प्रमाणं देशांतरीयरज

तस्य क्लृप्तस्यैवतद्विषयत्वसंभवादितिचेत् न तस्यासन्निकृष्टत याप्रत्यक्षविषयत्वायोगात् नचज्ञानंतत्रप्रत्यासत्तिः ज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वेततएववह्न्यादेःप्रत्यक्षत्वापत्तावनुमानाद्युच्छे दापत्तेः ॥ ३९ ॥

(शंका) विसंवादि अर्थात् निष्फल प्रवृत्ति द्वारा यद्यपि भ्रम ज्ञान की सिद्धि होसकती है तथापि उसके प्रातिभासिक तत्कालोत्पन्न रजतादि विषयक होनेमें कोई प्रमाण नहीं है । अथात् वह भ्रमज्ञान प्रातिभासिक तत्कालोत्पन्न रजतादिहीको विषय करता है इसमें कोइ प्रमाण नहीं है । किन्तु देशान्तरमें होनेवाले सिद्ध रजतकाही तादृश ज्ञान विषयत्वेन भान बन सकता है (समाधान) प्रत्यक्ष की सामग्री सन्निकषघटित है और देशान्तरमें होनेवाला रजत सान्निकृष्ट नहीं है । इसलिये उसमें प्रत्यक्षविषयता की योग्यताभी नहीं है (शंका) ऐसे स्थलमें हम उसका ज्ञानलक्षणप्रत्यासत्तिसें भान मानते हैं अर्थात् देशान्तरीय रजतके साथ भी उस कालमें ज्ञानलक्षण अलौकिक सन्निकर्ष विद्यमान है इसलिये शुक्ति देशमें उसका ज्ञान लक्षण सम्बधी से अन्यथा ही भान बन सकता है (समाधान) यदि ज्ञानलक्षण सम्बन्ध भी वस्तु साक्षात्कार में नियामक है तो उसीसे वन्ह्यादि अनुमेय पदार्थोंका भी प्रत्यक्ष होसकता है फिर अनुमानादि प्रमाणों के मानने की क्या आवश्यकता है ? ॥

ननुरजतोत्पादकानांरजतावयवानामभावेशुक्तौकथंतवापिर जतमुत्पद्यतेइतिचेत् । उच्यते । नहिलोकसिद्धसामग्रीप्राति भासिकरजतोत्पादिका किंतुविलक्षणैव तथाहि काच काम लादिदोषदूषितलोचनस्य पुरोवर्तिद्रव्यसंयोगादिदमाकारा चाकचिक्याकाराकाचिदन्तःकरणवृत्तिरुदेति तस्यांचवृत्तावि दमवच्छिन्नचैतन्यंप्रतिबिंबते तत्रपूर्वोक्तरीत्यावृत्तेर्निर्गमनेने दमवच्छिन्नचैतन्यंवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यंप्रमातृचैतन्यंचाभिन्नं भवति ततश्चप्रमातृचैतन्याभिन्नविषयचैतन्यानिष्ठाशुक्तित्वप्र कारिकाविद्याचाकचिक्यादिसादृश्यसंदर्शनसमुद्बोधितरज तसंस्कारसध्रीचीनाकाचादिदोषसमवहितारजतरूपार्थाका रेणरजतज्ञानाभासाकारेणचपरिणमते ॥

(शंका) उक्त रीतिसे यदि हमारी अन्यथाख्याति मे दोष है तो आपका अपूर्व रजतादि उत्पत्तिपक्ष भी तो असंगत है क्योंकि उसकालमें रजतादि के उत्पादक रजतादि अवयवों का अभाव होनेसे आपके मतमें भी शुक्तिदेशमें नूतन रजतउत्पत्ति बन नहीं सकती (समाधान) उच्यते । प्रातिभासिक रजतउत्पत्ति के लिये लौकिक सामग्री की आवश्यकता नहीं है किन्तु विलक्षण सामग्री अपेक्षित है (तथाहि) काच कामलादि दोषोंसे दूषित नेत्रोंका अग्र वर्ति द्रव्य के साथ संयोग होनेसे 'इदं' इत्याकारिका तथा (चाकचिक्याकारा) अर्थात् अति उज्ज्वलाकारा कोईक अन्तःकरण की वृत्ति उत्पन्न होती है उसी वृत्ति में इदंपदार्थावच्छिन्न चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है तत्पश्चात् पूर्वोक्त तडागोदकरीतिसे वृत्ति के बहिर्निर्गमनसे इदंपदार्थावच्छिन्न चैतन्यवृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य तथा प्रमातृचैतन्य इन तीनोंका अभेद होता है उस कालमें प्रमातृचैतन्य से अभिन्न जो विषयचैतन्य उस विषयचैतन्य में रहनेवाली जो शुक्तित्वप्रकारिका अविद्या है वह अविद्या चाकचिक्यादिके सादृश्य संदर्शनसे समुद्बोधित जो रजतसंस्कार तादृश रजतसंस्काररूप सामग्रीकी सहकारतासे तथा नेत्रनिष्ठ काचादि दोषके सम्बन्धसे रजतरूप अर्थके आकार से तथा रजत ज्ञाना भासाकार से अर्थात् रजतज्ञान सदृश ज्ञानस्वरूप से परिणाम को प्राप्त होती है॥

परिणामोनामउपादानसमसत्ताककार्यापत्तिः विवर्तोनाम उपादानविषमसत्ताककार्यापत्तिः प्रातिभासिकरजतंचाविद्यापेक्षयापरिणामः चैतन्यापेक्षयाविवर्तइतिचोच्यते अविद्यापरिणामरूपंचतद्रजतमविद्याधिष्ठाने इदमवच्छिन्नचैतन्येवर्तते अस्मन्मतेसर्वस्यापिकार्यस्य स्वोपादानाविद्याधिष्ठानाश्रितत्वनियमात् । ननुचैतन्यानिष्ठस्यरजतस्यकथमिदंरजतमिति पुरोवर्तितादात्म्यम् ॥

परिणाम नाम स्वउपादन के समान सत्तावाले कार्य्य का है अर्थात् उपादान कारणकी जो सत्ता हो वही सत्ता कार्य्यकी भी होतो वह कार्य्य स्वउपादान का परिणाम कहाता है जैसे दुग्धका दधि, यहां दोनोंकी व्यावहारिक सत्ता है और विवर्त नाम स्वउपादानसे विषमसत्तावाले कार्य्य का है जैसे रज्जु सर्प, यहां रज्जुमें प्रतीत हुए सर्पकी प्रातिभासिक सत्ता है और रज्जुकी या रज्जु अवच्छिन्न चेतनकी लौकिक पारमार्थिक सत्ता है प्रकृतमें प्रातिभासिक रजत शुक्त्य

वच्छिन्न अविद्याकी अपेक्षा से तो परिणाम है और शुक्त्यवच्छिन्न चेतन की अपेक्षा से विवर्त है ऐसा कहा जाता है अविद्याका परिणामरूप वह रजत अविद्याके अधिष्ठान 'इदं' अवच्छिन्नचैतन्य में रहता है क्योंकि इस वेदान्तसिद्धान्त में यावत् कार्य्यकी अपने उपादान अविद्याके अधिष्ठानचेतनही में आश्रयता मानी है (शंका) अध्यस्त रजत का अधिष्ठान यदि चेतन है तो चेतननिष्ठ रजत का 'इदं रजतम्' इत्याकारक पुरोवर्ति तादात्म्य अध्यास कैसे होता है? ॥

उच्यते। यथान्यायमते आत्मनिष्ठस्यसुखादेःशरीरनिष्ठत्वेनोपलंभः शरीरस्य[illegible]ाद्यधिकरणतावच्छेदकत्वात् तथाचैतन्यमात्रस्यरजतंप्रत्यनधिष्ठानतया इदमवच्छिन्नचैतन्यस्यतदधिष्ठानत्वेनेदमोवच्छेदकतया रजतस्यपुरोवर्तिसंसर्गप्रत्यय उपपद्यते तस्यचविषयचैतन्यस्यतदंतःकरणोपहितचैतन्याभिन्नतया विषयचैतन्याध्यस्तमपिरजतंसाक्षिण्यध्यस्तं केवलसाक्षिवेद्यं सुखादिवदनन्यवेद्यमितिचोच्यते ननुसाक्षिण्यध्यस्तत्त्वेऽहंरजतमितिप्रत्ययःस्यात् अहंसुखीतिवदितिचेत् ॥

(समाधान) उच्यते । जैसे न्यायमतमें आत्मनिष्ठ सुखादिकोंका शरीरको सुखादिकोंकी अधिकरणता का अच्छेदक होनेसे शरीरनिष्ठत्वेन रूपेण उपलाभ होताहै वैसेही चैतन्यमात्रको उक्त रजत का अधिष्ठान न होनेसे भी (इदम्) अवच्छिन्न चैतन्य को उसका अधिष्ठान होनेसे और (इदम्) को उस चैतन्य का अवच्छेदक होनेसे अध्यस्त रजतका अग्रदेशवर्ति संसर्ग (प्रत्यय) ज्ञान बन सकता है. उस (इदम्) अवच्छिन्नरूप विषयचैतन्यको उक्त अन्तःकरण उपहित साक्षिचैतन्यके साथ अभिन्न होनेसे पुरोवर्ति विषयचैतन्य में अध्यस्त भी रजतादि वास्तवसे साक्षीही में अध्यस्त हैं और सुखादिकोंकी तरह अनन्य वेद्य अर्थात् साक्षीके सिवाय इतर के अविषय होनेसे उसको केवल साक्षी वेद्य भी कहसकते हैं (शंका) रजतादि यदि साक्षी में अध्यस्त हैं तो जैसे साक्षी में अध्यस्त सुखादिकोंकी 'अहं सुखी' इत्यादि प्रतीति होती है वैसेही 'अहं रजतं' इत्याकारिका प्रतीतिभी होनी चाहिये ॥

उच्यते । नहिसुखादीनामन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यनिष्ठाविद्याकार्यत्वप्रयुक्तं अहंसुखीतिज्ञानं सुखादीनांघटादिवच्छुद्धचै

तन्यएवाध्यासात् किन्तुयस्ययदाकारानुभवाहितसंस्कारसहकृताविद्याकार्य्यत्वंतस्यतदाकारानुभवविषयत्वमित्येवानुगतनियामकम् तथाचइदमाकारानुभवाहितसंस्कारसहकृताविद्याकार्य्यत्वात् घटादेरिदमाकारानुभवविषयत्वमहमाकारानुभवाहितसंस्कारसहिताविद्याकार्य्यत्वादन्तःकरणादेरहमाकारानुभवविषयत्वं शरीरेन्द्रियादेरुभयविधानुभवसंस्कारसहिताविद्याकार्यत्वादुभयविधानुभवविषयत्वम् तथाचोभयविधोनुभव इदंशरीरमहंदेहोअहंमनुष्यः अहंब्राह्मणः इदंचक्षुरहंकाण इदंश्रोत्रमहंबधिर इति ॥

(समाधान) उच्यते हमारे वेदान्तसिद्धान्तमें घटादिकोंकी तरह सुखादि भी शुद्धचैतन्यहीमें अध्यस्त हैं इसलिये सुखादिकोंका अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यनिष्ठ अविद्याकार्य्यत्वप्रयुक्त 'अहं सुखी' इत्यादि ज्ञान मानना उचित नहीं है । किन्तु जिस पदार्थ में जिस तरहके अनुभवसे (आहित) सम्पादित संस्कारोंकी सहायताप्रयुक्त अविद्याकी कार्य्यता है उस पदार्थको सदाही उसी तरहके अनुभवकी विषयता है । इसीको अनुगत नियामकभी कह सकते हैं, (तथाच) इस रीतिसे ' इदम् ' इत्याकारक अनुभवसे सम्पादित संस्कारोंकी सहकारताप्रयुक्त अविद्याका कार्य्य होनेसे घटादिकोंमें ' इदम् ' इत्यादि प्रतीति विषयत्व है तथा 'अहम्' इत्याकारक अनुभवजनित संस्कारोंकी सहकारता प्रयुक्त अविद्याका कार्य्य होनेसे अन्तःकरणादिकोंको 'अहम्' इत्यादि अनुभव विषयत्व है । एवं शरीरइन्द्रिय आदिकोंको उभयविध अनुभवजनित संस्कारोंकी सहकारताप्रयुक्त अविद्याके कार्य्य होनेसे उनमे उभयविध अनुभवकी विषयता प्रतीत होती है । वह उभयविध अनुभव यह है कि जैसे (इदं शरीरम्) (अहंदेही) (अहंमनुष्यः) (अहं ब्राह्मणः) इत्यादि शरीरमें उभयविध प्रत्यय हैं । एवं (इदं चक्षुः) (अहं काणः) (इदं श्रोत्रम्) (अहं बधिरः) इत्यादि इन्द्रियोंमें उभयविध प्रत्यय हैं ॥

प्रकृतेच प्रातिभासिकरजतस्यप्रमातृचैतन्याभिन्नेदमंशावच्छिन्नचैतन्यनिष्ठाविद्याकार्यत्वेपि इदंरजतमितिसत्यस्थलीयेदमंशाकारानुभवाहितसंस्कारजन्यत्वादिदमाकारानुभवविषयतानत्वहंरजतमित्यहमाकारानुभवविषयतेत्यनुसंधेयम् ।

नन्वेवमपिमिथ्यारजतस्यसाक्षात्साक्षिसंबंधितयाभानसंभवे रजतगोचरज्ञानाभासरूपाया अविद्यावृत्तेरभ्युपगमःकिमर्थ इतिचेत् स्वगोचरवृत्त्युपहितचैतन्यभिन्नसत्ताकत्वाभावस्य विषयापरोक्षरूपतयारजतस्यापरोक्षत्वसिद्धये तदभ्युपगमात्

प्रकृत विचारमें प्रातिभासिक रजतको प्रमातृचैतन्यसे अभिन्न जो 'इदम्' अंशावच्छिन्न चैतन्य तादृश चैतन्यनिष्ठ अविद्याका कार्य्य होनेसेभी 'इदं रजतं' इत्यादि सत्यस्थल में होनेवाला जो रजताकार अनुभव, तादृशअनुभव-जनित संस्कारोंकी सहकारतासे उत्पन्न होनेवाला होनेसे सर्वदा 'इदम्' इत्यादि प्रत्ययविषयताही रहती है किन्तु 'अहं रजतं' इत्यादि 'अहम्' इत्याकारक प्रत्ययविषयता कदापि नहीं होती यह वार्ता वारंवार मनन करनेके योग्य है। (शंका) एवं उक्त प्रकारसे यदि प्रातिभासिक रजत साक्षात् साक्षी सम्बन्धी है तो उसका साक्षीहीसे भान भी बन सकता है, फिर रजतविषयिणी ज्ञानाभासरूपा अर्थात् मिथ्याज्ञानस्वरूपा अविद्या की वृत्ति के मानने का कौन काम है? (समाधान) विषयको अवगाहन करनेवाली जो वृत्ति तादृश वृत्तिउपहित चैतन्य से भिन्नसत्ताकत्वका अभावही विषयगत अपरोक्षता है अर्थात् विषय की सत्ता वृत्तिउपहित चैतन्यसे पृथक् न होनी यही विषयगत पूर्वोक्त प्रत्यक्षत्व है एवं रजतके अपरोक्ष सिद्ध करनेके लिये ऐसे स्थलमें वृत्तिका स्वीकार है॥

नन्विदंवृत्तेरजताकारवृत्तेश्चप्रत्येकमेकैकविषयत्वेगुरुमतवत् विशिष्टज्ञानानभ्युपगमे कुतोभ्रमज्ञानसिद्धिरितिचेत् वृत्तिद्वय प्रतिबिंबितचैतन्यस्यैकस्य सत्यमिथ्यावस्तुतादात्म्यावगाहित्वेनभ्रमत्वस्यस्वीकारात् अतएवसाक्षिज्ञानस्यसत्यासत्यविषयतयाप्रामाण्यानियमात् अप्रामाण्योक्तिःसांप्रदायिकानाम्॥

(शंका) 'इदम्' वृत्ति तथा रजताकार वृत्तिका प्रत्येकका एक एक अर्थात् वही वही विषय माननेसे तथा (गुरुः) प्राभाकर सिद्धान्त

(१) प्रभाकरके मतमें 'इदं रजतम्' इत्यादि स्थलमें दो ज्ञान स्वीकृत हैं उनमें 'इदम्' यह पुरोवर्तिविषयक अनुभवरूप ज्ञान है और 'रजतम्' यह असन्निकृष्ट रजत विषयक स्मरणात्मक ज्ञान है एवं वस्तुद्वयके तादात्म्यके अवगाहन करनेवाला कोई ज्ञान भी नहीं ह इस रीतिसे सभी ज्ञान यथार्थ ही हैं इसलिये भ्रमज्ञान असिद्ध है।

की तरह ऐसे स्थलमें विशिष्ट ज्ञानके न स्वीकार करनेसे आप के मत में भ्रमज्ञान की सिद्धि कैसे होगी ? (समाधान) उभयवृत्तिप्रतिबिम्बित एक चैतन्यको सत्य मिथ्यावस्तुके तादात्म्यका अवगाहन करनेवाला होनेसे ऐसे स्थलमें भ्रमका स्वीकार है एकही साक्षी ज्ञान सत्य असत्य उभयविध वस्तुविषयक होता है (अत एव) इसी लिये 'साक्षी ज्ञानको सत्यासत्य विषयक होनेसे प्रामाण्यका नियम नहीं है' इत्याकारिका सांप्रदायिक लोगोंकी साक्षी ज्ञानको अप्रामाण्य कहनेवाली उक्ति भी संगत होती है ॥

ननुसिद्धांतेदेशांतरीयरजतमप्यविद्याकार्य्यमध्यस्तंचेति कथंशुक्तिरूप्यस्यततोवैलक्षण्यमितिचेत् न त्वन्मतेसत्यत्वा विशेषेपि केषांचित्क्षणिकत्वंकेषांचित्स्थायित्वमित्यत्र यदेवनियामकंतदेवस्वभावविशेषादिकंममापि यद्वा घटाद्य ध्यासेअविद्यैवदोषत्वेनापिहेतुः शुक्तिरूप्याद्यध्यासेतुकाचा दयोदोषाअपि तथाचागंतुकदोषजन्यत्वं प्रतिभासकत्वेप्र योजकं अतएवस्वप्नोपलब्धरथादीनामागंतुकनिद्रादिदोषज न्यत्वात्प्रातिभासिकत्वम् ॥

(शंका) आपके वेदान्तसिद्धान्तमें तो देशान्तरमें होनेवाला रजत भी अविद्याका काय तथा स्वावच्छिन्न चैतन्यमें (अध्यस्त) मिथ्या ही है, एवं शुक्तिरजतसे उसकी विलक्षणताका प्रयोजक आपने क्या माना है ? (समाधान) जैसे आपके न्यायसिद्धान्तमें सभी पदार्थोंको समानरूपसे सत्य होनेसे भी कई उनमें शब्दज्ञान इच्छादि क्षणिक हैं और कई घटपटादि चिरस्थायी हैं इत्यादि व्यवस्थाके लिये जो पदार्थोंका स्वभाव विशेष आपने नियामक माना है वही पदार्थोंका स्वभावविशेष हमारे सिद्धान्तका निवाह-कभी हो सकता है अथवा यह भी कह सकते हैं कि घटादि चिरस्थायी पदार्थों-के अध्यासमें तो केवल एका अविद्याही दोषरूपसे भी कारण होती है और शुक्ति रूपादिके अध्यासमें तो काचादि दोष भी स्वोपादानभूता अविद्यासे पृथक् कारण हैं (तथाच) एवं आगंतुक अर्थात् कादाचित्क होनेवाले दोषसे जन्य होना पदार्थके प्रातिभासिकपनेमें प्रयोजक है अतएव आगंतुक दोषजन्यत्व को पदार्थके प्रातिभासिकत्वका प्रयोजक होनेहीसे स्वप्नमें प्रतीत होने वाले रथ अश्वादि पदार्थोंको आगंतुक निद्रादि दोष जन्य होनेसे उनमें प्राति-भासिकत्व व्यवहार होता है ॥

ननुस्वप्नस्थलेपूर्वानुभूतरथादेःस्मरणमात्रेणैवव्यवहारोपपत्तौ नरथादिसृष्टिकल्पनम् । गौरवादितिचेत्, न, रथादेःस्मरण मात्राभ्युपगमे रथंपश्यामि स्वप्नेरथमद्राक्षमित्याद्यनुभववि रोधापत्तेः "अथरथान् रथयोगान्पथः सृजते" ॥ इतिरथादि सृष्टिप्रतिपादकश्रुतिविरोधापत्तेश्च । तस्माच्छुक्तिरूप्यवत् स्वप्नोपलब्धरथादयोपि प्रातिभासिकाः यावत्प्रतिभासमुप तिष्ठंते ॥

(शंका)स्वप्न अवस्थासे प्रथम जाग्रत्कालमें अनुभव किये रथादिके स्मरण मात्रहीसे 'इमे रथाः' 'इमे अश्वाः' इत्यादि व्यवहार होसकता है केवल इतनाही भेद है कि उस कालमें निद्रादि दोषवशसे 'स्मरामि' इत्याकारक प्रत्यय नहीं होता किन्तु तत्ताप्रमोषपूर्वक 'पश्यामि' इत्यादि प्रतीति होती है इसलिये कल्पना गौरव होनेसे स्वप्नकालमें रथादि सृष्टिकी कल्पना करनी उचित नहीं है (समाधान) यदि स्वप्न रथादि पदार्थोंका स्मरणमात्रही मानेंगे तो (रथं पश्यामि) 'मैं रथको देखताहूं' इत्यादि स्वप्नकालिक अनुभव तथा (स्वप्ने रथमद्राक्षम्) 'मैंने स्वप्नमें रथादि देखे थे' इत्यादि जाग्रत्कालिक अनुभवके साथ विरोध होगा. तथा स्वप्नसृष्टिके कहनेवाली 'रथोंको तथा रथोंके उपकरणी भूत अश्व आदिकोंको तथा उनके चलने योग्य मार्गोंको यह जीव स्वप्नमें नूतन रचता है' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनसे भी विरोध होगा इसलिये आपका उक्त गौरव अकिंचित्कर है इसीलिये शुक्तिरजतकी तरह स्वप्नकालमें उपलब्ध रथादि पदार्थभी प्रातिभासिक होनेसे स्वप्नप्रतीति समान काल स्थिर रहते हैं ॥

ननुस्वप्नरथाद्याधिष्ठानतयोपलभ्यमानदेशविशेषस्यापित दासन्निकृष्टतयानिर्वचनीयप्रातिभासिकदेशोभ्युपगंतव्यः तथा चरथाद्यध्यासः कुत्रेतिचेन्न चैतन्यस्य स्वयंप्रकाशस्यरथाद्य धिष्ठानत्वात्प्रतीयमानरथाद्यस्तीत्येवप्रतीयते इति सद्रूपेण प्रकाशमानंचैतन्यमेवाधिष्ठानंदेशविशेषोपि चिदध्यस्तःप्राति भासिकः रथादाविन्द्रियग्राह्यत्वमपि प्रातिभासिकं तदास वेंन्द्रियाणामुपरमात् 'अहं गज'इत्यादिप्रतीत्यापादनन्तु पूर्वव न्निरसनीयम् ॥

(शंका) स्वप्न रथादिके अधिष्ठानरूपसे प्रतीयमान देश विशेषको भी उस कालमें सन्निकृष्ट होनेसे रथादिकोंकी तरह उसको भी प्रातिभासिकही मानना होगा ? यदि ऐसे ही मानोगे तो 'स्वयं कल्पित पदार्थ कल्पितान्तरका अधिष्ठान नहीं होसकता' यह भी आपका सिद्धान्त है (तथाच) तो फिर रथादि पदार्थोंका अध्यास कहां होगा ? (समाधान) स्वयं प्रकाशरूप चैतन्यही रथादि अध्यस्त पदार्थोंका अधिष्ठान है क्योंकि प्रतीयमान रथादि पदार्थोंकी 'अस्तित्वेन' प्रतीति होती है. इस प्रतीतिसे स्वरूपसे प्रकाशमान चैतन्यही अधिष्ठान प्रतीत होता है देश विशेष भी उसी चेतनमें अध्यस्त होनेसे प्रातिभासिक है एवं स्वप्नमें रथादिकोंकी तरह इन्द्रिय ग्राह्यताभी प्रातिभासिकही है क्योंकि व्यावहारिक इन्द्रिय सभी उस कालमें वस्तुग्रहणसे उपराम होते हैं ऐसेही 'अहं गजः' इत्यादि प्रतीतिकी आपत्तिका भी पूर्ववत् निरास करलेना अर्थात् यदि कोई शंका करे कि स्वरूपेण प्रतीयमान चैतन्यही अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य है एवं उसमें अध्यस्त गजादिकोंकी 'अहं गजः' इत्यादि प्रतीति भी होनी चाहिये? तो इस आपत्तिका पूर्वोक्त 'तत्तदनुभवाहित संस्कार' इत्यादि युक्तिसे उसको उत्तर देना ॥

स्वप्नगजादयः साक्षान्मायापरिणामा इति केचित्, अंतःकरण द्वारातत्परिणामा इत्यन्ये। ननु गजादेःशुद्धचैतन्याध्यस्तत्वे इदानीमधिष्ठानसाक्षात्काराभावेन जागरणेपि स्वप्नोपलब्धग जादयोऽनुवर्तेरन्।उच्यते।कार्यविनाशोहि द्विविधः, कश्चिदुपा दानेन सहकश्चिद्विद्यमानएवोपादाने आद्योबाधः द्वितीयस्तु नि वृत्तिः आद्यस्यकारणमधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारः तेन विनोपा दानभूताया अविद्याया अनिवृतेः द्वितीयेविरोधिवृत्त्युत्पत्ति दोषनिवृत्तिश्च तदिहब्रह्मसाक्षात्काराभावात् स्वप्नप्रपंचोमाबा धिष्ट मुसलप्रहारेणघटादेरिवविरोधिप्रत्ययांतरोदयेन स्वप्नज नकीभूतनिद्रादिदोषनाशेन वा गजादिनिवृत्तौकोविरोधः ॥

यहां स्वप्न पदार्थ विचारमेंभी कईएक विद्वानोंने स्वप्न गजादिकोंको साक्षात् माया अर्थात् मूला अविद्याके परिणाम माना है। एवं कइएक दूसरे विद्वानोंने अन्तःकरणद्वारा मायाके परिणाम माना है (शंका) स्वप्नगजादि पदार्थोंका आपने शुद्ध चैतन्यमें अध्यास माना है और वतमान दशामें चैतन्यरूप अधि-

ष्ठानके साक्षात्कार के न होनेसे जाग्रत्में भी स्वप्नदृष्ट गजअश्वादिकोंकी अनुवृत्ति पूर्वक प्रतीति होनी चाहिये। (समाधान) उच्यते। कार्यका विनाश दो प्रकारका होता है। किसीका स्वउपादानके साथ विनाश होता है। और किसीका स्व उपादान के विद्यमान होत्सन्ते भी होता है । इनमें प्रथमका नाम बाध है और द्वितीयका नाम निवृत्ति है । प्रथम बाधरूप विनाशका कारण तो कार्यके अधिष्ठानके तत्त्वका साक्षात्काररूप है। क्योंकि कार्याधिष्ठानतत्व साक्षात्कारसे विना कार्योपादानभूता अविद्याकी निवृत्तिका होना असम्भव है । और द्वितीय निवृत्तिरूप विनाशका कारण विरोधिवृत्तिकी उत्पत्ति है, अथवा दोषकी निवृत्ति है प्रकृतमें ब्रह्म साक्षात्कारसे विना स्वप्नप्रपञ्चका बाध मत होवो परन्तु मुशलप्रहारसे घटादि विनाशकी तरह विरोधि प्रत्यय आन्तरके उत्पन्न होनेसे अथवा स्वप्नजनकी भूत निद्रादि दोषके निवृत्त होनेसे गजादिकोंकी निवृत्तिमें क्या विरोध है अर्थात् निवृत्ति बन सकती है ॥

एवंचशुक्तिरूप्यस्य शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यनिष्ठतूलाविद्याकार्यत्वपक्षेशुक्तिरिति ज्ञानेनतदज्ञानेन सहरजतस्यबाधःमूलाविद्याकार्य्यत्वपक्षेतु मूलाविद्यायाब्रह्मतत्त्वसाक्षात्कारमात्रानिवर्त्यतयाशुक्तित्वज्ञानेनानिवर्त्यतया रजतस्य तत्रशुक्तिज्ञानान्निवृत्तिमात्रं मुसलप्रहारेण घटस्येव । ननु शुक्तौ रजतस्य प्रतिभाससमयेप्रातिभासिकसत्त्वाभ्युपगमेनेदंरजतामिति त्रैकालिकानिषेधज्ञानं न स्यात्' किंत्विदानींइदंनरजतमिति इदानींघटः श्यामोनेतिवदितिचेन्न नहि तत्र रजतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावोनिषेधधीविषयः किंतु लौकिकपारमार्थिकत्वावच्छिन्नप्रातिभासिकरजतप्रतियोगिताकः व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाभ्युपगमात् ॥

एवं पूर्वोक्त प्रकारसे यदि शुक्तिरूप्यादिकोंको शुक्तिअवच्छिन्न चैतन्यनिष्ठ तूलाअविद्याका कार्य मानें तो 'शुक्तिः' इत्याकारक ज्ञानसे शुक्ति अज्ञानके साथही रजतका बाधभी होताहै। और यदि मूलाअविद्याका कार्य मानें तो मूला अविद्याका विनाश तो ब्रह्मतत्वके साक्षात्कारसे होनेवाला है, इसलिये शुक्तिके ज्ञानमात्रसे उसकी निवृत्तिके न होनेसे केवल उसके कार्यस्वरूप रजतकी निवृत्ति मात्रका शुक्तिके ज्ञानसे सम्भव हो सकता है जैसे मुशलादिके प्रहारसे घटादि

पदार्थोंका यद्यपि स्वउपादान निवृत्तिपूर्वक निवृत्तिरूप बाध नहीं होता तथापि मुशलादि प्रहारसे घटादिकोंकी स्वउपादानमें निवृत्ति हो जाती है तद्वत् शुक्तिरूप्यभी स्वउपादानभूत मूला अविद्यामें निवृत्त हो जाताहै (शंका) शुक्तिमें रजतकी प्रतीतिकालमें आपने उसकी प्रातिभासिकसत्ता मानीहै यदि ऐसा है तो 'नेदं रजतम्' इत्याकारक त्रैकालिक रजतनिषेधज्ञान नहीं होना चाहिये। किन्तु 'इदानीं घटः श्यामो न' इत्यादि ज्ञानकी तरह 'इदानीं इदं न रजतम्' इत्यादि ज्ञान होना चाहिये। अर्थात् जैसे घटमें केवल वर्तमान कालावच्छेदेन श्यामत्वाभाव प्रतीति विषय होताहै। वैसेही शुक्ति रजतभी यादि श्यामत्वादिकी तरह कदाचित्काचित् सत्ता रखता है तो श्यामत्वाभावकी तरह वर्तमान कालावच्छेदेन 'इदं रजतं न' इत्यादि प्रतीतिका विषयही होना चाहिये (समाधान) ऐसे स्थलमें 'नेदं रजतम्' इत्याकारक त्रैकालिक निषेध ज्ञानमें रजतत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव निषेध बुद्धिका विषय नहीं होता, किन्तु लौकिक पारमार्थिकत्वावच्छिन्न अर्थात् व्यावहारिकत्व धर्म्मावच्छिन्न जो प्रातिभासिक रजत तादृश रजत प्रतियोगिताक अभाव उक्त निषेध बुद्धिका विषय है। क्योंकि हमारे सिद्धान्तमें ऐसे ऐसे स्थलोंमें व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभावका स्वीकार है। अर्थात् विरुद्ध व्यावहारिक रजतादि अधिकरण हो जिसका ऐसा लौकिक पारमार्थिकत्वरूप धर्म है तादृश लौकिक पारमार्थिकत्वावच्छिन्ना जो प्रातिभासिक रजतनिष्ठ प्रतियोगिता तादृश प्रतियोगिताक अभाव अपेक्षित है। भाव यह कि जैसे पट विद्यमान स्थलमें भी 'घटत्वेन पटोनास्ति' इत्याद्याकारक त्रैकालिक संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताक पटका अभाव कह सकते हैं वैसेही प्रातिभासिक रजतके होत्सन्ते भी 'लौकिक पारमार्थिकत्वेन शुक्तौ रजतं नास्ति' इत्याकारक त्रैकालिक निषेध कह सकते हैं ॥

ननु प्रातिभासिके रजते पारमार्थिकत्त्वमवगतं नवाऽनवगमे प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नरजततत्त्वज्ञानाभावादभावप्रत्यक्षानुपपत्तिः अवगमेऽपरोक्षावभासस्यतत्कालीनविषयसत्तानियतत्वात् रजतेपारमार्थिकत्वमप्यनिर्वचनीयं रजतवदेवोत्पन्नमिति तदवच्छिन्नरजतसत्त्वेतदवच्छिन्नाभावस्तस्मिन्कथं वर्तते इतिचेन्न पारमार्थिकत्वस्याधिष्ठाननिष्ठस्य रजतेप्रतिभाससंभवेनरजतनिष्ठपारमार्थिकत्वोत्पत्त्यनभ्युपग

मात् यत्रारोप्यमसन्निकृष्टंतत्रैवप्रातिभासिकवस्तूत्पत्तेरंगीकारात् ॥

(शंका) प्रातिभासिक रजतमें आपको 'लौकिक पारमार्थिकत्व' रूप धर्मका ज्ञान हुआ है या नहीं.यदि नहीं कहो तो प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न जो रजत तादृश रजतके यथार्थ ज्ञानके न होनेसे उसके अभावके प्रत्यक्षकी सिद्धि भी नहीं कहसकते । और यदि ज्ञान हुआ है कहो तो अपरोक्ष प्रतीतिको उस कालमे होनेवाले विषयकी सत्ताके साथ नियतवृत्ति होनेसे, रजतमें पारमार्थिकत्वरूप धर्मभी रजतकी तरह अनिर्वचनीय ही उत्पन्न हुआ मानना होगा । एवं तादृश अनिर्वचनीय धर्मावच्छिन्न रजतके सत्त्वकालमें, तादृश अनिर्वचनीय धर्म्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव उस स्थलमें कैसे रहेगा? (समाधान) हम रजतनिष्ठ लौकिक पारमार्थिकत्वरूप धर्मकी उत्पत्ति नहीं मानते किन्तु प्रातिभासिक रजतका अधिष्ठान जो शुक्ति, तादृश शुक्तिनिष्ठ लौकिक पारमार्थिकत्वरूप धर्मका रजतमें भान मानते हैं । जहां आरोप्य पदार्थ सन्निकृष्ट न होय वहांही प्रातिभासिक वस्तुकी उत्पत्ति माननी उचित है । जैसे शुक्ति रजत स्थलमें आपणस्थ रजत, अतिं असन्निकृष्ट होनेसे शुक्तिदेशमें प्रतीतिके विषय होने योग्य नहीं है इस लिये प्रातिभासिक रजतकी उत्पत्ति मानी है । परन्तु प्रकृतमें लौकिक पारमार्थिकत्वरूप धर्म तो कोई असन्निकृष्ट नहीं है इस लिये रजताधिष्ठान शुक्तिगतका रजतमें भान बन सकता है ॥

अतएवेन्द्रियसन्निकृष्टतयाजपाकुसुमगतलौहित्यस्य स्फटिकेभानसंभवात् नस्फटिकेनिर्वचनीयलौहित्योत्पत्तिः नन्वेवं यत्र जपाकुसुमंद्रव्यांतरव्यवधानादसन्निकृष्टं तत्रलौहित्यप्रतीत्याप्रातिभासिकलौहित्यं स्वीक्रियतामितिचेत्, न इष्टत्वात् । एवं प्रत्यक्षभ्रमांतरेष्वपिप्रत्यक्षसामान्यलक्षणानुगमो यथार्थ प्रत्यक्षलक्षणासद्भावश्च दर्शनीयः ॥

आरोप्यवस्तुके असन्निकृष्ट होनेहीसे प्रातिभासिक वस्तुकी उत्पत्ति होती है (अतएव) इसीलिये नेत्रादि इन्द्रियके सन्निकृष्ट होनेसे जपा पुष्पगत लौहित्यका (स्फटिक) श्वेतकाचादिमें भान बन सकता है । किन्तु स्फटिकमें अनिर्वचनीय लौहित्यकी उत्पत्ति मानने की आवश्यकता नहीं है । (शंका) सन्निकृष्ट भी जपापुष्प जहां हस्तादि द्रव्यान्तरके व्यवधानसे असन्निकृष्ट प्रतीत हुआ है, वहां

स्फटिकमें लौहित्यकी प्रतीति होनेसे प्रातिभासिक लौहित्यकी उत्पत्ति अंगीकार करनी चाहिये (समाधान) ऐसे स्थलमें प्रातिभासिक लौहित्यकी उत्पत्ति हमको भी इष्ट है। ऐसेही और भी 'पीतः शंखः' 'तिक्तोगुडः' इत्यादि प्रत्यक्ष भ्रमस्थलोंमें 'चित्त्व' रूप प्रत्यक्ष सामान्य लक्षणका अनुगम तथा प्रमाण चैतन्यका अबाधित योग्य वर्तमान विषयावच्छिन्न चैतन्यके साथ अभिन्नत्वरूप यथार्थ प्रत्यक्षके लक्षणका असद्भावभी जानलेना चाहिये ॥

उक्तंप्रत्यक्षंप्रकारांतरेणद्विविधं इन्द्रियजन्यं तदजन्यंचेति ।तत्रेन्द्रियाजन्यं सुखादिप्रत्यक्षं मनस इन्द्रियत्वनिराकरणात् । इन्द्रियाणि पंच घ्राणरसनाचक्षुःश्रोत्रत्वगात्मकानि । सर्वाणि चेन्द्रियाणि स्वस्वविषयसंयुक्तान्येवप्रत्यक्षज्ञानंजनयांति । तत्र घ्राणरसनत्वगिन्द्रियाणि स्वस्थानस्थितान्येव गंधरसस्पर्शोपलंभान् जनयंति।चक्षुःश्रोत्रेतु स्वत एव विषयदेशंगत्वास्व स्वविषयं गृह्णीतः। श्रोत्रस्यापि चक्षुरादिवत् परिच्छिन्नतया भेर्यादिदेशगमनसंभवात् अतएवानुभवोभेरीशब्दोमयाश्रुत इति वीचीतरंगादिन्यायेन कर्णशष्कलीप्रदेशेऽनंतशब्दोत्पत्तिकल्पनागौरवम् भेरीशब्दोमयाश्रुत इति प्रत्यक्षस्य भ्रमत्वकल्पनागौरवं च स्यात्। तदेवं व्याख्यातं प्रत्यक्षम् ॥

॥ इतिप्रत्यक्षंप्रमाणम् ॥

पूर्वोक्त प्रत्यक्ष प्रकारान्तरसे फिर दो प्रकारका है प्रथम नेत्रादि इंद्रिय जन्य है और दूसरा इन्द्रियोंसे विनाही होता है उनमें सुखादि प्रत्यक्ष इन्द्रियोंसे विना होता है अर्थात् मनसे होता है और मनमें ' इंद्रियत्व ' धर्मका पूर्व निराकरण कर चुके हैं. नासिका, जिह्वा, नेत्र, कर्ण, त्वक्, भेदसे इंद्रिय पञ्च हैं ये सभी इंद्रिय अपने २ विषयोंके साथ संयुक्त हुएही प्रत्यक्षात्मक ज्ञान के जनक होते हैं उनमें घ्राण, रसना, तथा त्वक्, ये तीन इंद्रिय अपने स्थानमें स्थितही अर्थात् विषयदेशमें न जाकरही यथाक्रम, गन्ध, रस, स्पर्श, इन तीन विषयोंके उपलम्भ के जनक होते हैं और नेत्र श्रोत्र तो स्वतः आपही विषय देशमें जाकर अपने २ विषयको ग्रहण करते हैं श्रोत्रइंद्रियको भी नेत्रइन्द्रियकी तरह परिच्छिन्न होनेसे भेरी मृदंगादि देशमें उसके गमनका

सम्भवभी हो सकता है इसीलिये (भेरीशब्दो मया श्रुतः) अर्थात् 'भेरीका शब्द मैंने सुना है ' इत्यादि अनुभवभी होता है वीचीतरंगादिन्यायसे अर्थात् जैसे वीचीसे तरंग उससे फिर वीची उससे फिर तरंग ऐसेही किनारेतक पर्यवसान होता है वैसेही भेरी दण्डादि संयोगसे आकाशमें उत्पन्न हुए शब्द रूप असमवायि कारणसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति उससे फिर शब्दान्तरकी, ऐसेही परम्परासे अन्तिम शब्दका श्रोत्रके साथ सम्बन्ध इत्यादि कल्पनामें गौरव है यहां आदिपदसे कदम्बमुकुलन्यायकी उपस्थिति भी जानलेनी चाहिये और ' भेरी का शब्द अर्थात् भेरी देश उत्पन्न शब्द मैंने सुना है ' इत्यादि प्रत्यक्षात्मकज्ञान को भ्रमरूप कल्पना करना भी गौरव है. एवं पूर्वोक्त प्रकारसे अत्यक्ष प्रमाणका व्याख्यान समाप्त हुआ.

इति श्रीनिर्मल पण्डित स्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्यभाषाविभूषित वेदान्तपरिभाषाप्रकाशेप्रत्यक्षपरिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

अथानुमानपरिच्छेदः २.

पञ्चरूपोपपन्नैः सद्धेतुभिर्यत्र मीयते ।
कर्तृत्वं सर्वकार्य्याणां सोऽव्याच्छ्रीनानको गुरुः ॥ १ ॥

अथानुमानं निरूप्यते ।

प्रत्यक्ष प्रमाण निरूपणके अनन्तर बहुवादि संमत होनेसे 'अथ' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार अनुमान निरूपणकी प्रतिज्ञा करतेहैं ॥

अनुमिति करणमनुमानम्।अनुमितिश्चव्याप्तिज्ञानत्वेन व्याप्ति ज्ञानजन्या व्याप्तिज्ञानानुव्यवसायादेस्तत्त्वेन तज्जन्यत्वाभा वान्नानुमितित्वम्, अनुमितिकरणं च व्याप्तिज्ञानं तत्संस्कारो ऽवांतरव्यापारः नतुतृतीयलिंगपरामर्शोऽनुमितौकरणं तस्या नुमितिहेतुत्वासिद्ध्या तत्करणत्वस्य दूरनिरस्तत्वात् ॥

'अनुमान' नाम अनुमिति ज्ञानके करणका है । और व्याप्तिज्ञानत्वेन अर्थात् व्यभिचार ज्ञानके विरोधि ज्ञानत्वेन व्याप्तिज्ञानजन्यका नाम 'अनुमिति' है । ' व्याप्ति ज्ञानवानहं ' इत्यादि अनुव्यवसायात्मक ज्ञान तथा व्याप्तिज्ञानका ध्वंस भी यद्यपि यथाक्रम विषयत्वेन तथा प्रतियोगित्वेन व्याप्तिज्ञानजन्य हैं । एवं उक्त अनुमितिलक्षणकी इनमें अतिप्रसक्ति होनी चाहिये तथापि व्याप्तिज्ञान-

का अनुव्यवसायज्ञान तथा व्याप्तिज्ञानका ध्वंस व्याप्तिज्ञानत्वेन व्याप्तिज्ञानजन्य नहीं है । किन्तु अनुव्यवसायात्मक ज्ञानके प्रति व्याप्तिज्ञानको विषय विधयाकारणता है तथा अपने ध्वंसके प्रति व्याप्तिज्ञानको प्रतियोगित्वेन कारणता है इसलिये उक्त अनुमिति लक्षण कि अतिप्रसक्ति नहीं है । व्याप्तिज्ञान अनुमिति ज्ञानका करण है और व्याप्तिज्ञान के संस्कार (अवान्तर) मध्यपाति व्यापाररूप हैं। किन्तु नैयायिकोंका कल्पना किया हुआ तृतीयलिङ्ग परामर्शात्मक ज्ञान अनुमिति ज्ञानके प्रति करण नहीं है । जब उसमें सामान्यरूपसे अनुमितिज्ञान की हेतुताभी अनुभवसिद्ध नहीं है । तो उसको अनुमितिज्ञान के करण कहना तो बहुतही दूर वार्ता है ॥

नच संस्कारजन्यत्वेनानुमितेः स्मृतित्वापत्तिः स्मृतिप्रागभावजन्यत्त्वस्य संस्कारमात्रजन्यत्त्वस्य वा स्मृतित्त्वप्रयोजकतया संस्कारध्वंससाधारणसंस्कारजन्यत्त्वस्य तदप्रयोजकत्वात्।नच यत्र व्याप्तिस्मरणादनुमितिस्तत्रकथंसंस्कारोहेतुरिति वाच्यम्।व्याप्तिस्मृतिस्थलेऽपि तत्संस्कारस्यैवानुमितिहेतुत्वात्।नहि स्मृतेः संस्कारनाशकत्त्वनियमः स्मृतिधारादर्शनात्। नचानुद्बुद्धसंस्कारादप्यनुमित्यापत्तिः तदुद्बोधस्यापि सहकारित्वात् ॥

(शंका) संस्कारजन्य ज्ञान का नाम 'स्मृति' ज्ञान है । एवं यदि अनुमितिज्ञानभी आपका संस्कारजन्यहीहै तो इसको भी स्मृतिरूप ही होना चाहिये । (समाधान) स्मृतिज्ञान, अपने प्रागभाव से जन्य है । अथवा संस्कारमात्रसें जन्य है ऐसा कह सकते हैं । किन्तु संस्कार ध्वंससधारण संस्कारजन्यत्व स्मृतिज्ञानमें नहीं है। अर्थात् संस्कारों का ध्वंसभी संस्कारजन्य है इसलिये संस्कारजन्यत्व, धर्म केवल स्मृतिहीमें रहता है ऐसा कहना उचित नहीं किन्तु उभय साधारण है इसलिये संस्कारजन्यत्वेन अनुमितिज्ञान को स्मृतिरूप मानना भी युक्तियुक्त नहीं है। (शंका) जहां व्याप्तिस्मरणसे अनुमितिज्ञान हुआहै वहां संस्कारोंको हेतुता कैसे

---

(१) महानसादिमें धूमादिका ज्ञान प्रथम लिङ्ग परामर्श है । तत्पश्चात् पक्ष में धूमादि का ज्ञान द्वितीय परामर्श है । तत्पश्चात् व्याप्तिस्मरण के अनन्तर पक्ष में ' वह्निव्याप्य धूमवानयंपर्वतः ' इत्याकारक परामर्शात्मक ज्ञानका नाम तृतीय लिङ्गपरामर्श है ।

है? (समाधान) व्याप्तिस्मरण स्थलमेंभी व्याप्तिसंस्कारोंही को अनुमिति हेतुता हमको स्वीकार है अनेक स्थलोंमें स्मरणात्मक ज्ञानकी धारा देखनेमें आती है इसलिये स्मृतिज्ञान संस्कारोंका नाशक होताहै, इस वार्ताका नियम नहीं है (शंका) यदि संस्कार अनुमिति ज्ञानके जनक हैं तो (अनुद्बुद्ध) अनुद्भुत संस्कारोंसे भी अनुमिति ज्ञान होना चाहिये? (समाधान) पक्षधर्म्मता ज्ञानजन्य संस्कारोंके उद्बोधको भी हम अनुमिति ज्ञान जननमे सहकारी मानते हैं ॥

एवंचायंधूमवानिति पक्षधर्मताज्ञानेन धूमोवह्निव्याप्य इत्यनुभवाहितसंस्कारोद्बोधे चसतिवह्निमानित्यनुमितिर्भवति नतु मध्येव्याप्तिस्मरणं तज्जन्यवह्निव्याप्यधूमवानित्यादिविशेषणविशिष्टंज्ञानं वा हेतुत्वेन कल्पनीयंगौरवात् मानाभावाच्च। तच्चव्याप्तिज्ञानंवह्निविषयकज्ञानांश एव करणं,नतुपर्वतविषयकज्ञानांश इति पर्वतोवह्निमानितिज्ञानस्य वह्न्यंशएवानुमितित्वंनपर्वताद्यंशेतदंशेप्रत्यक्षत्वस्योपपादितत्वात् ॥

एवं उक्तरीतिसे व्याप्तिज्ञानमें करणता, व्याप्तिज्ञानसंस्कारोंमें मध्यपाति व्यापारता, तथा पक्षधर्म्मता ज्ञानजन्य संस्कारोंके उद्बोधको सहकारिता सिद्ध हुई तो 'अयं धूमवान्' इत्यादि पक्षधर्म्मता ज्ञानसे 'धूमो वन्हिव्याप्यः' इत्यादि अनुभव जनित संस्कारोंके उद्बोधके अनन्तर 'वन्हिमान्' इत्याकारक अनुमिति ज्ञान होताहै। यहां एतादृश कार्य्यकारणभावके मध्यमें, व्याप्ति ज्ञान का स्मरण अथवा व्याप्तिज्ञानजन्य 'व्यन्हिव्याप्य धूमवान्' इत्यादि 'विशेषणविशिष्ट, परामर्शपर नामक ज्ञान, हेतुरूपेण कल्पना करने योग्य नहीं क्यों कि व्यर्थ अधिक कल्पनामें गौरव है और उक्त कल्पना करने में कोई प्रबल प्रमाण भी नहीं वह व्याप्तिज्ञानभी वह्निविषयक अनुमित्यात्मक ज्ञान अंशमें ही करण है किन्तु पर्वत विषयक ज्ञान अंशमें नहीं है। 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक ज्ञान, केवल वह्निअंशमें अनुमितिरूप है किन्तु पर्वतादिअंशमें अनुमितिरूप नहीं है पर्वतादि अंशमें उक्त ज्ञान प्रत्यक्षरूप है इसका उपपादन हम पूर्व करचुके हैं ॥

व्याप्तिश्चाशेषसाधनाश्रयाश्रितसाध्यसामानाधिकरण्यरूपा। साचव्यभिचारादर्शने सति सहचारदर्शनेनगृह्यते तच्चसहचारदर्शनंभूयोदर्शनंसकृद्दर्शनंवेतिविशेषोनादरणीयः। सहचार

दर्शनस्यैवप्रयोजकत्वात् तच्चानुमानमन्वयिरूपमेकमेव।नतु केवलान्वयि सर्वस्यापिधर्मस्यास्मन्मतेब्रह्मनिष्ठात्यंताभावप्रतियोगित्वेनात्यंताभावाप्रतियोगिसाध्यकत्वरूपकेवलान्वयित्वस्यासिद्धेः ॥

प्रकृतमें व्याप्ति नाम ' अशेष अर्थात् यावत् जो (साधन) हेतुः तादृश हेतुके आश्रय जो पर्वतादि उनपर्वतादि आश्रयोंमें आश्रित जो वन्ह्यादि साध्य तादृश साध्य के साथ सामानाधिकरण्यरूप धर्म्म का है । यह धर्म सदाही हेतुके शिरपर रहता है । क्योंकि साध्यके साथ एक अधिकरण में वृत्तिता हेतुही में होती है । वह व्याप्ति पदार्थों के सर्वथा परस्पर के व्यभिचारके अदर्शनपूवक सहचार दशन स ग्रहण होती है । और पदार्थद्वयका परस्पर सहचार दर्शन जो है वह चाहो अनेकवार हो अथवा एकवार हो इनमें कोई विशेष कोटि आदर करनेके योग्य नहीं है । किन्तु केवल सहचार दर्शन मात्र व्याप्ति ग्रहणमें प्रयोजक है । वह अनुमान भी हमारे वेदान्त सिद्धान्त में अन्वयिरूप एक ही है । अर्थात् नैयायिकोंकी तरह केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि, अन्वयव्यतिरेकि, भेदसे तीन प्रकार का नहीं है । केवलअन्वयि तो इस लिये नहीं है कि हमारे वेदान्त सिद्धान्त में यावत् धर्म्मों को, ब्रह्मनिष्ठ अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी माना है । अर्थात् ब्रह्म निर्धर्मक है इसलिये उसमें यावत् धर्म्मों का अत्यन्ताभाव है। एवं अत्यन्ताभाव के अप्रति योगी साध्यको अप्रसिद्ध होनेसे तादृश साध्यके साधक हेतुकीभी अप्रसिद्धि हुई हेतुके अप्रसिद्ध होनेसे उसमें होनेवाले केवलान्वयित्वरूप धर्म्मकी भी अप्रसिद्धि हुई ॥

नाप्यनुमानस्यव्यतिरेकिरूपत्वं साध्याभावे साधनाभाव निरूपितव्याप्तिज्ञानस्यसाधनेन साध्यानुमितावनुपयोगात् । कथंतर्हि धूमादावन्वयव्याप्तिमविदुषोपि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानादनुमितिः अर्थापत्तिप्रमाणादितिवक्ष्यामः अतएवानुमानस्य नान्वयव्यतिरेकिरूपत्वं व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमित्यहेतुत्वात् ॥

ऐसे ही अनुमान को केवलव्यतिरेकि रूपता भी अनुभवसिद्ध नहीं है । क्योंकि अन्वयिरूप भाव साध्यक स्थल में जैसे वन्ह्यादि साध्य निरूपित व्याप्ति का धूमादि हेतु में ग्रहण होता है वैसे ही केवल व्यतिरेकिके माननेवाला

व्यतिरेक व्याप्ति का ग्रहण अभावों में मानता है अर्थात् साधनाभाव निरूपित व्याप्तिका साध्याभाव में ग्रहण मानता है । और अभावों में ग्रहण करी व्याप्तिका भावरूप साधन से साध्य अनुमितिमें कुछ उपयोग नहीं है (शंका) यदि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान अनुमिति ज्ञानके प्रति अनुपयोगी है तो धूमादि हेतु में अन्वयव्याप्ति ज्ञानशून्य पुरुषोंको भी व्यतिरेकव्याप्तिज्ञान से अनुमिति कैसे होती है ? (समाधान) ऐसे स्थल में उस पुरुष को अर्थापत्ति प्रमाणसे वन्ह्यादि ज्ञान होता है । किन्तु अनुमान से नहीं होता इसवार्ता को हम आगे अथापत्ति प्रमाणनिरूपणअवसरमें कहेंगे (अत एव) अर्थापत्ति प्रमाणसे निवाह होनेहींसे अनुमानमें 'अन्वयव्यतिरेकि' रूपता भी नहीं है क्योंकि व्यतिरेकव्याप्ति ज्ञानको अनुमितिके प्रति हेतुता सर्वथा अनुभवसिद्ध नहीं है ॥ ६ ॥

तच्चानुमानंस्वार्थपरार्थभेदेनद्विविधम् । तत्रस्वार्थंतूक्तमेव, परार्थंतुन्यायसाध्यम् । न्यायोनामावयवसमुदायः । अवयवाश्चत्रयएवप्रसिद्धाःप्रतिज्ञाहेतूदाहरणरूपाः; उदाहरणोपनयनिगमनरूपा वा । नतुपंचावयवरूपाः अवयवत्रयेणैव व्याप्तिपक्षधर्म्मतयोरुपदर्शनसंभवेनाधिकावयवद्वयस्य व्यर्थत्वात् । एवमनुमानेनिरूपिते तस्माद्ब्रह्मभिन्ननिखिलप्रपंचस्यमिथ्यात्वसिद्धिः ॥

उक्त अनुमान स्वार्थ तथा परार्थभेदसे दो प्रकारका है उनमें स्वार्थ अनुमान का स्वरूप तो पूर्व कहही चुके हैं और दूसरा परार्थ अनुमान न्याय साध्य है 'न्याय' नाम अवयव समूह का है वह अवयव प्रकृतमें तीन ही प्रसिद्ध हैं, प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण, रूप ये तीन अथवा, उदाहरण, उपनय, निगमन, रूप ये तीन हैं, नैयायिकोंकी तरह पांच अवयव माननेकी कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि पर पुरुषके प्रति व्याप्ति तथा पक्षधर्म्मताका प्रदर्शन उक्त तीन अवयवोंही से बन सकता है इसलिये अवयवद्वयका अधिक मानना व्यर्थ है एवं पूर्वोक्त रीतिसे अनुमान निरूपण हुआ तो उस अनुमानसे प्रकृतमें ब्रह्मसे भिन्न यावत् प्रपंचमें मिथ्यापन सिद्ध होता है ॥ ७ ॥

तथाहि । ब्रह्मभिन्नंसर्वंमिथ्या ब्रह्मभिन्नत्वाद्यदेवं तदेवंयथाशुक्तिरूप्यम् । नचदृष्टांतासिद्धिः तस्यसाधितत्वात् ।

नचाप्रयोजकत्वं शुक्तिरूप्यरज्जुसर्पादीनांमिथ्यात्वे ब्रह्मभिन्न त्वस्यैवलाघवेनप्रयोजकत्वात् ॥

(तथाहि) वह इस प्रकारसे है कि ब्रह्म से भिन्न यावद् वस्तु, ब्रह्म से भिन्न होनेही से मिथ्या है, (यदेवं) जो हेतुवाला है अर्थात् जो ब्रह्मसे भिन्न है (तदेवं) वह अवश्य साध्यवाला है अर्थात् वह निःसंदेह मिथ्या है जैसे 'शुक्ति रूप्य' ब्रह्मसे भिन्न है और मिथ्याभी है (शंका) आपका कहा 'शुक्तिरजत' रूप दृष्टान्त भी असिद्ध है अर्थात् उसको भी हम मिथ्या नहीं कह सकते. (समाधान) शुक्तिरजतरूप दृष्टान्तके मिथ्यात्व का विचार तो हम पूर्व प्रत्यक्ष परिच्छेदहीमें करके उसको मिथ्या सिद्ध कर चुके हैं. (शंका) यह अनुमान आपका अनुकूल तर्ककी सहकारिता से रहित है अर्थात् यदि हम ऐसी अप्रयोजक शंका करें कि ब्रह्म भिन्नत्वरूप हेतु रहो परन्तु मिथ्यात्वरूप साध्य मत रहो तो इस शंका के निवारणाथ आपके पास अनुकूल तर्क नहीं है (समाधान) शुक्ति रजत, रज्जु सर्पादिकों में मिथ्यात्वका प्रयोजक लाघवसे ब्रह्म भिन्नत्व ही है किन्तु पूर्वोक्त अविद्या अतिरिक्तदोषजन्यत्वरूप नहीं है एवं लाघवरूप अनुकूल तर्कके विद्यमान होनेसे उक्त अनुमान अप्रयोजक नहीं है ॥

मिथ्यात्वंचस्वाश्रयत्वेनाभिमतयावन्निष्ठात्यंताभावप्रतियो गित्वम् अभिमतपदंवस्तुतःस्वाश्रयाप्रसिद्ध्या असंभववा रणाय यावत्पदमर्थांतरवारणाय ॥

(शंका) आपके साध्यरूप मिथ्यात्व का लक्षण क्या है (समाधान) स्व[१] आश्रयत्वेन अभिमत जो यावत् पदार्थ उस यावत् पदार्थ में स्थित जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावके प्रतियोगि होना ही हरएक वस्तुमें मिथ्यापन है शुक्ति रजतादि मिथ्या पदार्थों में उक्त लक्षण का असम्भव वारणके लिये लक्षणमें 'अभिमत' पद का प्रवेश किया है यदि 'अभिमत' पद न दिया जाय तो 'स्व' पदसे गृहीत शुक्ति रजतादि का वस्तुतःआश्रय ही अप्रसिद्ध है और यदि 'अभिमत' पदका निवेश करते हैं तो वस्तुतः स्वआश्रय अप्रसिद्ध भी रहो परन्तु स्व प्रतीतिकालमें स्व आश्रयत्वेन अभिमत शुक्ति आदि हैं उन शुक्तिआदिकोंमें वर्तनेवाला जो अत्यन्ताभाव, उस अत्यन्ताभावका प्रतियोगित्व, शुक्तिरूप्य में है यही उसमें मिथ्यात्व है एवं अर्थान्तर वारणके लिये लक्षण में 'यावत्' पद का प्रवेश है अर्थात् यदि उक्त लक्षण में 'यावत्' पदका प्रवेश नहीं करें तो

१ स्वपद से मिथ्यात्वेन अभिमत पदार्थका ग्रहण करना ।

कपिसंयोग आश्रयत्वेन अभिमत वृक्षमें मूलावच्छेदेन वर्तमान जो कपिसंयोगका अभाव उस अभावका प्रतियोगित्व, शाखावच्छेदेन वर्तमान कपिसंयोगमें है एवं उक्त लक्षण का लक्ष्य होनेसे कपिसंयोगमें भी मिथ्यात्व की सिद्धि होनी चाहिये परन्तु ऐसा मिथ्यात्व प्रकृतमें इष्ट नहीं है क्योंकि ऐसा मिथ्यात्व तो स्वयं सिद्ध ही है किन्तु इससें तो 'सामानाधिकरण्य रूप' अर्थान्तरकी सिद्धि होती है इस अर्थान्तरके वारणार्थ 'यावत्' पदका प्रवेश अवश्य करना चाहिये प्रवेश किया तो स्वआश्रयत्वेन अभिमत यावदन्तर्गत शाखादि भी ले सकते हैं उनमें कपिसंयोग का अत्यन्ताभाव ही नहीं किन्तु कपि संयोग ही विराजमानहै इसलिये उक्त दोष नहीं है इस वेदान्त सिद्धान्त में "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशःसम्भूतः"इत्यादि श्रुति वचनोंके अनुरोधसे आकाशादिकोंको भी उत्पत्तिवाले माना है एवं उनका भी अपने कारणरूप आश्रयमें रहना बन सकता है इसलिये उनमें अव्याप्तिकी शंका नहीं है इस रीतिसे मिथ्यात्वके पर्य्यवस्थित लक्षण का स्वरूप (जिस देशमें जिस काल में जो वस्तु जिस रूपसे जिस धर्म्म से जिस अधिकरण में प्रतीय मान है उसी देशमें उसी काल में उसी वस्तु का उसी रूपसे उसी धर्म्म से उसी अधिकरण में जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व) इत्यादि कह सकते हैं ॥

तदुक्तम्—

"सर्वेषामेवभावानांस्वाश्रयत्वेनसम्मते ।
प्रतियोगित्वमत्यंताभावंप्रतिमृषात्मता" ॥

इति यद्वा अयंपटएतत्तंतुनिष्ठात्यंताभावप्रतियोगी पटत्वात्, पटान्तरवदित्याद्यनुमानंमिथ्यात्वेप्रमाणम् ॥

स्व उक्त लक्षण में मूलकार 'तदुक्तम्' इत्यादि ग्रंथसे चित्सुखाचार्य्यकी सम्मति भी कहते हैं सर्वेषां, अर्थात् सम्पूर्ण भावपदार्थों का जो स्व आश्रयत्वेन (सम्मत) अभिमत अधिकरण, तादृश अधिकरण निष्ठ जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावके प्रतियोगी होना ही वस्तु में (मृषात्मता) मिथ्या रूपता है॥१॥ इति ॥ अथवा यह पट, पटान्तरोंकी तरह पटत्व धर्म्मवाला होनेसे (एतत् तन्तु) समवायेन स्वाधिकरणीभूत तन्तुनिष्ट अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी कह सकते हैं भाव यह कि पटान्तरोंमें जहां जहां हेतुरूप पटत्व धर्म्म है वहां २ एतत् सहस्र तन्तुनिष्ठ अत्यान्ताभाव प्रतियोगित्व भी है वैसे ही 'पटत्व' धर्म्म सहस्र तन्तु कपटमें भी तुल्य ही है वही 'पटत्व' धर्म्म प्रकृत अनुमान में पक्षधर्म्मतारूप है तादृश पक्षधम्मताके बलसे हम सहस्र तन्तुक पट का भी सहस्र तन्तु निष्ठ

यंताभाव कह सकते हैं तादृश अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व ही उक्त सहस्र तन्तुक पट में मिथ्यात्व है ऐसे ही सर्वत्र जान लेना इत्यादि अनुमान भी उक्त मिथ्यात्व में प्रमाण हैं ॥

दुतक्तम्-

"अंशिनःस्वांशगात्यंताभावस्य प्रतियोगिनः ।
अंशित्वादितरांशीवद्दिगेषैवगुणादिषु" ॥ इति ॥

उक्त अनुमानमें मूलकार 'तदक्तम्' इत्यादि ग्रन्थसे चित्सुखाचार्य्यकी संमति भी कहते हैं (अंशिनः) सभी पट (स्वांशगात्यन्ता भावस्य) अपनी अपनी तन्तुओंमे रहनेवाले अत्यन्ताभावके (प्रतियोगिनः) प्रतियोगी हैं अर्थात् सभी पटों का समवायेन स्व स्व अधिकरण तन्तुओंमें अत्यन्ताभाव रहता है (अंशित्वात्) पटत्व धर्मवाले होनेसे (इतरांशिवत्) पटान्तरकी तरह (दिगेष एव) यही मार्ग (गुणादिषु) गुणादिकों में भी जानलेना अर्थात् रूपं, रूपिनिष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगि, गुणत्वात्, स्पशवत्, । एषाक्रिया, एतद् द्रव्य निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगिनी क्रियात्वात् क्रियान्तरवत् । घटत्वं, घटनिष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगि, धर्म्मत्वात्, पटत्वादिवत्, अयं विशेषः, एतत् परमाणुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी, विशेषत्वात्, विशेषान्तरवत्, समवायः, स्वसमवायि निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगी, सम्बन्धत्वात्, संयोगवत्, इत्यादि अनुमानों से पदाथमात्र में मिथ्यात्व सिद्ध करलेना-इति ॥

नचघटादेर्मिथ्यात्वेसन्घटइतिप्रत्यक्षेणबाधः अधिष्ठानब्रह्मसत्तायास्तत्रविषयतयाघटादेःसत्यत्वासिद्धेः । नचनीरूपस्य ब्रह्मणः कथं चाक्षुषादिज्ञानविषयतेतिवाच्यम् । नीरूपस्यापि रूपादेःप्रत्यक्षविषयत्वात् । नचनीरूपस्य द्रव्यस्य चक्षुराद्ययोग्यत्वमितिनियमः।मन्मतेब्रह्मणोद्रव्यत्वासिद्धेः गुणाश्रयत्वं समवायिकारणत्वंवाद्रव्यत्वमितितेऽभिमतं नहिनिर्गुणस्यब्रह्मणोगुणाश्रयता नापि समवायिकारणतासमवायासिद्धेः ॥

(शंका) आपका कहा घटादि मिथ्यात्व साधक अनुमान 'सन् घटः' इत्यादि प्रत्यक्ष प्रतीति से बाधित है (समाधान) घटादि अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता ही वहां सद्रूपेण विषय होती है उससे भिन्न घटादिकोंमें स-रूपता सिद्ध नहीं है (शंका) रूपरहित ब्रह्म, कैसे सद्रूपेण चाक्षुषादि ज्ञानका विषय होसकता है (समाधान) जैसे रूपरहित भी रूपादि गुण चाक्षुषादि ज्ञानके विषय होते हैं वैसेही ब्रह्म भी

होसकता है (शंका) 'रूपरहित द्रव्य में नेत्रादि इन्द्रियों से ग्रहण योग्यता नहीं- है, ऐसा हमारा नियम है (समाधान) तौ हमारे वेदान्तसिद्धान्त में तो ब्रह्म में द्रव्यस्वरूपता भी सिद्ध नहीं है क्योंकि आपने 'गुण का आश्रय' अथवा कार्य्य का समवायिकारणस्वरूप ही 'द्रव्य' माना है परन्तु हमारे सिद्धान्त में 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' इत्यादि श्रुतिसिद्ध निर्गुण ब्रह्म में गुणोंकी आश्रयता तथा समवायिकारणता, बन नहीं सकती क्योंकि दोनों लक्षणों में समवाय प्रविष्ट हैं और समवाय का सिद्ध होना युक्ति सिद्ध नहीं है ॥

अस्तुवाद्रव्यत्वंब्रह्मणस्तथापिनीरूपस्यकालस्येवचाक्षुषादि ज्ञानविषयत्वेपिनविरोधः यद्वा त्रिविधंसत्त्वंपारमार्थिकंव्या वहारिकंप्रातिभासिकंच पारमार्थिकंसत्त्वंब्रह्मणः, व्यावहारिकं सत्त्वमाकाशादेः,प्रातिभासिकंसत्त्वंशुक्तिरजतादेः। तथाचघटः सन्निातिप्रत्यक्षस्यव्यावहारिकसत्त्वविषयत्वेनप्रामाण्यमस्मि न्पक्षेचघटादेर्ब्रह्मणिनिषेधोनस्वरूपेण किंतुपारमार्थिकत्त्वेनै वेतिनविरोधः अस्मिन्पक्षेचमिथ्यात्वलक्षणेपारमार्थिकत्त्वा वच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमत्यंताभावइतिविशेषणं द्रष्टव्यम् । तस्माढुपपन्नंमिथ्यात्वानुमानमिति ॥

॥ इत्यनुमानपरिच्छेदः समाप्तः ॥

अथवा द्रव्यस्वरूपता भी ब्रह्ममें रहो, तौभी जैसे "अस्मिन्कालेघटोनास्ति" इत्यादि प्रतीतिके बलसे मीमांसक लोगोंने कालमें इन्द्रियवेद्यत्वस्वीकार कियाहै वैसेही "सन्घटः" इत्यादि प्रतीतिसें हमभी ब्रह्मको चाक्षुष मानतेहैं इसमें कुछ- विरोध नहींहै । अथवा, पारमार्थिक, व्यावहारिक, तथा प्रातिभासिक, भेदसे पदार्थोंकी सत्ता तीन प्रकारकी है। उनमें पारमार्थिक, सत्ता ब्रह्मकी है । और व्याव- हारिक सत्ता आकाशादिकोंकी है। तथा प्रातिभासिक सत्ता शुक्तिरजतादिकोंकीहै । इसरीतिसे 'घटः सन्' इत्यादि प्रतीतिको व्यावहारिक सत्ताका अवगाहन करनेवाली होनेसे प्रमाणताहै । और इस त्रिविध सत्ता वादरूप पक्ष में घटादि व्यावहारिक पदाथाका स्वाधिष्ठान ब्रह्ममें स्वरूपेण निषेध नहींहै किन्तु पारमार्थि-

१ उनमें तीनों कालमें जिसका बाध न हो,ऐसी सत्ताका नाम पारमार्थिकसत्ता है।और संसार दशामें जिसका बाध नहो, एसी सत्ताका नाम व्यावहारिक सत्ताहै । एवं प्रतिभास कालमें जिसका बाध न हो, ऐसी सत्ताका नाम प्रातिभासिकसत्ताहै ॥

कत्वेन निषेध है इसलिये पूर्वोक्त अनुमानके साथ (सन्घटः) इत्यादि प्रतीतिका विरोध नहीं है । इस त्रिविध सत्तावादरूप पक्षमें मिथ्यात्वके लक्षणमें (पारमार्थिकत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकत्व) अत्यन्ताभावमें विशेषण देना चाहिये अर्थात् स्वाश्रयत्वेन अभिमत जो यावत् अधिकरण, तन्निष्ठ पारमार्थिकत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताका जो अत्यन्ताभाव, तादृश अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व, तत्तत्पदार्थनिष्ठ मिथ्यात्वहै । इसरीतिसे मिथ्यात्व का साधक अनुमानभी उपपन्न होताहै ॥

इति श्रीनिर्मलपण्डितस्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषाविभूषित
वेदान्तपरिभाषाप्रकाशे अनुमानपरिच्छेदः ॥ २ ॥

अथोपमानपरिच्छेदः ३.

आगमापायि लोकेऽस्मिन्नास्ति यत्प्रतियोगिता ॥
सादृश्येऽनुपमेयं तं वन्दे श्रीगुरुनानकम् ॥ १ ॥

अथोपमानं निरूप्यते ॥

अवसर सङ्गति के अभिप्राय से ग्रन्थकार 'अथ' इत्यादि ग्रन्थसे क्रमप्राप्त 'उपमान' प्रमाण के निरूपणकी प्रतिज्ञा करते हैं ॥

तत्र सादृश्यप्रमाकरणमुपमानम् ॥

(तत्र) उस निरूपणीय उपमान के विचार में सादृश्य प्रमा के करणका नाम 'उपमान' है ॥

तथाहि नगरेषुदृष्टगोपिण्डस्यपुरुषस्यवनंगतस्य गवयेन्द्रियसन्निकर्षेसतिभवतिप्रतीतिरयंपिंडोगोसदृशइति। तदनंतरं भवति निश्चयः,अनेनसदृशीमदीयागौरिति। तत्रान्वयव्यतिरेकाभ्यांगवयनिष्ठगोसादृश्यज्ञानं करणं गोनिष्ठगवयसादृश्यज्ञानंफलम् ॥

तथाहि । वह ऐसे है कि प्रथम नगर में जिस पुरुषने गौको देखा हो, वही फिर कालान्तर में वनमें जाय तो वहां उसके नेत्र इन्द्रिय का 'गवय' व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होनेसे उसको यह प्रतीति होती है कि (अयं पिण्डो गोसदृशः) अर्थात् हय पिण्ड गौ जैसा है इति । फिर उसके पश्चात् उस पुरुष को यह निश्चय होता है कि 'इस पिण्ड के सदृश ही मेरी गौ है' इति । (तत्र) इस निश्चयद्वयके मध्यमें अन्वयव्यतिरेकसे प्रथम 'गवयनिष्ठ गोसादृश्य ज्ञान' अर्थात् गोनिरू-

पित गवयपिण्ड निष्ठ (अयं पिण्डो गोसदृशः) इत्याकारक सादृश्य ज्ञान करण है और गोनिष्ठ गवयसादृश्यज्ञान, अर्थात् गवयपिण्डनिरूपित गोपिण्डनिष्ठ 'अनेन सदृशी मदीया गौः' इत्याकारक सादृश्य ज्ञान, फल है ॥

नचेदंप्रत्यक्षेणसंभवति गोपिंडस्यतदेन्द्रियासन्निकर्षात् । नाप्यनुमानेनगवयनिष्ठगोसादृश्यस्यातल्लिंगत्वात् ॥

यह गवयप्रतियोगिक गोनिष्ठ सादृश्यज्ञान प्रत्यक्षप्रमाणसे नहीं होसकता क्योंकि गवयपिण्डके साथ इन्द्रियसन्निकर्ष काल में गोपिण्डके साथ इन्द्रिय सम्बन्ध नहीं है इस लिये इन्द्रियअसन्निकृष्ट गोपिण्डनिष्ठ सादृश्यज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण का फल नहीं है ऐसे ही 'गवयप्रतियोगिक गोनिष्ठ सादृश्यज्ञान अनुमान से भी नहीं होसकता क्योंकि गवयनिष्ठ ' अयं पिण्डो गोसदृशः इत्याकारक गोसादृश्य ज्ञान, उस का साधक हेतु नहीं बन सकता । भाव यह कि गोनिरूपित गवयनिष्ठसादृश्य गवय में रहता है किन्तु गौ में नहीं रहता एवं पक्षावृत्ति हेतु होनेसे उक्त ज्ञान का साधक नहीं बन सकता ॥

नापि मदीयागौरेतद्गवयसदृशी, एतन्निष्ठसादृश्यप्रतियोगित्वात् । योयद्गतसादृश्यप्रतियोगी, सतत्सदृशः । यथा मैत्रनिष्ठसादृश्यप्रतियोगीचैत्रः मैत्रसदृशइत्यनुमानात्तत्संभव इति वाच्यम् ॥

(शंका) एतद्गवयनिष्ठ सादृश्यकी प्रतियोगिता वाली होनेसे, मेरी गौ इस गवय के जैसी है क्योंकि जो वस्तु जिस वस्तुगत सादृश्यकी प्रतियोगिता वाली होती है, वह वस्तु उसके सदृश कही जाती है जैसे मैत्रगत सादृश्यका प्रतियोगी चैत्र, मैत्रके सदृश कहा जाता है इत्याकारक अनुमान सें (तत्) गवयनिरूपित गोनिष्ठ सादृश्य प्रमाका सम्भव होसकता है ॥

एवंविधानुमानानवतारेप्यनेनसदृशीमदीयागौरितिप्रतीतेरनुभवसिद्धत्वात्।उपमिनोमीत्यनुव्यवसायाच्च तस्मादुपमानंमानांतरम् ।

॥ इत्युपमानपरिच्छेदः ॥ ३ ॥

(समाधान) इस प्रकारके अनुमानके अनवतार कालमें अर्थात् न उत्थान होनेसे भी 'अनेन सदृशी मदीया गौः' इत्याकारक प्रतीतिको सर्व अनुभव सिद्ध होनेसे

४

अन्वय व्यतिरेकद्वारा अनुमान में उक्त प्रतीतिकी कारणता नहीं है और साहश्य बुद्धिके अवगाहन करनेवाला 'उपमिनोमि' इत्याकारक अनुव्यवसायात्मक ज्ञान भी उपमिति बुद्धि का पृथक् व्यवस्थापक है इसलिये उपमान भी प्रमाणान्तर सिद्ध होता है।

इति श्रीनिर्मलपण्डितस्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषा
विभूषितवेदान्तपरिभाषाप्रकाशे उपमानपरिच्छेदः ॥ ३ ॥

अथागमपरिच्छेदः ४.

शब्दमानं समुत्सृज्य नास्ति यत्र प्रवर्तना ॥
मुख्यतोऽपरमानानां मेयोऽसौ नानको गुरुः ॥ १ ॥

अथागमोनिरूप्यते ॥ १ ॥

क्रमप्राप्त तथा बहुवादिसंमत होनेसे 'अथ' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार (आगम) शब्दप्रमाणके निरूपणकी प्रतिज्ञा करते हैं ॥ १ ॥

यस्यवाक्यस्यतात्पर्यविषयीभूतसंसर्गोमानांतरेण नबाध्यते तद्वाक्यंप्रमाणम्, वाक्यजन्यज्ञानेच आकांक्षायोग्यताऽऽसत्तय स्तात्पर्यज्ञानंचेतिचत्वारिकारणानि । तत्रपदार्थानांपरस्पर जिज्ञासाविषयत्वयोग्यत्वमाकांक्षा ॥

जिस वाक्यका तात्पर्य्यके विषय होनेवाला पदार्थके साथ संसर्ग, प्रमाणान्तरसे बाधित नहीं होता वह 'वाक्य प्रमाण' कहाजाताहै और आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, तथा तात्पर्य्य ज्ञान ये चार वाक्यजन्यज्ञानमें कारण हैं। (तत्र) उनमेंसे पदार्थोंको आपसमें जिज्ञासाकी विषयताके योग्य होनेका नाम आकांक्षा, है ॥

क्रियाश्रवणेकारकस्यकारकश्रवणेक्रियायाःकरणश्रवणे इतिकर्तव्यतायाश्चजिज्ञासाविषयत्वादजिज्ञासोरपिवाक्यार्थ बोधात् योग्यत्वमुपात्तम् ॥

(शंका) इस लक्षणमें 'योग्यत्व' पद निरर्थक प्रतीत होताहै (समाधान) 'आनय' इत्यादि क्रियावाचक पदके श्रवणसे घटादिकर्मकारककी जिज्ञासा होतीहै एवं 'घटं' इत्यादि कर्मकारक बोधक शब्दके श्रवणसे आनयनादि क्रियाकी जिज्ञासा होतीहै। और 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि स्वर्गकरणके बोधक शब्दके श्रवणसे 'समिधो यजति' 'इडा यजति' इत्यादि प्रयाजादि अङ्गोंकी

जिज्ञासा होतीहै । इत्यादि स्थलोंमें वाक्यार्थजिज्ञासारहित पुरुषकोभी क्रिया कर्मादिबोधक शब्दश्रवण मात्रसे वाक्यार्थबोध होता है इसलिये 'योग्यत्व' का उपादान है । यदि 'योग्यत्व' का निवेश न करें तो जहां जिस पुरुषको वाक्यार्थबोधकी जिज्ञासा नहीं है वहां उसको क्रियाकर्मादिपदोंके श्रवण से वाक्यार्थबोध नहीं होना चाहिये क्योंकि ऐसे स्थलमें क्रियाकर्मादि पदार्थों-को परस्पर जिज्ञासा विषयत्व नहीं है । और यदि 'योग्यत्व ' पदका निवेश करते हैं तो वाक्यार्थज्ञानकी जिज्ञासारहित पुरुषको भी वाक्यजन्य ज्ञान होनेसे क्रियाकर्मादि पदार्थोंमें परस्पर जिज्ञासाकी विषयताकी योग्यता अवश्य रहती है । इसलिये ऐसे स्थलमें उक्त आकांक्षालक्षणकी अव्याप्ति नहीं है ॥

तदवच्छेदकंचक्रियात्वकारकत्वादिकमितिनातिव्याप्तिर्गौर श्वइत्यादौ ॥ ४ ॥

(शंका) उक्त आकांक्षा अमुक स्थलमें है, ऐसे आकांक्षाका ग्राहक तद-वच्छेदक कौन है ? (समाधान) जिज्ञासा विषयत्व योग्यत्वके अवच्छेदक, धर्म्म, क्रियात्व, कारकत्व, आदि हैं इस लिये 'गौः अश्वः' इत्यादि निराकांक्ष स्थलमें उक्त क्रियात्वादि धर्मोंको अवच्छेदक न होनेसे अतिव्याप्ति नहीं है ॥

अभेदान्वयेचसमानविभक्तिकपदप्रतिपाद्यत्वं तदवच्छेदक मितितत्त्वमस्यादिवाक्येषुनाव्याप्तिः ॥

(शंका) ' नीलोघटः ' ' तत्त्वमसि' इत्यादि सिद्धार्थक साकांक्षवाक्यस्थलोंमें, आपके कहे जिज्ञासा विषयत्वयोग्यत्वरूप 'क्रियात्व' ' कारकत्त्वादि ' धर्मोंके न होनेसे उक्त आकांक्षा लक्षणकी अव्याप्ति होगी. (समाधान) अभेदान्वय प्रति, योगी 'तत्त्वं' पदार्थादिकोंमें समान विभक्तिक पदप्रतिपाद्यत्व, रूपधर्म्म उक्त आकांक्षाका अवच्छेदक है । इस लिये 'तत्त्वमसि' इत्यादि सिद्धार्थक वा-क्योंमें अव्याप्ति नहीं है ॥

एतादृशाकांक्षाभिप्रायेणैवबलाबलाधिकरणे "सावैश्वदेव्या मिक्षावाजिभ्योवाजिनम्" इत्यत्रवैश्वदेवयागस्यामिक्षान्वित त्वेन नवाजिनाकांक्षेत्यादिव्यवहारः ॥

एतादृश पूर्वोक्त आकांक्षाके तात्पर्य्यहीसे पूर्वमीमांसाके तृतीय अध्यायके

तृतीयपादगत 'बलाबल' नामक अधिकरणमें "तप्तेपयसि दध्यानयति सा वैश्वदेव्या मिक्षा वाजिभ्यो वाजिनम्" इस वचनका विचार करके सिद्धान्त किया है कि 'वैश्वदेव' नामक यागको 'आमिक्षा' नामक द्रव्यसे अन्वित होनेसे अर्थात् शान्ताकांक्ष होनेसे उसको वाजिन नामक द्रव्यान्तरकी आकांक्षा नहीं है (इत्यादि व्यवहारः) इत्यादि व्यवहार बलाबलाधिकरणमें किया है । यहां यह भाव है कि विधिवाक्योंका विचार करते हुए जैमिनिमहर्षिने विधिविशेषके सहकारीभूत श्रुतिलिङ्गादि' षट् प्रमाण मानेहैं । अर्थात् विधिवाक्यप्रतिपादित द्रव्य देवतादि पदार्थोंका विनियोग उक्तषट् प्रमाणोंहीकी सहकारतासे किया जाता है । उन प्रमाणोंमेंभी महर्षिने "श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाक्षानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्" इत्यादि सूत्रोंसे सबलनिर्बल भाव दिखलाया है अर्थात् श्रुति आदि च्छहों प्रमाणोंमें जहां दो तीन या अधिकका परस्पर (समवाय) एक विषयत्वरूप विरोध है। अर्थात् एकही वाक्यमें दो तीन या अधिक प्रमाणोंकी प्राप्ति हो वहां (अर्थविप्रकर्षात् पारदौर्बल्यम्) अर्थात् स्वार्थ बोध्य अर्थके (विप्रकर्ष) प्रमाणांतर व्यवधानसहित होनेसे परपरके प्रमाण को दुर्बलता है । जैसे श्रुतिप्रमाण सबसे बलवत् है । लिङ्ग उससे निर्बल है, वाक्य उससे निर्बल है इत्यादि । इसीका नाम बलाबलाधिकरण है । यहांनिरपेक्ष रवका नाम श्रुतिप्रमाण है १ । अर्थविशेष प्रकाशन सामर्थ्य का नाम लिङ्ग है २ । परस्पर आकांक्षावशसे किसी एक अर्थमें पर्य्यवसान पानेवाले पदसमुदायका नाम वाक्य है ३ । वाक्यभाव को प्राप्त हुए पदोंका कार्य्यान्तरकी अपेक्षा होनेसे वाक्यान्तरके साथ सम्बन्ध हुए आकांक्षा के पर्य्यवसानका नाम प्रकरण है ४ । स्थान, नाम क्रमका है. अर्थात् जिस प्रथम द्वितीयादि क्रमसे यागादिका विधान हो उसी क्रमसे उसमें द्रव्यदेवताका भी विधान जानना ५ । यौगिक शब्दका नाम समाख्या है ६ । यहां 'सावैश्वदेवी' इत्यादि वचनमें श्रुतिका तथा वाक्यका परस्पर विरोध है । उनमें वाक्य दौर्बल्यका उदाहरण है। यहां विचार यह है कि 'वाजिन' नामक द्रव्य विश्वेदेवताका अंग है? किंवा 'वाजि' नामक देवता आन्तर का अंग है? ऐसा संशय होनेसे पूर्वपक्ष यह उपस्थित होता है कि विकल्पसे अथवा समुच्चयसे वाजिन द्रव्य, केवल विश्वेदेवता ही का अंग है । और सिद्धान्त यह है कि वाजिन, द्रव्य को विश्वेदेवता की

१ अर्थात् तपे हुए दुग्धमें दधिका प्रक्षेपण करे दुग्ध फट जाय तो उसके घनीभूतभागका नाम 'आमिक्षा' है । और शेष रहे जलभागका नाम 'वाजिन' है ॥ वह आमिक्षा वैश्वदेवी है अर्थात् विश्वेदेव देवताकी है । और वाजिन वाजि नामक देवताओंका है ।

अंगता नहीं है । क्योंकि यदि इसमें उक्त देवता की अंगता मानभी लीजाय तो तौ भी 'वाक्य' प्रमाणहीसे माननी होगी और वह वाक्यप्रमाण 'वैश्वदेवी' इत्याकारक तद्धितरूप श्रुतिप्रमाण से बाधित है । क्योंकि 'विश्वेदेवा देवता अस्याः सा वैश्वदेवी आमिक्षा' इत्याकारक ताद्धित श्रुतिसे आमिक्षारूप द्रव्यही को विश्वेदेवता की साकांक्ष अंगता है। अतएव वाजिन नामक द्रव्यको निराकांक्ष होनेसे तथा विश्वेदेवताओंको शान्ताकांक्ष होनेसे इनके परस्पर अंगअंगिभावका सम्भव नहीं है ॥

ननुतत्रापिवाजिनस्यजिज्ञासाऽविषयत्वेपि तद्योग्यत्वमस्त्येव । प्रदेयद्रव्यत्वस्ययागनिरूपितजिज्ञासाविषयतावच्छेदकत्वादितिचेत् न स्वसमानजातीयपदार्थान्वयबोधविरहसहकृतप्रदेयद्रव्यत्वस्यैवतदवच्छेदकत्वेनवाजिनद्रव्यस्यस्वसमानजातीयामिक्षाद्रव्यान्वयबोधसहकृतत्वेन तादृशावच्छेदकाभावात् ॥

(शंका) आपका किया आकांक्षा का लक्षण, तो वाजिन, मेंभी समन्वय हो सकता है । क्योंकि प्रदेयद्रव्यको नियमसे यागनिरूपित जिज्ञासाविषयता का अवच्छेदक होनेसे 'सा वैश्वदेव्यामिक्षा' इत्यादि स्थलमें वाजिनद्रव्यको उक्त जिज्ञासाके अविषय होनेसेभी उक्त 'जिज्ञासाविषयत्व योग्यत्व' बनसकता है. (समाधान) अपने समान जातिवाले पदार्थका जो अन्वयबोध, तादृश बोध विरहसहकृत जो प्रदेयद्रव्य, तादृश द्रव्यहीमें उक्त यागनिरूपित जिज्ञासा विषयता की अवच्छेदकता होती है, एवं वाजिनरूप द्रव्यको अपने समान जातिवाले 'आमिक्षा' रूप द्रव्यविषयक अन्वयबोधके सहकृत होनेसे उसमें उक्त अन्वय बोध विरहसहकृत प्रदेयद्रव्यत्वरूपा अवच्छेदकता नहीं है ॥

आमिक्षायांतुनैवं वाजिनान्वयस्यतदानुपस्थितत्वात् । उदाहरणांतरेष्वपिदुर्बलत्वप्रयोजकआकांक्षाविरहएवद्रष्टव्यः ॥

(शंका) यदि हम प्रथम 'वाजिन' पदार्थहीके साथ पूर्वोक्त रीतिका अन्वयबोध मानलें तथा आमिक्षापदार्थमें उक्त अवच्छेदक का अभाव मानें तो क्या दोषहै ? (समाधान) आमिक्षामें उक्त अवच्छेदकके अभावकी शंका नहीं बनसकती । क्योंकि आमिक्षाका अन्वयबोध श्रुतिप्रमाणसे हुआहै । और वाजिन का अन्वयबोध अभी वाक्यसे होनेवाला है, क्योंकि वह प्रथम होनेवाले प्रबलश्रुतिप्रमाण

जन्य आमिक्षाअन्वयबोध कालमें उपस्थित नहीं है। ऐसेही और २ उदाहरणोंमें भी दौर्बल्यप्रयुक्त आकांक्षाका अभाव जानलेना अर्थात् श्रुतिप्रमाण तथा लिङ्ग प्रमाणके परस्पर विरोधस्थलमें लिंगप्रमाणही दुर्बल होगा तथा तद्विनियोजित पदार्थ हीमें उक्त आकांक्षाका विरहभी होगा ऐसेही सभी प्रमाणोंमें पूर्वपूर्वको परपरसे सबल समझना बलाबलाधिकरणका भाव है ॥

योग्यताचतात्पर्यविषयीभूतसंसर्गाबाधः वह्निनासिंचतीत्यादौ तादृशसंसर्गबाधान्नयोग्यता "सप्रजापतिरात्मनोवपामुदखिदत्" इत्यादावपितात्पर्य्यविषयीभूतपशुप्राशस्त्याबाधात् योग्यता। तत्त्वमस्यादिवाक्येष्वपिवाच्याभेदबाधेपिलक्ष्यस्वरूपाभेदेबाधाभावात् योग्यता॥

तात्पर्य्य विषयीभूत पदार्थोंके संसर्गके न बाध होनेका नाम योग्यताहै। 'अग्निसे सेचन करताहै' इत्यादि अर्थक वाक्यस्थलमें तात्पर्य्य विषयीभूत सेचनक्रिया जन्य संसर्गका बाध है। इसलिये ऐसे वाक्यस्थलमें योग्यता नहीं है। "वह (प्रजापतिः) ब्रह्मा हवनार्थ अपने (वपा) मेदको उत्खादन करता भया" इत्यादि अर्थवाले अर्थवादवाक्योंमेंभी तात्पर्य विषयीभूत पशुकी श्रेष्ठता निराबाध है। अर्थात् यज्ञकार्य्यके लिये जब ब्रह्माने अपनी वपाका हवन करना भी उचित समझा तो ऐसे कार्य्यके लिये वध किये पशुके कल्याणमें या उसकी श्रेष्ठतामें क्या सन्देहहै ? इसलिये ऐसे स्थलमेंभी योग्यता बनसकतीहै। एवं 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'वह तूं है' इत्यादि वाक्यस्थलमेंभी तत्पदवाच्यार्थ ईश्वरका त्वं पदवाच्यार्थ जीवके साथ अभेदके बाधित होनेसेभी उभयपदके लक्ष्यभागके अभेदमें बाधकके न होनेसे यहांभी योग्यता बनसकती है ॥

आसत्तिश्चाव्यवधानेनपदजन्यपदार्थोपस्थितिः मानांतरोपस्थापितपदार्थस्यान्वयबोधाभावात्पदजन्येति। अतएवाश्रुतपदार्थस्थलेतत्तत्पदाध्याहारः द्वारमित्यादौ 'पिधेहि' इति ॥ अतएव 'ईषेत्वा' इत्यादिमंत्रे 'छिनद्मि' इतिपदाध्याहारः। अतएवविकृतिषु " सूर्य्यायजुष्टंनिर्वपामि" इतिपदप्रयोगः॥

व्यवधानरहित पदजन्यपदार्थउपस्थितिका नाम 'आसत्ति' है। प्रमाणान्तर से उपस्थित हुये पदार्थका शाब्दबोधमें भान नहीं होता. इसलिये 'पदजन्य

पदार्थउपस्थिति' कही है। इसीही लिये अश्रुत पदाथस्थलमें तत्तत् पद का अध्याहार माना है। जैसे 'द्वारं' इत्यादि पदोंके श्रवणसे 'पिधेहि' इत्यादि पदों का अध्याहार करनेसे अन्वयार्थबोध होता है। प्रमाणान्तरसे उपस्थित हुए पदार्थका शाब्दबोधमें भान नहीं होता, इसीलिये ' इषेत्वा ' इत्यादि यजुर्वेदके प्रथम मंत्रमें ' छिनद्मि ' इस क्रियापदका भाष्यकारोंने अध्याहार किया है। शब्दाध्याहारके प्रामाणिक होनेहीसे सौर्य्यादि विकृति यागोंमें ' सूर्य्याय ' इत्यादि पदका प्रयोग करके निर्वाह किया है अर्थात् ' अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि मंत्रोंकी सौर्य्यादि विकृतियागोंमें ऊहा करनेके लिये अग्निपदके स्थानमें सूर्य्यपदका प्रयोग किया है॥

पदार्थश्चद्विविधः शक्योलक्ष्यश्चेति । तत्रशक्तिर्नामपदानामर्थेषुमुख्यावृत्तिः यथाघटपदस्यपृथुबुध्नोदराद्याकृतिविशिष्टे वस्तुविशेषेवृत्तिः । साचशक्तिःपदार्थान्तरम् । सिद्धान्तेकारणेषुकार्य्यानुकूलशक्तिमात्रस्यपदार्थान्तरत्वात् ॥

शक्य लक्ष्यके भेदसे (पदार्थ) पदनिष्ठ वृत्तिका विषय इस प्रकृतमें दो प्रकारका है। 'शक्य' नाम शक्ति के विषय का है। पदोंकी अपने अर्थोंमें पद तत्सम्बन्धिमात्रनिरूपित मुख्यवृत्तिका नाम ' शक्ति ' है। जैसे घटपद की 'पृथुबुध्नोदरादि' अर्थात् वर्तुलाकार बड़े हुये गोगुड़वाले पेटादिके (आकृति) अवयव संस्थानसदृश अवयव संस्थानवाले वस्तुविशेषमें शक्तिवृत्ति है। वह शक्ति हमारे वेदान्तसिद्धान्तमें पदार्थान्तर है। अर्थात् नैयायिकोंकी तरह ईश्वरकी इच्छारूपा नहीं है क्योंकि हमारे वेदान्तसिद्धान्तमें कारणगत कार्य्यानुकूल शक्तिमात्रको पदार्थआन्तर माना है॥

साचतत्तत्पदजन्यपदार्थज्ञानरूपकार्य्यानुमेया तादृशशक्तिविषयत्वं शक्यत्वं।तच्चजातेरेवनव्यक्तेः। व्यक्तीनामानंत्येनगुरुत्वात् । कथंतर्हिगवादिपदाद्व्यक्तिभानमितिचेत् जातेर्व्यक्तिसमानसंवित्संवेद्यत्वादितिब्रूमः ॥

१ हे पुरोडाश अग्निदेवताके अर्थ मैं तेरेको (जुष्टं) प्रीतिपूर्वक (निर्वपामि) सम्पादन या प्रक्षेपण करता हूं॥

वह शक्ति तत्तत् पदसे उत्पन्न होनेवाला जो तत्तत् पदार्थका ज्ञान तादृश ज्ञानरूप कार्य्यसे अनुमेय है । एतादृश शक्तिहीके विषयका नाम शक्य है । वह शक्यता केवल जातिहीमें रहती है किन्तु नैयायिकोंकी तरह जाति आकृति व्यक्ति इन तीनोंमें नहीं है व्यक्तियोंको अनन्त होनेसे उनमें पदकी शक्ति माननेसे उपस्थितिकृत गौरव होताहै. (शंका) यदि अनुगत 'गोत्वादि' धर्मोंहीमें आपके सिद्धान्त में पदकी शक्ति है तो 'गामानय' इत्यादि वाक्योंसे व्यक्तिका भान कैसे होता है? (समाधान) हमारे सिद्धान्तमें धर्म्म धर्म्मवालेका आपसमें तादात्म्य माना है । तथा उन दोनोंको एकज्ञान वेद्य माना है. एवं व्यक्तिसमान ज्ञानसंवेद्य जातिभानकालमें व्यक्ति का भान भी कहसकते हैं ॥

यद्वा गवादिपदानांव्यक्तौशक्तिः स्वरूपसतीनतुज्ञाताहेतुः जातौतुज्ञाता नव्यक्त्यंशेशक्तिज्ञानमपिकारणं गौरवात् ॥

(शंका) पदसे व्यक्तिज्ञानका होनाही दुर्लभ है क्योंकि व्यक्तिज्ञानप्रयोजकीभूता शक्ति आपको पदमें स्वीकार नहीं है. (समाधान) यद्वा 'गो' आदि पदोंकी व्यक्तिमें भी शक्ति माननी उचित है । परन्तु व्यक्तिगत शक्ति स्वरूपहीसे वर्तमाना अर्थात् व्यक्तिबोधक गवादिपदोंमें स्वरूपहीसे विद्यमान हुइ व्यक्तिबोधका हेतु है किन्तु स्वयं ज्ञात होकर व्यक्तिबोधका हेतु नहीं है । और जातिविषयक शक्ति तो स्वयं ज्ञात होकर बोधका हेतु है । व्यक्तिअंश भानके लिये ज्ञात हुइ शक्तिको कारणता नहीं है । क्योंकि उभयत्र शक्ति ज्ञानको कारणता कल्पनेमें गौरव होता है ॥

जातिशक्तिमत्त्वज्ञानेसतिव्यक्तिशक्तिमत्त्वज्ञानं विना व्यक्तिधी विलंबाभावाच्च अतएवन्यायमतेप्यन्वयेशक्तिः स्वरूपसती तिसिद्धांतः ज्ञायमानशक्तिविषयत्वमेववाच्यत्वमितिजातिरेववाच्या ॥

और जातिशक्ति विषयक ज्ञानके होनेसे व्यक्तिशक्ति ज्ञानसे विनाभी व्यक्ति विषयक बुद्धिमें विलम्बभी नहींहोता । पदशक्तिज्ञानसे विनाही जिस पदार्थका ज्ञान होजावे उसकेलिये शक्तिकी कल्पना करनी अनुचितहै । इसीलिये नैयायि-

---

१ पदार्थज्ञानं, पदनिष्ठस्वानुकूलशक्तिपूर्वकं पदजन्यपदार्थज्ञानरूपकार्यत्वात्—इसरीतिसे अनुमेय है ।

कोंने अपने सिद्धान्तमें पदार्थोंके परस्पर अन्वयमें पदोंकी शक्ति स्वरूपभूताही मानीहै। ज्ञातहुई शक्तिके विषय होना अर्थात् ज्ञानके विषयहुई जो पदनिष्ठ वृत्ति तादृश वृत्तिबोध्य पदार्थका नाम 'वाच्य' है इसलिये पूर्वोक्त विचारसे प्रकृत्तिमें जाति ही 'वाच्य' है ॥

अथवाव्यक्तेर्लक्षणयावगमः यथानीलोघटइत्यत्रनीलशब्दस्य नीलगुणविशिष्टेलक्षणा तथाजातिवाचकस्यतद्विशिष्टेलक्षणा तदुक्तं'अनन्यलभ्योहिशब्दार्थः' इति एवंशक्योनिरूपितः ॥

अथवा व्यक्तिका भान लक्षणावृत्तिसे भी बनसकता है। जैसे 'नीलो घटः' इत्यादि स्थलमें 'नील' पदकी नीलगुणविशिष्ट घटमें नैयायिकोंने लक्षणा मानीहै वैसेही जातिवाचक 'गो' 'घटादि' पदोंकी जातिविशिष्टव्यक्तिमें लक्षणा बन सकतीहै। इसी वार्ताको मीमांसकोंनेभी कहाहै कि, अनन्यलभ्य अर्थात् लक्षणादि लभ्यअर्थसे भिन्न केवल पदशक्तिगम्य का नाम पदार्थ है। इति ॥ एवं पूर्वोक्त प्रकारसे शक्यपदार्थका निरूपणकिया ॥

अथलक्ष्यपदार्थोनिरूप्यते ॥

अब 'अथ' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार लक्ष्यपदार्थके निरूपण की प्रतिज्ञा करतेहैं ॥

तत्रलक्षणाविषयोलक्ष्यः लक्षणाचद्विविधा केवललक्षणालक्षित लक्षणाचेति।तत्रशक्यसाक्षात्संबन्धःकेवललक्षणा यथागंगायां घोषइत्यत्रप्रवाहसाक्षात्संबंधिनितीरेगंगापदस्यकेवललक्षणा॥ यत्रशक्यपरम्परासंबंधेनार्थान्तरप्रतीतिस्तत्रलक्षितलक्षणा यथाद्विरेफपदस्यरेफद्वयेशक्तस्य भ्रमरपदघटितपरम्परासंबन्धेनमधुकरेवृत्तिः गौण्यपिलक्षितलक्षणैव यथासिंहोमाणवक इत्यत्रसिंहशब्दवाच्यसंबंधिक्रौर्य्यादितत्संबन्धेन माणवकस्यप्रतीतेः ॥

यहां लक्षणाके विषयका नाम 'लक्ष्य' है। लक्षणानाम शक्यके सम्बन्ध का है। वह लक्षणा 'केवललक्षणा' तथा 'लक्षितलक्षणा' के भेदसे दो प्रकारकी है। उनमें शक्यके साक्षात्सम्बन्ध का नाम 'केवललक्षणा' है। जैसे (गंगायां घोषः)

१ गङ्गाके तीरपर गोपालकोंका (घोष) ग्रामहै, यह इसका अर्थ है ॥

इत्यादि स्थलमें गंगापदवाच्य प्रवाहके साथ साक्षात् सम्बन्धवाले तीरमें गंगापदकी केवल लक्षणा है। एवं जिस स्थलमें शक्य के साथ 'परम्परा' अर्थात् 'स्वशक्यघटितभ्रमरपदप्रतिपाद्यत्वादि' रूप परम्परा सम्बन्धसे अर्थआन्तरकी प्रतीति होतीहै वहां 'लक्षितलक्षणा' है. जैसे 'द्विरेफ' पद दोरेफों में शक्त है उसीकी भ्रमरपद्घटित परम्परा सम्बन्धसे मधुकरमें 'लक्षितलक्षणा' वृत्ति है। अलंकारशास्त्रके कर्ता लोगोंने पदकी एक गौणी वृत्ति भी मानी है परन्तु सिद्धान्तमें वह भी लक्षितलक्षणा स्वरूपही है.जैसे'सिंहो माणवकः'इत्यादि स्थलमें सिंहशब्दवाच्यके सम्बंधि शौर्य्य क्रौर्य्य आदि धर्म्म हैं तादृश शौर्य्यक्रौर्य्यादि धर्म्म सम्बन्धेन माणवक की प्रतीति लक्षितलक्षणा वृत्तिहीसे है। यहां 'स्ववाच्यार्थसम्बधि सम्बन्धाश्रयत्व' रूप परंपरासम्बन्धसे लक्षितलक्षणा लक्षित अर्थ का भान होता है॥

प्रकारान्तरेणलक्षणात्रिविधा जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा जहदजहल्लक्षणाचेति। तत्रशक्यमनन्तर्भाव्ययत्रार्थान्तरप्रतीतिस्तत्र जहल्लक्षणा यथाविषंभुंक्ष्वेत्यत्रस्वार्थंविहायशत्रुगृहेभोजननिवृत्तिर्लक्ष्यते यत्रशक्यार्थमंतर्भाव्यैवार्थांतरप्रतीतिस्तत्राजहल्लक्षणा यथा—शुक्लोघट इत्यत्रहिशुक्लशब्दः स्वार्थशुक्लगुणमन्तर्भाव्यैवतद्वतिद्रव्येलक्षणयावर्तते यत्रहिविशिष्टवाचकःशब्दः एकदेशंविहायएकदेशेवर्तते तत्रजहदजहल्लक्षणा यथासोयंदेवदत्त इति अत्रहिपदद्वयवाच्ययोर्विशिष्टयोरैक्यानुपपत्त्यापदद्वयस्यविशेष्यमात्रपरत्वम्॥

एवं जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, तथा जहदजहल्लक्षणाके भेद से केवललक्षणा फिर तीन प्रकार की है। जिस स्थल में शक्यार्थ को बीचमें न लेकर अर्थान्तर की उपस्थिति हो वहां जहल्लक्षणा है. जैसे किसीने अपने मित्र को उसके भोजनार्थ शत्रुगृहगमनकालमें कहा कि 'विषं भुंक्ष्व' अर्थात् 'विष भक्षण करो' तो यहां वाक्यार्थ विषभक्षण को छोड़कर शत्रुके गृहमें भोजनकी। निवृत्ति लक्षित होती है। अर्थात् कहनेवालेने इस तात्पर्य से कहा कि हे मित्र! यह तुम्हारा शत्रु है इसीलिये तुम इसके भोजन मत्त करो १। एवं जहां शक्यार्थ

१ स्वपदसे द्विरेफपद का ग्रहण है।

को बीचमें लेकर अर्थान्तरकी उपस्थिति हो वहां अजहल्लक्षणा है. जैसे 'शुक्लो घटः' इस स्थलमें शुक्लशब्द अपने शुक्लगुणरूप अर्थ को बीचमें लेकर ही शुक्लगुणवाले घटरूप द्रव्य का लक्षणाद्वारा बोधक है २ । ऐसे ही जहां विशिष्टवाचक शब्द, अपने अर्थके एक देश को त्याग कर एक देशमें प्रवृत्त होता है वहां जहदजहल्लक्षणा है जैसे 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि स्थलमें 'सः' 'अयं' इन दोनों पदोंके वाच्य जो तत् देशकालादिविशिष्ट तथा एत देशकालादिविशिष्ट देवदत्त, इन विशिष्ट द्वयका ऐक्य तो सर्वथा अनुपपन्न है इसलिये उक्त पदद्वयकी 'देवदत्त' रूप विशेष्य मात्रमें लक्षणा है ३ ।

यथावातत्त्वमसीत्यादौतत्पदवाच्यस्य सर्वज्ञत्वादिविशिष्टस्य त्वंपदवाच्येनान्तःकरणविशिष्टेनैक्यायोगादैक्यसिद्धचर्थंस्वरूपेलक्षणेति सांप्रदायिकाः ॥

अथवा जैसे 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यस्थल में 'तत्' पद का वाच्य सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट परमेश्वर है और 'त्वं' पद का वाच्य अन्तःकरणविशिष्ट जीव है एवं 'तत्' पदवाच्यकी 'त्वं' पदवाच्यके साथ एकता अयुक्त है उस ऐक्यसिद्धिके लिये सांप्रदायिक लोगोंने उभयपदकी केवल स्वरूपमात्रमें अर्थात् सर्वज्ञता अल्पज्ञतादिरहित शुद्ध चिन्मात्रमें लक्षणा अंगीकार करी है ॥

वयन्तुब्रूमःसोयंदेवदत्तःतत्त्वमसीत्यादौ विशिष्टवाचकपदानामेकदेशपरत्वेपि नलक्षणा शक्त्युपस्थितयोर्विशिष्टयोरभेदान्वयानुपपत्तौविशेष्ययोः शक्त्युपस्थितयोरेवाभेदान्वयाविरोधात्॥यथाघटोऽनित्य इत्यत्रघटपदवाच्यैकदेशघटत्वस्यायोग्यत्वेपियोग्यघटव्यक्त्यासहानित्यत्वान्वयः यत्रपदार्थैकदेशस्यविशेषणतयोपस्थितिःतत्रैवस्वातंत्र्येणोपस्थितये लक्षणाभ्युपगमःयथाघटोनित्यइत्यत्रघटपदाद्घटत्वस्य शक्त्यास्वातंत्रेणानुपस्थित्याताद‍ृशोपस्थित्यर्थंघटपदस्यघटत्वेलक्षणा॥

और हम तो यह कहते हैं कि 'सोऽयं देवदत्तः' 'तत्त्वमसि' इत्यादि स्थलोंमें विशिष्टवाचक पदों को एक देशपरत्व होनेसे भी लक्षणा मानने की कुछ आवश्यकता नहीं है । क्योंकि शक्तिवृत्तिसे उपस्थित हुए विशिष्टोंका जब अभेदान्वय अर्थात् अभेद नहीं बन सकेगा तो शक्तिवृत्तिहीसे उपस्थित हुए विशेष्य भागोंमें

अभेदान्वयबोध का स्वयं पर्य्यवसान होगा जैसे ' घटोऽनित्यः ' इत्यादि स्थलमें घटपदके वाच्यका एक देश जो घटत्व, उसको अनित्यपदार्थ के अन्वयके अयोग्य होनेसे भी अन्वयके योग्य जो घट व्यक्ति उस घटव्यक्ति के साथ अनित्यत्व पदार्थका स्वयं अन्वय होता है । इसलिये ऐसे २ स्थलोंमें लक्षणा मानने की कुछ आवश्यकता नहीं है । किन्तु जहां पदार्थके एक देशकी विशेषणरूपसे उपस्थिति हुई है वहांही स्वतन्त्ररूपसे उपस्थितिके लिये लक्षणावृत्तिका स्वीकार है । जैसे 'घटो नित्यः' इत्यादि स्थलमें केवल घटपदसे शक्तिवृत्तिद्वारा स्वतन्त्र रूपसे 'घटत्व' धर्म्म की उपस्थिति न होनेसे तादृश उपस्थितिके लिये घटपद की घटत्वमें लक्षणा माननी उचित है ।

एवमेवतत्त्वमसीत्यादिवाक्येपिनलक्षणा शक्त्यास्वातंत्र्येणोपस्थितयोस्तत्त्वंपदार्थयोरभेदान्वयेबाधकाभावात् अन्यथा गेहे घटः घटेरूपं घटमानयेत्यादौघटत्वगेहत्वादेरभिमतान्वयबोधायोग्यतया तत्रापिघटादिपदानांविशेष्यमात्रपरत्वंलक्षणयैवस्यात् । तस्मात्तत्त्वमसीत्यादिवाक्येषुआचार्याणांलक्षणोक्तिरभ्युपगमवादेनबोध्या॥

इसीही पूर्व कही रीतिसे ' तत्त्वमसि ' इत्यादि महावाक्यस्थलोंमें भी लक्षणा नहीं है; क्योंकि शक्तिवृत्तिसे स्वतन्त्ररूपसे उपस्थित हुए 'तत्त्वं' पदार्थों के अभेदान्वयबोधमें कोई बाधक नहीं है । अन्यथा यदि 'तत्त्वमसि' इत्यादि स्थलोंमें लक्षणाहीसे निर्वाह कहो तो 'गेहे घटः' 'घटे रूपं' 'घटमानय' इत्यादि वाक्योंमें 'घटत्व' 'गेहत्व' आदि धर्म्मोंमें अभिमत अन्वय बोधकी योग्यताके न होनेसे अर्थात् घटत्वादि धर्मोंमें आनयनादि क्रियाकी योग्यताके न होनेसे इत्यादि प्रयोगोंमें भी घटादिपदोंको केवल विशेष्य मात्र घटादिव्यक्तिपरता लक्षणाहीसे होनी चाहिये । परन्तु यह वार्ता किसी विद्वान्के अभिमत नहीं है । इसलिये 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यस्थलमें भी लक्षणा माननेका कुछ प्रयोजन नहीं है। एवं प्राचीन आचार्य्योंने जो 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंमें लक्षणा मानीहै। वह मन्तव्य उनका केवल 'अभ्युपगमवाद' मात्रसे जानना उचित है ॥

जहदजहल्लक्षणोदाहरणंतु काकेभ्योदधिरक्ष्यतामित्याद्येव तत्र शक्यकाकपरित्यागेनाशक्यदध्युपघातकत्त्वपुरस्कारेणकाके

१ वादिबलनिरीक्षणार्थमनिष्टस्वीकरणमभ्युपगमवादः ।

ऽकाकेपिकाकशब्दस्यप्रवृत्तेः लक्षणाबीजंतुतात्पर्य्यानुपपत्तिरेव नत्वन्वयानुपपत्तिः।काकेभ्योदधिरक्ष्यतामित्यत्रान्वयानुपपत्तेरभावात् गंगायांघोषइत्यादौतात्पर्य्यानुपपत्तेरपिसंभवात् ॥

एवं जहदजहल्लक्षणाका उदाहरण स्थल " काकेभ्यो दधिरक्ष्य ताम् " इत्यादि जानने योग्यहै । यहां शक्यार्थ जो काक, उसके त्यागपूर्वक अशक्याथ जो दधिके विघातक बिड़ालादि तादृश बिड़ालादिनिष्ठ विघातकत्वधर्म्म पुरस्कारेण काक तथा अकाक सभीमें काकशब्दकी प्रवृत्ति है । उक्त लक्षणा मात्रका बीज केवल तात्पर्य्यकी अनुपपात्तिही मात्रहै । किन्तु अन्वयअनुपपत्तिरूप नहीं है । क्योंकि ' काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् ' इत्यादि स्थलमें अन्वयअनुपपात्ति नहींहै । और तात्पर्य्यअनुपपत्ति तो लक्षणामात्र स्थलमें सर्वत्र विद्यमान है । अर्थात् ' गंगायां घोषः ' इत्यादि स्थलमें यद्यपि अन्वयानुपपत्तिभीहै क्योंकि गंगापद शक्य प्रवाहमें घोषपदार्थका अन्वय असम्भव है तथापि यहां तात्पर्य्यकी अनुपपत्तिभी विद्यमान है. इसलिये लक्षणामात्रके लिये अनुगतकारणीभूता केवल तात्पर्यानुपपत्तिही बनसकतीहै ॥

लक्षणाचनपदमात्रवृत्तिः किन्तुवाक्यवृत्तिरपि यथागंभीरायांनद्यांघोषइत्यत्रगम्भीरायांनद्यामितिपदद्वयसमुदायस्य तीरे लक्षणा ॥

और नैयायिकोंकी तरह हमारे सिद्धान्तमें लक्षणा केवल पदमात्रहीकी वृत्ति नहीं है । किन्तु वाक्यवृत्तिभी है अर्थात् वाक्यभी लाक्षणिक होसकताहै जैसे ' गंभीरायां नद्यां घोषः' इत्यादि स्थलमें 'गम्भीरायां' 'नद्यां' इन समुदित दोनों पदोंकी गंगाके तीरमें लक्षणा है ॥

ननुवाक्यार्थस्याशक्यतयाकथंशक्यसंबंधरूपालक्षणा।उच्यते। शक्त्यायत्पदसंबंधेनज्ञाप्यतेतत्संबन्धोलक्षणा शक्तिज्ञाप्यश्चयथापदार्थः तथावाक्यार्थोपीति नकाचिदनुपपत्तिः । एवमर्थवादवाक्यानांप्रशंसारूपाणांप्राशस्त्येलक्षणा सोरोदीदित्यादिनिंदार्थवाक्यानांनिन्दितत्वेलक्षणा अर्थवादगतपदानांप्राशस्त्यादिलक्षणाभ्युपगमे एकेनपदेनलक्षणयातदुपस्थितिसंभवे पदांतरवैयर्थ्यंस्यात् एवंचविध्यपेक्षितप्राशस्त्यरूपपदार्थप्रत्याय

कतयाअर्थवादपदसमुदायस्यपदस्थानीयतयाविधिवाक्येनए कवाक्यत्वंभवतीत्यर्थवादपदानांपदैकवाक्यता ॥

(शंका) शक्तिवाला पदही होता है इसीसे उसके अर्थका नामही 'शक्य' है. एवं वाक्यार्थको अशक्य होनेसे वाक्यार्थसम्बन्धरूपा लक्षणा भी कैसे बन सकती है ? (समाधान) उच्यते । पदसे स्वनिष्ठ शक्तिद्वारा जो पदार्थ ज्ञापित होता है उस पदार्थके सन्बन्धहीका नाम लक्षणा है और शक्तिवृत्ति बोध्य जैसे पदका अर्थ है वैसेही वाक्यका अर्थ भी है इसलिये वाक्यकी लक्षणा मानने मेंभी कोई अनुपपत्ति नहीं है । एवं अर्थवादवाक्योंमें भी द्रव्यदेवतादिकी प्रशंसारूप 'वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता' इत्यादि अर्थवादवाक्योंकी द्रव्यदेवतादिके प्राशस्त्य में लक्षणा है और 'सोऽरोदीत्' इत्यादि निन्दारूप अर्थ वाद वाक्योंकी द्रव्यदेवतादि के निन्दनमें लक्षणा है।यहां अर्थवादवाक्योंमें यदि वाक्यान्तर्गत किसी एक पदकी प्राशस्त्यादिं अर्थमें लक्षणा मानें तो एकही पदकी लक्षणावृत्तिसें प्राशस्त्यादि रूप अर्थकी उपस्थिति होनेसे बाकी पदोंको व्यर्थता अवश्य होगी इस लिये अर्थवादस्थलमें भी वाक्यही की लक्षणा माननी उचित है । एवं पूर्वोक्त प्रकारसे अर्थवादवाक्योंको विधिके प्रति अपेक्षित जो प्राशस्त्य रूपपदार्थ, तादृश अर्थका ज्ञापक होनेसे तथा अर्थवादवाक्यके पदसमुदायको एक पदके स्थानापन्न होनेसे विधिवाक्यके साथ उसकी एकवाक्यता होती है । यही अर्थवाद पदोंकी पदैकवाक्यता है ॥

क्वतर्हि वाक्यैकवाक्यता यत्रप्रत्येकंभिन्नभिन्नसंसर्गप्रतिपादकयोर्वाक्ययोराकांक्षावशेनमहावाक्यार्थबोधकत्वं यथा "दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत" इत्यादिवाक्यानां "समिधोयजति" इत्यादिवाक्यानांच परस्परापेक्षितांगांगिबोधकवाक्यतयैकवाक्यता। तदुक्तंभट्टपादैः

"स्वार्थबोधेसमाप्तानामंगांगित्वा द्यपेक्षया ।
वाक्यानामेकवाक्यत्वंपुनः संहत्यजायते"—

इति । एवंद्विविधोपिपदार्थोनिरूपितः ॥

(शंका) तो फिर वाक्य एकवाक्यता कौन स्थलमें होती है ? (समाधान) जहां प्रत्येक भिन्न २ संसर्ग के प्रतिपादक वाक्यद्वयको परस्पर आकांक्षाके

वशसे महावाक्यार्थ बोधकता है वहां वाक्यैकवाक्यता है । जैसे 'दर्शपूर्णमास, नामक यागसे स्वर्गकी कामनावाला पुरुष यजन करे, इत्यादि अर्थवाले वाक्योंकी तथा 'समिधाओंसे अर्थात् पलाशादिकी छोटी लकड़ियोंसे यजन करे' इत्यादि अर्थवाले वाक्योंकी परस्पर अपेक्षित अंगअंगीभावके बोधनसे वाक्यैकवाक्यता है । इसी वार्ताको कुमारिल भट्टाचार्य्यनेभी कहा है कि, "पहले स्वार्थबोधमें पर्य्यवसानको प्राप्त हुए वाक्योंको आपसमें अंगअंगी भावकी अपेक्षासे फिर मिलकर अन्वित होना वाक्यैक वाक्यता है " इति ॥ एवं पूर्वोक्त प्रकारसे दोनों तरहका अर्थात् शक्य तथा लक्ष्य भेदसे दोनों तरहके पदार्थ का निरूपण किया ॥

तदुपस्थितिश्चासत्तिः साचशाब्दबोधेहेतुः, तथैवान्वयव्यतिरेकदर्शनात् । एवंमहावाक्यार्थबोधेऽवांतरवाक्यार्थबोधोहेतुःतथैवान्वयाद्यवधारणात् ॥

तदुपस्थिति अर्थात् पदजन्य जो पदार्थ का स्मरण उस स्मरणका नाम आसत्ति है । वह आसत्तिही अर्थात् पदजन्य पदार्थस्मरणही शाब्दबोधमें कारण है । क्योंकि अन्वयव्यतिरेकसे ऐसाही देखने में आता है अर्थात् परस्पर अन्वय के योग्य पदार्थोंकी उपस्थिति होनेसे शाब्दबोध होता है । उपस्थिति के न होनेसे नहीं होता ऐसाही अन्वयव्यतिरेकसे देखने में आता है । ऐसे ही महावाक्यार्थ बोधके प्रति अवान्तरवाक्यार्थ बोधको हेतुता है । क्योंकि यहांभी अन्वयव्यतिरेकसे ऐसाही निश्चय होता है । अर्थात् अवान्तर वाक्यार्थ बोधके होनेहीसे महावाक्यार्थबोध होता है न होनेसे नहीं होता अन्वयव्यतिरेक से ऐसाही देखने में आता है ॥

क्रमप्राप्तं तात्पर्य्यंनिरूप्यते ॥

अब ग्रन्थकार शाब्द बोध सामग्री क्रमसे प्राप्त तात्पर्य्यके निरूपण की प्रतिज्ञा करते हैं ॥

तत्रतत्प्रतीतीच्छयोच्चरितत्त्वंनतात्पर्य्यम् । अर्थज्ञानशून्येन पुरुषेणोच्चरितादेदादर्थप्रत्ययाभावप्रसंगात् । अयमध्यापको ऽव्युत्पन्नइतिविशेषदर्शनेन तत्रतात्पर्य्यभ्रमस्याप्यभावात् ।

---

(१) यहां दर्शपूर्णमास महायाग होनेसे अंगी है और समिधादि छोटे विकृतियाग होनेसे अंग कहे जाते हैं ।

नचेश्वरीयतात्पर्य्यज्ञानात् तत्रशाब्दबोधइतिवाच्यम्। ईश्वरानंगीकर्तुरपितद्वाक्यार्थप्रतिपत्तिदर्शनात्। उच्यते। तत्प्रतीतिजननयोग्यत्वंतात्पर्यम्॥

(तत्र) यहां निरूपणीय तात्पर्य्यके विचारमें 'तत्' किसी एक उद्दिष्ट वस्तुकी प्रतीतिकी इच्छासे उच्चारण करने का नाम तात्पर्य्य नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा होय तो अर्थज्ञान शून्य पुरुषके उच्चारण किये वेदसे अथज्ञान नहीं हुआ चाहिये और यदि कहो कि अर्थज्ञान शून्य पुरुषके उच्चारण किये वेदमेंभी उक्त तात्पर्य्य का भ्रम होसकता है तो सो भी ठीक नहीं 'यह वेदका अध्यापक अव्युत्पन्न अर्थात् अर्थ ज्ञानसे रहित है' इत्यादि विशेष दर्शनसे उस अर्थज्ञानशून्य अध्यापकमे तात्पर्य्यके भ्रमकी कल्पना भी नहीं कर सकते। अथात् विशेष ज्ञान स्थलमें भ्रम ज्ञान की योग्यताही नहीं रहती. (शंका) वेदवाक्यों से तो ईश्वरके तात्पर्य्यज्ञानको मानकरभी 'तत्र' अर्थज्ञानशून्य अध्यापक स्थलमें शाब्दबोध होसकता है (समाधान) जैन बौद्धादि जो लोग ईश्वरको नहीं मानते उनको भी तो अर्थज्ञानशून्य अध्यापकके उच्चारण से वाक्यार्थबोध देखने में आता है (शंका) तो फिर कैसा तात्पर्य्य आपको प्रकृतमें विवक्षित है (समाधान) उच्यते। तत्प्रतीति जननयोग्यता का नाम तात्पर्य्य है 'तत्' पदसे यहां प्रकृत पदार्थ मात्र का ग्रहण है॥

गेहेघट इतिवाक्यंगेहघटसंसर्गप्रतीतिजननयोग्यं,नतुपटसंसर्गप्रतीतिजननयोग्यमिति। तद्वाक्यंघटसंसर्गपरंनतुपटसंसर्गपरमित्युच्यते। ननुसैंधवमानय, इत्यादिवाक्यंयदालवणानयनप्रतीतीच्छयाप्रयुक्तं तदाऽश्वसंसर्गप्रतीतिजननेस्वरूपयोग्यतासत्वाल्लवणपरत्त्वज्ञानदशायामप्यश्वादिसंसर्गज्ञानापत्तिरिति चेन्न तदितरप्रतीतीच्छयानुच्चरितत्वस्यापितात्पर्य्यप्रतिविशेषणत्वात्। तथाचयद्वाक्यंयत्प्रतीतिजननस्वरूपयोग्यत्वेसतियदन्यप्रतीतीच्छयानोच्चरितंतद्वाक्यंतत्संसर्गपरमित्युच्यते॥

'गृह में घट है' यह वाक्य गृहघटसंसर्गविषयक प्रतीतिजननकी योग्यता रखता है किन्तु गृहपटसंसर्गविषयक प्रतीति जननकी योग्यता नहीं रखता। इसीलिये 'गेहे घटः' इत्याकारक वाक्य गृहघट संसर्गपरायण है किन्तु गृह-

पट संसर्गपरायण नहीं है ऐसा कह सकते हैं. (शंका) 'सैन्धवमानय' अर्थात् 'सैन्धवको लाओ' इत्यादिवाक्य जब भोजनादिकालमें लवणके आनयनकी प्रतीतिकी इच्छासे उच्चारण कियाहै । उसी कालमें उसको अश्वसंसर्गकी प्रतीतिके जननकी स्वरूपयोग्यता तो विद्यमान है । लवणपरत्व ज्ञानदशाहीमें अश्वादिके संसर्गकी प्रतीतिभी होनी चाहिये ? (समाधान) 'तदितरप्रतीति की इच्छासे अनुच्चरितत्व' को भी हम उक्त तात्पर्य्य का विशेषण मानतेहैं । अर्थात् 'तत्प्रतीति जननयोग्य होकर तद्इतर प्रतीतिकी इच्छासे अनुच्चरित' होनाही वाक्यमें तात्पर्य्य युक्तता है । एवं जो 'गेहेघटः' इत्यादि वाक्य (यत्) गृहघटसंसर्गविषयक प्रतीतिके जननकी स्वरूपयोग्यता वाला होकर (यत्) जिस गृहघटसंसर्गकी प्रतीतिसे (अन्य) गृहपटसंसर्गविषयक प्रतीतिकी इच्छासे नहीं उच्चारण किया है वह 'गेहेघटः' इत्यादि वाक्य, गृहघट संसर्ग विषयक बोधपरही कहाजाताहै- ऐसेही 'सैन्धवमानय' इत्यादि वाक्य अश्वप्रतीतिके जननकी योग्यतावाला होनेसे भी भोजनप्रकरणमें उच्चारणकिया हुआ लवणसे अन्य प्रतीतिकी इच्छासे अनुच्चरित होनेसे अश्वसंसर्गज्ञानजननके योग्य नहीं है ॥

शुकादिवाक्येऽव्युत्पन्नोच्चरितवेदवाक्यादौच तत् प्रतीतीच्छाया एवाभावेन तदन्यप्रतीतीच्छयोच्चरितत्वाभावेन लक्षणसत्वान्नाव्याप्तिः नचोभयप्रतीतीच्छयोच्चरितेऽव्याप्तिः तदन्यमात्रप्रतीतीच्छयाऽनुच्चरितत्त्वस्यविवक्षितत्त्वात् ॥

एवं शुकादिकों के उच्चारण किये वाक्यमें तथा अर्थज्ञानशून्य अध्यापकके उच्चारण किये वेदादि वाक्यमें तत्प्रतीति किसीएकभी वस्तुविषयक प्रतीतिकी इच्छाहीके अभावसे अर्थात् न होनेसे सुतरां तद्अन्य प्रतीतिकी इच्छासे उच्चरितत्वका अभाव होनेसे लक्षण विद्यमानहै । अव्याप्ति नहीं है । भाव यह कि जहां वाक्य उच्चारण कर्ताने किसीभी वाक्यार्थके बोधकी इच्छासे उच्चारण नहीं कियाहै किन्तु स्वाभाविक कियाहै वहां 'तदन्यप्रतीति इच्छासे अनुच्चरितत्त्व' रूप विशेषणभी विद्यमानहै इसलिये अव्याप्ति नहीं है । (शंका) जहां लवण तथा अश्व दोनोंकी प्रतीति की इच्छासे 'सैन्धवमानय' इत्यादि वाक्यका उच्चारण। कियाहै वहां उक्त तात्पर्य्यलक्षणकी अव्याप्ति होगी क्योंकि ऐसे स्थलमें लवणस अन्य प्रतीतिकी इच्छासे अनुच्चरितत्त्वका अभाव है. (समाधान) ऐसे स्थलमें 'तत्' पदसे लवण तथा अश्व दोनोंका ग्रहणहै । एवं उभय प्रतीतिकी इच्छासे उच्चरित होनेसे तद् अन्यमात्र प्रतीतिकी इच्छासे अनुच्चरितत्त्वके विवक्षित होनेसे

अव्याप्ति नहीं है। भाव यह कि ऐसे स्थलमें उभय प्रतीतिकी इच्छासे उच्चरितत्त्वही तदन्यमात्र प्रतीतिकी इच्छासे अनुच्चरितत्त्व है ॥ २८ ॥

उक्तप्रतीतिमात्रजननयोग्यतायाश्चावच्छेदिकाशक्तिः । अस्माकंतुमतेसर्वत्रकारणतायाःशक्तेरेवावच्छेदकत्वान्नकोपिदोषः । एवंतात्पर्य्यस्यतत्प्रतीतिजनकत्वरूपस्यशाब्दज्ञानजनकत्वेसिद्धे चतुर्थवर्णकेतात्पर्य्यस्यशाब्दज्ञानहेतुत्त्वनिराकरण वाक्यंतत्प्रतीतीच्छयोच्चरितत्वरूपतात्पर्य्यनिराकरणपरम् । अन्यथातात्पर्य्यनिश्चयफलकवेदांतविचारवैयर्थ्यप्रसंगात् ॥

(शंका) उक्त शाब्दप्रतीति जननयोग्यताका अवच्छेदक कौनहै? यदि 'तत्प्रतीतीच्छया उच्चरितत्त्व, रूपधर्मको कहो तो पूर्वोक्त रीतिसे अव्युत्पन्न पुरुषके उच्चारणकिये वेदादिवाक्यों में फिर अव्याप्ति होगी. (समाधान) पूर्वोक्त प्रतीति मात्र जननकी योग्यताकी अवच्छेदक हमारे मतमें पदादिनिष्ठ 'शक्ति' है। हमारे मत में सर्वत्र कारणताकी अवच्छेदक तत्तत्कारणनिष्ठ शक्ति ही को मानाहै । इस लिये पूर्वोक्त अव्याप्ति आदि दोष नहीं हैं, (शंका) आपके मतमें यदि तात्पर्य्य ज्ञानको भी शाब्दबोधके प्रति हेतुताहै तो आपके मन्तव्यका तात्पर्य्य निरासपरक विवरणाचार्य्य वाक्यके साथ विरोध होगा? (समाधान) एवं विचारसे जब 'तत्प्रतीतिजनकत्व' रूप तात्पर्य्यको शाब्दबोध जनकता सिद्धहुई तो चतुर्थ वर्णकमें तात्पर्य्यको शाब्दबोधकी हेतुताके निराकरण पर वाक्यको 'तत्प्रतीति इच्छया उच्चरितत्त्व' रूप तात्पर्य्यके निराकरण पर जानना चाहिये . एवं परस्पर मन्तव्य में विरोध नहीं है। अन्यथा यदि तात्पर्य्य ज्ञानमात्र हेतुत्त्वका निरासक अर्थात् तात्पर्य्यज्ञानमात्रको शाब्दबोध जनकताका प्रतिषेधक चतुर्थवर्णक वाक्यको माने तो तात्पर्य्यनिश्चयरूप फलवाला वेदान्तविचारही व्यर्थ होना चाहिये ॥

केचित्तुशाब्दज्ञानत्वावच्छेदेननतात्पर्य्यज्ञानंहेतुरित्येवपरं चतुर्थवर्णकवाक्यं तात्पर्यसंशयविपर्य्ययोत्तरशाब्दज्ञानविशेषे चतात्पर्यज्ञानंहेतुरेव इदंवाक्यमेतत्परमुतान्यपरमितिसंशये

---

(१) शारीरक चतुर्थसूत्रके भाष्यकी पञ्चपादिका नामक व्याख्या पर जो विवरण रूपा व्याख्या उसके वाक्यके साथ विरोध होगा ।

तद्विपर्ययेच तदुत्तरवाक्यार्थविशेषनिश्चयस्यतात्पर्य्यनिश्चयं विनानुपपत्तेरित्याहुः ॥

कई एक विद्वान् लोग ऐसा मानते हैं कि 'तात्पर्य्यज्ञानको शाब्दज्ञानत्वावच्छेदेन अर्थात् यावत् शाब्द बुद्धि के प्रति हेतुता नहीं हैं, इस अर्थका बोधक उक्त विवरण वाक्य है। किन्तु जिस स्थलमें तात्पर्य्यज्ञानं का संशय होय या तात्पर्य्य ज्ञान का विपर्य्यय होय उस तात्पर्य्य के संशय या विपर्य्यय से उत्तर होनेवाले शाब्दबोध विशेषके प्रति स्थलविशेष में तात्पर्य्यज्ञान को हेतुता है क्योंकि जब श्रोता पुरुष को वक्ता का वाक्य श्रवण कर 'यह वाक्य इस अर्थके तात्पर्य्य से है या कि किसी अर्थान्तर के तात्पर्य्य से' इत्यादि संशय हुआ है अथवा 'अर्थान्तर हीकि तात्पय्य से है' इत्यादि विपरीत ज्ञान हुआ है तो एतादृश संशयविपर्य्यय से उत्तर होनेवाले वाक्यार्थनिश्चयकी प्रथम तात्पर्य्यनिश्चय से विना अनुपपत्ति अर्थात् असिद्धि है ॥

तच्चतात्पर्य्यंवेदेमीमांसापरिशोधितन्यायादेवावधार्य्यते लोकेतु प्रकरणादिना ॥ तत्रलौकिकवाक्यानांमानान्तरावगतार्थानुवादकत्वं वेदेतुवाक्यार्थस्यापूर्वतयानानुवादकत्वं तत्रलोके वेदेचकार्य्यपराणामिवसिद्धार्थानामपिप्रामाण्यं पुत्रस्तेजात इत्यादिषुसिद्धार्थेपिपदानांसामर्थ्यावधारणात् अतएववेदांतवाक्यानांब्रह्मणिप्रामाण्यं यथाचैतत्तथाविषयपरिच्छेदेवक्ष्यते ॥

तात्पर्य्य का वेदवचनों में तो पूर्वोत्तर मीमांसा से परिशोधित (न्याय) युक्ति मार्ग ही से निश्चय होता है और लौकिक वाक्यों में तो प्रकरणादि से भी हो सकता है अर्थात् जैसे भोजनप्रकरण में 'सैन्धवमानय' कहा तो उसका श्रोताको अवश्य लवण ही में तात्पर्य्य ग्रहण होता है। इनमें लौकिकवाक्योंके अर्थ तो प्रत्यक्षादि प्रमाणो से (अवगत) गृहीत है इसलिये लौकिकवाक्यों में केवल अनुवादकता मात्र है और वेदवाक्यों का वाक्यार्थ तो (अपूर्व) प्रमाणान्तरसे अगृहीत है इसलिये वेदवाक्यों में अनुवादकता नहीं है उनमें जैसे लौकिक तथा वैदिक वाक्य कार्य्यपरायण हुए अपूर्व अर्थके बोधक हैं वैसे ही सिद्धार्थक वाक्य भी अपूर्व अर्थके बोधक होनेसे प्रमाणीभूत हैं। क्योंकि 'हे चैत्र! पुत्र तेरे घर उत्पन्न हुआ है तथा कन्या तेरी गर्भवती हुई है' इत्यादि अर्थवाले वाक्यों को सिद्ध अर्थवाले होनेसे भी पदों का सिद्धार्थविषयक शाब्दबोधमें सामर्थ्य प्रतीत होता है (अत एव)

सिद्धार्थ में वाक्यों के प्रामाण्य होनेहीसे वेदान्तवाक्यों को भी अद्वितीय ब्रह्म में प्रामाण्य कह सकते हैं वेदान्तवाक्यों को जैसे अद्वितीय ब्रह्मबोधकता है उसका निरूपण हम आगे सप्तम विषयपरिच्छेद में कहेंगे ॥

तत्रवेदानांनित्यसर्वज्ञपरमेश्वरप्रणीतत्त्वेनप्रामाण्यमितिनैयायिकाः वेदानांनित्यत्वेननिरस्तसमस्तपुंदूषणतयाप्रामाण्यमित्यध्वरमीमांसकाः अस्माकंतुमतेवेदोनानित्यउत्पत्तिमत्वात् उत्पत्तिमत्वंच "अस्यमहतोभूतस्यानिःश्वसितमेतद्यदृग्वेद" इत्यादिश्रुतेः । नापिवेदानांत्रिक्षणावस्थायित्वं यएववेदो देवदत्तेनाधीतः सएववेदोमयाधीतः इत्यादिप्रत्यभिज्ञाविरोधात् अतएव गकारादिवर्णानामपिनक्षणिकत्वंसोयंगकार इति प्रत्यभिज्ञाविरोधात् ॥

उनमें वेदोंको अर्थात् वेदवचनोंको नैयायिक लोग नित्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर प्रणीत होनेसे प्रमाणीभूत मानते हैं । और मीमांसक लोग, वेदोंको अनादिसिद्ध नित्य मानते हैं तथा भ्रम प्रमादादि पुरुष दोषोंसे रहित होनेसे उनको प्रमाणीभूत मानते हैं । अर्थात् पुरुषके वचन प्रायः, भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, तथा इन्द्रियअपाटव, इन चारों दोषोंसे दूषित होते हैं परन्तु यह वार्ता वेद वचनोंमें नहींहै । क्योंकि वेद वचन मीमांसकों के सिद्धान्त से पौरुषेय नहीं हैं।और हमारे वेदान्तसिद्धान्तमें तो वेदनित्य नहीं है किन्तु उत्पत्तिवाला होनेसे अनित्य है। इसकी उत्पत्तिका निश्चय 'इस महान् सत्यरूप परमात्माके निश्वासोंकी तरह इस ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेदका प्रादुर्भाव है, इत्यादि अर्थवाले श्रुति वचनसे होता है । एवं अनित्य होनेसे भी नैयायिकोंकी तरह शब्दरूप वेदकी तीन क्षणमात्र स्थिति नहीं है । क्योंकि तीनक्षणस्थिति माननेका 'जो वेद देवदत्तने अध्ययन किया है उसीको मैं भी करताहूं' इत्यादि प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञानके साथ विरोध है । अर्थात् इस प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञानसे वेदकी दीर्घकालतक स्थिति ज्ञात होती है । इसीलिये गकारादि वर्ण भी क्षणिक नहीं हैं । क्योंकि यहां भी 'यह वही गकार है' इत्यादि प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञानके साथ विरोध है ॥

तथाचवर्णपदवाक्यसमुदायस्यवेदस्यवियदादिवत्सृष्टिकालीनोत्पत्तिमत्त्वं प्रलयकालीनध्वंसप्रतियोगित्वंच नतुमध्येवर्णानामुत्पत्तिविनाशावनंतगकारकल्पनेगौरवात् अनुच्चारण

दशायांवर्णानामनभिव्यक्तिस्तदुच्चारणरूपव्यंजकाभावान्नवि रुध्यते अन्धकारस्थलेघटानुपलंभवदुत्पन्नोगकारइत्यादि प्रत्ययः सोयंगकार इतिप्रत्यभिज्ञाविरोधादप्रमाणं वर्णाभिव्यक्तिजनकध्वनिगतोत्पत्तिनिरूपितपरम्परासम्बंधविषयत्वेनप्रमाणंवा तस्मान्नवेदानांक्षणिकत्वम् ॥

एवं वर्ण पद वाक्योंके समुदायरूप वेदकी सृष्टिके आद्यकालमें आकाशादिकी तरह उत्पत्ति होती है तथा प्रलयकालमें ध्वंस होता है । किन्तु सृष्टिके मध्य कालमें वर्णोंका उत्पत्ति विनाश नहीं होता क्योंकि यदि मध्यमें उत्पत्ति विनाश मानें तो गकारादि वर्णोंको उत्पत्ति और विनाशके अनुरोधसे अनन्त मानना होगा एवं प्रत्येक वर्णके अनन्त कल्पना करने में महागौरव है और वर्णों के अनुच्चारण अर्थात् उच्चारणाभावकाल में जो वर्णों में (अनभिव्यक्ति) अस्फुटपना वह भी उच्चारणरूप व्यंजकके अभावसे विरोधकर नहीं है जैसे अन्धकार में घट का उपलाभ नहीं होता वैसेही अनुच्चारणकाल में वर्णके अनभिव्यक्त होनेसे भी विरोध नहीं है । अर्थात् उच्चारणरूप व्यंजक के अभावसे अनभिव्यक्त दशा को प्राप्त हुये दीर्घकालस्थायी गकारादि वर्ण, समय २ पर उच्चारण रूप व्यंजकसे अभिव्यक्त होते हैं इसलिये कुछ दोष नहीं है और 'गकार उत्पन्न हुआ है' इत्यादि प्रत्यय को 'यह वही गकार है' इत्यादि प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञानके साथ विरोध होनेसे अप्रमाणता है। अथवा वर्णोंकी अभिव्यक्ति का जनक जो ध्वनि, तादृश ध्वनिगत जो उत्पत्ति तादृश उत्पत्ति का निरूपित जो 'उत्पत्त्याश्रय ध्वन्यभिव्यंग्यत्व' रूप परंपरा सम्बन्ध, तादृश सम्बन्धके विषय होनेसे ' उत्पन्नो कारः ' इत्यादि प्रत्ययों को भी प्रमाणता है । इसलिये वेदों को क्षणकत्व नहीं है ॥

ननुक्षणिकत्त्वाभावेपिवियदादिप्रपंचवदुत्पत्तिमत्त्वेन परमेश्वरकर्तृकतयापौरुषेयत्वादपौरुषेयत्वंच वेदानामिति तवसिद्धांतोभज्येतेतिचेन्न नहि तावत्पुरुषेणोच्चार्य्यमाणत्वंपौरुषेयत्वंगुरुमतेपिअध्यापकपरंपरयापौरुषेयत्वापत्तेः नापिपुरुषाधीनोत्पत्तिकत्वंपौरुषेयत्वम् नैयायिकाभिमतपौरुषेयत्वानुमानेऽस्मदादिनासिद्धसाधनत्वापत्तेः किन्तुसजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम् ॥

(शंका) आपके पूर्वोक्त मन्तव्यानुसार वेदवाक्यों में क्षणकत्व मतरहो परन्तु आकाशादि प्रपञ्चकी तरह वेदवाक्योंको भी उत्पत्तिवाले होनेसे तथा परमेश्वररूप कर्तासे रचित होनेसे उनमें 'पौरुषेयत्व रूपधर्म तो अवश्य रहेगा एवं वेदोंको अपौरुषेयत्व कहनेवाले आपके सिद्धान्त की हानि होगी (समाधान) यहां पुरुषके उच्चारण किये हुए का नाम पौरुषेयत्व नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होय तो गुरु प्रभाकरके मतमें भी अध्यापक परम्परासे वेदको पौरुषेयत्व होना चाहिये। एवं पुरुषके अधीन उत्पत्तिवालेका नाम भी 'पौरुषेयत्व' नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा होय तो नैयायिक लोगोंके अभिमत जो 'वेदाः पौरुषेया वाक्यत्वात् भारतादिवत् ' इत्यादि पौरुषेयत्वका अनुमापक अनुमान, उस अनुमानसे हमारे वेदान्तसिद्धान्तसे सिद्धसाधनरूप दोष होना चाहिये। इस लिये 'स्वसजातीय उच्चारण की ना अपेक्षा करकेजो उच्चारणका विषय हो उसका नाम पौरुषेय है। ऐसे भारतादि हैं। और जो स्वसजातीय उच्चारणकी अपेक्षा करके उच्चारणका विषय हो उसका नाम अपौरुषेय है। ऐसे वेद हैं॥

तथाचसर्गाद्यकालेपरमेश्वरःपूर्वसर्गसिद्धवेदानुपूर्वीसमानानुपूर्वीकंवेदंविरचितवान् नतुतद्विजातीयंवेदमिति नसजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वंपौरुषेयत्वंवेदानांभारतादीनांतुसजातीयोच्चारणमनपेक्ष्यैवोच्चारणमितितेषांपौरुषेयत्वम्। एवंपौरुषेयापौरुषेयभेदेनागमोद्विधानिरूपितः॥

॥ इतिवेदान्तपरिभाषायामागमपरिच्छेदः ॥ ४ ॥

एवं सर्गके आद्यकाल में परमेश्वरने इस सर्गसे पूर्वसर्गमें होनेवाली जो वेदोंकी आनुपूर्वी उस आनुपूर्वी के समान आनुपूर्वीवाले वेदोंका निर्माण किया किन्तु पूर्वसिद्ध आनुपूर्वी से विलक्षण नहीं किया, एवं सजातीय उच्चारणकी न अपेक्षा करके उच्चारणकी विषयता वेदों में नहीं है इस लिये इनमें पौरुषेयत्व रूप धर्म भी नहीं है किन्तु अपौरुषेय हैं। और महाभारतादिकों को तो स्वसजातीय उच्चारणकी ना अपेक्षा करकेही उच्चारणकी विषयताहै अर्थात् पूर्वसर्ग में भारतादि इतिहासोंकी आनुपूर्वी कुछ औरथी, और वर्तमान सर्गकी आनुपूर्वी कुछ औरहै। इसलिये भारतादि इतिहासोंमें पौरुषेयत्वहै इसरीतिसे पौरुषेय तथा अपौरुषेयभेदसे आगमप्रमाण दोतरहका निरूपण किया॥

इति श्रीनिर्मलपण्डितस्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषाविभूषितवेदान्त परिभाषाप्रकाशे आगमपरिच्छेदः ॥ ४ ॥

अथ अर्थापत्तिपरिच्छेदः ५.

अर्थादापादनं यस्य कुर्वन्तः कृतबुद्धयः ॥
नापदां पदमीक्षन्ते मान्योऽसौ नानको गुरुः ॥ १ ॥

इदानीमर्थापत्तिर्निरूप्यते ॥

अब अवसरसङ्गति के अभिप्रायसे ग्रन्थकार 'इदानीं' इत्यादि ग्रन्थसे अर्थापत्ति प्रमाणके निरूपणकी प्रतिज्ञा करतेहैं ॥

तत्रोपपाद्यज्ञानेनोपपादककल्पनमर्थापत्तिः । तत्रोपपाद्यज्ञानं करणं उपपादकज्ञानंफलं ॥ येनविनायदनुपपन्नंतत्तत्रोपपाद्यं यस्याभावेयस्यानुपपत्तिस्तत्तत्रोपपादकंयथारात्रिभोजनेनविनादिवाऽभुंजानस्यपीनत्वमनुपपन्नमिति ताद्दशपीनत्वमुपपाद्यं यथावारात्रिभोजनस्याभावेताद्दशपीनत्वस्यानुपपत्तिरिति रात्रिभोजनमुपपादकम् ॥

यहां उपपाद्यके ज्ञानसे उपपादककी कल्पना करनेका नाम अर्थापत्ति है । इन दोनों ज्ञानों में से उपपाद्यका ज्ञान करणहै । तथा उपपादकका ज्ञानफलहै । अर्थात् प्रथम ज्ञानका नाम अर्थापत्तिप्रमाण है द्वितीय ज्ञानका नाम अर्थापत्तिप्रमा है । जिससे विना जो अनुपपन्न हो अर्थात् जिसके सिवा जिसके होनेका सम्भव नहो वह वहां 'उपपाद्य' कहाजाताहै। जैसे रात्री भोजनसे विना दिन को ना भोजन करनेवाले देवदत्तमें पीनता अर्थात् स्थूलता अनुपपन्नहै । इसलिये पीनतारूप धर्मको 'उपपाद्य' कहसकते हैं । एवं जिसके अभावसे जिसकी अनुपपत्ति हो अर्थात् जिसके न होनेसे जिसके होनेकी सम्भावना कभी नहो वह वहां 'उपपादक' कहा जाताहै । जैसे रात्रिभोजनसे बिना उक्तस्थूलताकी सम्भावना नहीं होसकती इस लिये रात्रिभोजनको 'उपपादक' कहसकते हैं ॥

रात्रिभोजनकल्पनारूपायांप्रमितावर्थस्यापत्तिःकल्पनेति षष्ठीसमासेनअर्थापत्तिशब्दोवर्तते कल्पनाकरणपीनत्वादिज्ञाने त्वर्थस्यापत्तिः कल्पनायस्मादितिबहुव्रीहिसमासेनवर्ततेइतिफलकरणयोरुभयोस्तत्पदप्रयोगः ॥

एवं रात्रीभोजन कल्पनारूप प्रमितिमें अर्थापत्तिशब्दकी प्रवृत्ति 'अर्थस्य आपत्तिः' अर्थात् कल्पना 'अर्थापत्तिः' इत्येवं षष्ठीतत्पुरुष समाससे जाननी उचितहै। और उक्त कल्पनाके करणीभूत 'पीनत्वादि' ज्ञानमें अर्थापत्तिशब्दकी प्रवृत्ति 'अर्थस्य आपत्ति–कल्पना यस्मात्' 'तद् अर्थापत्तिप्रमाणं' इत्यादि बहुव्रीहि समास से जानने योग्य है। इस रीतिसे प्रमारूपफल तथा उक्त प्रमाके करण इन दोनोंहीमें 'अर्थापत्ति' पदका प्रयोग हो सकता है ॥ ३ ॥

साचार्थापत्तिर्द्विविधादृष्टार्थापत्तिःश्रुतार्थापत्तिश्चेति।तत्रदृष्टार्थापत्तिर्यथाइदंरजतमितिपुरोवर्तिनिप्रतिपन्नस्यरजतस्यनेदंरजतमितितत्रैवनिषिध्यमानत्वंसत्यत्वेऽनुपपन्नमितिरजतस्यसद्भिन्नत्वंसत्यत्वात्यंताभाववत्त्वंवामिथ्यात्वंकल्पयतीति श्रुतार्थापत्तिर्यथा यत्रश्रूयमाणवाक्यस्यस्वार्थानुपपत्तिमुखेनार्थांतरकल्पनं यथा तरति शोकमात्मविदित्यत्रश्रुतस्यशोकशब्दवाच्यबंधजातस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वस्याऽन्यथाऽनुपपत्त्या बंधस्य मिथ्यात्वंकल्प्यते ॥

वह अर्थापत्ति प्रमा दोप्रकार की है। एक दृष्ट अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों से अपरोक्ष किये अर्थ की अनुपपत्ति से (आपत्ति) उपपादक अर्थ की कल्पनारूप दृष्टार्थापत्ति है। और दूसरी श्रुत–अर्थात् श्रवण किये अर्थकी अनुपपत्तिसे (आपत्ति) उपपादक अर्थ की कल्पनारूपा श्रुतअर्थापत्ति है। उनमें दृष्टार्थापत्ति तो जैसे 'इदं रजतम्' इत्याकारक प्रतीतिसे अग्रदेशावच्छेदेन प्रतीत हुए शुक्ति में रजत का 'न इदं रजतम्' इत्याकारक प्रतीतिसे वहां ही निषेध प्रतीत होता है। वह निषेध रजत के सत्य होने से तो बन नहीं सकता। इसलिये वह निषेध, प्रतीयमान रजत के सद्भिन्न स्वरूप होने की अथवा सत्यत्वात्यन्ताभाव वाले मिथ्यात्वस्वरूप होने की कल्पना करवाता है। इति ॥ जहां श्रवण किये वाक्य के स्वार्थ की अनुपपत्ति होनेसे अर्थान्तर की कल्पना हो वहां श्रुतार्थापत्ति है। जैसे 'तरतिशोकमात्मवित्' अर्थात् आत्मज्ञानी शोकसागर को तर जाता है इस श्रुतिमें श्रवण किये शोकशब्द वाच्यबन्ध जातका आत्मज्ञान से निवृत्त होना अन्यथा अनुपपन्न हुआ उक्त बन्ध के मिथ्यात्व की कल्पना करवाता है। अर्थात् यदि बन्ध मिथ्या न हो तो आत्मज्ञान से उसकी निवृत्ति का उपदेश भी नहीं श्रवण होना चाहिये ॥

यथावा जीवीदेवदत्तोगृहेनेतिवाक्यश्रवणानंतरं जीविनोगृहासत्त्वं बहिःसत्वंकल्पयति श्रुतार्थापत्तिश्चद्विविधा अभिधानानुपपत्ति रभिहितानुपपतिश्च तत्रयत्रवाक्यैकदेशश्रवणेऽन्वयाभिधाना नुपपत्त्यान्वयाभिधानोपयोगिपदांतरंकल्प्यतेतत्राभिधानानुप पत्तिःयथाद्वारमित्यत्रपिधेहीत्यध्याहारः यथावाविश्वजिता यजेतेत्यत्रस्वर्गकामपदाध्याहारः ननुद्वारमित्यादावन्वयाभि धानात्पूर्वमिदमन्वयाभिधानंपिधानोपस्थापकपदंविनाऽऽनुपप न्नमितिकथंज्ञानमितिचेन्नअभिधानपदेनकरणव्युत्पत्यातात्प र्यस्यविवक्षितत्वात् तथाचद्वारकर्मकपिधानक्रियासंसर्गपरत्वं पिधानोपस्थापकपदंविनानुपपन्नमितिज्ञानंतत्रापि संभाव्यते ॥

अथवा जीवित देवदत्त 'गृह में नहीं है' ऐसे वाक्य श्रवण के पश्चात्, जीवित देवदत्त का 'गृह में न होना' देवदत्त के बाह्यदेशमें होने की कल्पना करवात है। श्रुतअर्थापत्ति फिर दो प्रकार की है। एक 'अभिधानानुपपत्ति' है । औ- दूसरी 'अभिहितानुपपत्ति' है इनमें जहां वाक्य के एकदेशके श्रवणसे अन्वयके अभिधान की अनुपपत्ति होनेसे अन्वयअभिधान के उपयोगी पदान्तर की कल्पना कीजाय वहां अभिधानानुपपत्ति है। जैसे, 'द्वारं' इत्यादि श्रवणसे 'पिधे- हि' इत्यादि पदका अध्याहार करने से अन्वयार्थबोध होता है इसलिये 'पिधेहि' पदकी अध्याहाररूप कल्पना है। अथवा जैसे 'विश्वजित् नामक यागसे यजन करे, इसवाक्य में 'स्वर्गकाम' पदका अध्याहार है अर्थात् विश्वजित् नामक याग स यजन–स्वर्गकाम पुरुषसे विना अन्यथा अनुपपन्न हुआ वाक्यार्थबोध के लिये 'स्वर्गकाम' पदका अध्याहार करवाता है. (शंका) 'द्वारं' इत्यादि वाक्य के एक देशउच्चारणकालमें 'द्वारकर्मकं पिधानं' इत्याकारक अन्वय (अभिधान) कथन से प्रथम यह द्वारकर्मक अन्वयाभिधान, पिधानरूपा क्रियाके उपस्थापक 'दि- धेहि' पदसे विना अनुपपन्न अथात् नहीं बनसकता, ऐसा ज्ञान कैसे होता है? (समाधान) इस प्रकृत में अभिधानपदसे 'अभिधीयते अनेन इति अभिधानम्' इत्याकारक करणव्युत्पत्तिसे तात्पर्य्य का ग्रहण है । एवं 'द्वारकर्मक पिधान क्रिया संसर्गविषयक तात्पर्य्यपरता पिधानउपस्थापकपदसे विना अनुपपन्न है.

इत्याकारक ज्ञान की सम्भावना (तत्रापि) अन्वयाभिधान से पूर्वकालमें भी करसकते हैं ॥

अभिहितानुपपत्तिस्तुयत्रवाक्यावगतोर्थोनुपपन्नत्वेनज्ञातःस न्नर्थांतरंकल्पयतितत्रद्रष्टव्या । यथा "स्वर्गकामोज्योतिष्टोमेनयजेत" इत्यत्रस्वर्गसाधनत्वस्यक्षणिकतयासाक्षात्यागगतस्यानुपपत्त्या मध्यवर्त्यपूर्वंकल्प्यते । नचेयमर्थापत्तिरनुमानेन्तर्भवितुमर्हति । अन्वयव्याप्त्यज्ञानेनान्वयिन्यनंतर्भावात् व्यतिरेकिणश्चानुमानत्वंप्रागेवनिरस्तं अतएवार्थापत्तिस्थलेऽनुमिनोमीतिनानुव्यवसायः किंतुअनेनेदंकल्पयामीति ॥

एवं दूसरी अभिहितानुपपत्ति तो जहां वाक्यसे परिज्ञात हुआ अर्थ, स्वयं अनुपपन्नरूपसे ज्ञात होकर अर्थान्तरकी कल्पना करावे वहां जाननी चाहिये । जैसे 'स्वर्गकी कामनावाला पुरुष ज्योतिष्टोम नामक यागसे यजन करे' इत्यादि अर्थवाले विधिवाक्यों से स्वर्गसाधनता (क्षणिक) अल्पकालस्थायी ज्योतिष्टोम नामकयागमें जानी हुइ'अनुपपन्न'अर्थात् बन नहीं सकती. इसलिये मध्यमें अपूर्वकी कल्पना करवाती है एवं यह अर्थापत्तिरूप प्रमाण,अनुमान प्रमाणके अन्तर्भूत नहीं याहि सकता । क्योंकि अर्थापत्तिस्थलमें अन्वयव्याप्ति ज्ञानके न होनेसे इसका अन्वा अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं कह सकते । और व्यतिरेकि अनुमानका निराकरण तो हम पूर्वही करचुके हैं । इसीलिये अर्थापत्तिस्थलमें 'अनुमिनोमि' इत्याकारक अनुव्यवसाय नहीं होता । किन्तु "अनेन, पीनत्वादिना 'इदं' रात्रीभोजनं कल्पयामि" इत्याकारक अनुव्यवसाय होता है ॥

नन्वर्थापत्तिस्थलेइदमनेनविनाऽनुपपन्नमितिज्ञानंकरणमित्युक्तं तत्रकिमिदंतेनविनाऽनुपपन्नत्वंतदभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वमितिब्रूमः । एवमर्थापत्तेर्मानांतरत्वसिद्धौव्यतिरेकिनानुमानांतरं पृथिवीतरेभ्योभिद्यतेइत्यादौगंधवत्त्वमितरभेदंविनाऽनुपपन्नमित्यादिज्ञानस्यकरणत्वात् । अतएवानुव्यवसायः पृथिव्यामितरभेदंकल्पयामीति ॥

इतिवेदान्तपरिभाषायामर्थापत्तिपरिच्छेदः ॥ ५ ॥

(शंका) प्रमारूप अर्थापत्तिस्थलमें (यह इससे विना) अर्थात् 'पीनत्वादि रात्रि भोजनसे विना अनुपपन्न है' इत्याकारक ज्ञानको आपने करणता कही (तत्र) उस अर्थापत्तिप्रमामें 'यह इससे विना अनुपपन्नत्व' क्या है ?। (समाधान) तद्‌अभावका व्यापकीभूत जो अभाव तादृश अभावप्रतियोगित्वरूप है । अर्थात् रात्री भोजनके अभाव का व्यापकीभूत जो दिवाऽभुंजानत्वविशिष्ट पीनत्व का अभाव तादृश अभावप्रतियोगित्वरूप है । इसरीतिसे अर्थापत्ति को प्रमाणान्तरता सिद्ध हुई तो 'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्वात्' इत्यादि स्थल में व्यतिरेकि अनुमानआन्तर नहीं है किन्तु यहां गन्धवत्व, जलादि त्रयोदशके भेदसे विना अनुपपन्न है इत्यादि ज्ञान को करणता है एतादृश अनुपपत्तिज्ञानके करण होनेहीसे यहां 'पृथिव्यां इतरभेदं कल्पयामि' इत्याकारक अनुव्यवसाय ज्ञान भी होता है ।

इति श्रीनिर्मलपण्डितस्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषाविभूषित
वेदान्तपरिभाषाप्रकाशे अर्थापत्तिपरिच्छेदः ॥ ५ ॥

अथ अनुपलब्धिपरिच्छेदः ६.

मातृमेयसुखाभावाः कल्पनेन सुखावहाः ॥
यद्बोधेऽनुपलभ्यन्ते तं नौमि नानकं गुरुम् ॥ १ ॥

इदानींषष्ठंप्रमाणंनिरूप्यते ॥

अब 'इदानीं' इत्यादि ग्रन्थ से गन्थकार क्रमप्राप्त षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाणके निरूपणकी प्रतिज्ञा करते हैं ॥

ज्ञानकरणाजन्याभावानुभवासाधारणकारणमनुपलब्धिरूपं प्रमाणं अनुमानजन्यातींद्रियाभावानुभवहेतावनुमानादावति व्यांप्तिवारणायाजन्यांतंपदम्। अदृष्टादौसाधारणकारणेतिव्याप्तिवारणायासाधारणेतिपदम् । अभावस्मृत्यसाधारणहेतुसंस्कारेतिव्याप्तिवारणायानुभवेतिविशेषणम् । नचात्तीन्द्रियाभावानुमितिस्थलेप्यनुपलब्ध्यैवाभावोगृह्यतांविशेषाभावादि

तिवाच्यम् । धर्माधर्माद्यनुपलब्धिसत्वेपितदभावानिश्चयेन योग्यानुपलब्धेरेवाभावग्राहकत्वात् ॥ २ ॥

ज्ञानरूप करण से न उत्पन्न होने वाला जो अभावविषयक अनुभव, तादृश अनुभवके असाधारण कारण का नाम अनुपलब्धिरूप प्रमाण है । अनुमानादि से उत्पन्न होनेवाला जो धर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों के अभावविषयक अनुभव, तादृश अनुभवके हेतु अनुमानादिकों में अतिव्याप्ति वारण के लिये लक्षण में 'ज्ञानकरणाजन्य' इस पद का निवेश है । अर्थात् अभावविषयक अनुभव, ज्ञान रूप करणसे जन्य नहीं होना चाहिये और धर्माधर्म आदि अतीन्द्रिय पदार्थों के अभावविषयक अनुभव तो अनुमानज्ञानरूप करण से जन्य है; इसलिये उसमें अतिव्याप्ति नहीं है एवं अदृष्टादि साधारण कारणों में अतिव्याप्ति वारणके लिये उक्त लक्षण में 'असाधारण' पद का निवेश है ऐसे ही अभावविषयक स्मरणके असाधारण कारणीभूत संस्कारोंमें अतिव्याप्ति वारणके लिये उक्त लक्षणमें 'अनुभव' पदका निवेश है । (शंका) अतीन्द्रिय पदार्थोंके अभावकी अनुमिति स्थलमें भी यदि अनुपलब्धिप्रमाणही से अभावका ग्रहण मानलिया जाय तो दोष क्या है? अर्थात् कुछ विशेष नहीं है;इसलिये अनुपलब्धि ही से ग्रहण होना चाहिये.(समाधान) धर्माधर्मादि विषयक अनुपलब्धिके होनेसे भी 'तत्' धर्माधर्मादिके अभावका निश्चय नहीं हो सकता इसलिये योग्य अनुपलब्धि ही को अभाव ग्राहकता निश्चय हो सकती है ॥

ननुकेयंयोग्यानुपलब्धिः किंयोग्यस्यप्रतियोगिनोऽनुपलब्धिरुत योग्याधिकरणेप्रतियोग्यनुपलब्धिः। नाद्यः,स्तंभेपिशाचादिभेदस्याप्रत्यक्षत्वापत्तेः । नांत्यः,आत्मनिधर्माधर्म्माद्यभावस्यापिप्रत्यक्षतापत्तेरितिचेन्न योग्याचासावनुपलब्धिश्चेतिकर्मधारयाश्रयणात् । अनुपलब्धेर्योग्यताच तर्कितप्रतियोगिसत्त्वप्रसंजितप्रतियोगिकत्त्वं यस्याभावोगृह्यतेतस्ययःप्रतियोगी तस्यसत्त्वेनाधिकरणेतर्कितेन प्रसंजनयोग्यमापादनयोग्यं यत्प्रतियोग्युपलब्धिस्वरूपं यस्यानुपलंभस्य तदनुपलब्धेर्योग्यत्वमित्यर्थः ॥

(शंका) वह योग्य अनुपलब्धि क्या है? । क्या प्रत्यक्षके योग्य प्रतियोगिकी अनुपलब्धिका नाम योग्यानुपलब्धि है ? अथवा प्रत्यक्षके योग्य अधिकरणमें

प्रतियोगिकी अनुपलब्धिका नाम योग्यानुपलब्धि है ? प्रथम तो बन नहीं सकता, यदि ऐसा होय तो स्तम्भमें पिशाचादिके भेदका प्रत्यक्ष नहीं हुआ चाहिये क्योंकि वहां पिशाचरूप प्रतियोगि प्रत्यक्षके योग्य नहीं है । ऐसेही दूसरा पक्ष भी बन नहीं सकता । यदि ऐसा होय तो आत्मामें धर्माधर्मादिकोंके अभावका भी प्रत्यक्ष होना चाचिये । क्योंकि यहां आत्मारूप अधिकरण प्रत्यक्षके योग्य अधिरकरण है । (समाधान) यहां "योग्यस्यानुपलब्धिः" (अथवा) योग्येऽनुपलब्धिः इत्याकारक षष्ठी या सप्तमी तत्पुरुषसमास नहीं है, किन्तु 'योग्या चासौ अनुपलब्धिश्च' इत्याकारक कर्मधारय समासका आश्रयण है (शंका) अनुपलब्धिगत योग्यता क्या है ?(समाधान) तर्कित जो प्रतियोगिका सत्त्व, उस सत्त्वसे प्रसंजित जो प्रतियोगी उस प्रतियोगिकीं अभावरूपा है । अर्थात् जिस घटादि प्रतियोगीके अभावका ग्रहण होता है । उस अभावका जो घटादिरूप प्रतियोगी, उस प्रतियोगिकी अपने अधिकरणमें सत्त्वरूपसे तर्कना करनेसे 'प्रसंजनयोग्य' अथात् आपादानयोग्य प्रतियोगिकी उपलब्धिका स्वरूप, जिस अनुपलम्भका होय, वही अनुपलब्धिकी योग्यता है ॥

तथाहि स्फीतालोकवतिभूतले यदिघटःस्यात्तदाघटोपलंभः स्यादित्यापादनसंभवात्तादृशभूतलेघटाभावोऽनुपलब्धिगम्यः । अंधकारेतुतादृशापादनासंभवान्नानुपलब्धिगम्यता अतएव स्तंभेपिशाचसत्त्वेस्तंभवत्प्रत्यक्षतापत्त्यातदभावोनुपलब्धिगम्यः आत्मनिधर्मादिसत्त्वेप्यस्यातीन्द्रियतयानिरुक्तोपलंभापादनासंभवात् नधर्माद्यभावस्यानपलब्धिगम्यत्वम् ॥

तथाहि । वह इस रीतिसे है कि स्वच्छ प्रकाशवाले भूतलमें 'यदि यहां घट होय तो घटका उपलाभ होना चाहिये' ऐसे आपादन हो सकता है । इसलिये एतादृश भूतलमें घटका अभाव अनुपलब्धिप्रमाणसे जाना जाता है । और अन्धकार कालमें तो उक्त भूतलमें 'यदि यहां घट होय तो घटका उपलाभ होना चाहिये' ऐसा आपादन करही नहीं सकते । इसलिये अन्धकारदशामें भूतलादि अधिकरणोंमें घटका अभाव अनुपलब्धिप्रमाणके विषय नहीं होसकता । एतादृश योग्यानुपलब्धिके स्वीकार करनेहीसे 'स्तम्भे यदि पिशाचः स्यात् तर्हि स्तम्भवत् उपलभ्येत' ऐसा आपादन करसकते हैं । इसलिये स्तम्भमें पिशाचके अभावका अनुपलब्धिप्रमाणसे ग्रहण हो सकता है । एवं आत्मामें धर्मादिके सत्त्वकालमें भी धर्मादिको अतीन्द्रिय होनेसे 'आत्मानि यदि धर्मः स्यात् तर्हि दुःखादिवद्उप-

लभ्येत' ऐसा आपादन नहीं करसकते।इसलिये धर्मादिकोंका अभाव अनुपलब्धि प्रमाणसे ग्राह्य नहीं है ॥

ननूक्तरीत्याधिकरणेन्द्रियसन्निकर्षस्थले अभावस्यानुपलब्धि गम्यत्वमनुमतं तत्रक्लृप्तेंद्रियमेवाभावाकारवृत्तावपिकरणं इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधानादितिचेन्न तत्प्रतियोग्यनुपलब्धेरपि अभावग्रहेहेतुत्वेन क्लृप्तत्वेन करणत्वमात्रस्यकल्पनात् इन्द्रियस्यचाभावेनसमंसन्निकर्षाभावेनाभावग्रहाहेतुत्वात् इन्द्रियान्वयव्यतिरेकयोरधिकरणज्ञानाद्युपक्षीणत्वेनान्यथासिद्धेः ॥

(शंका) पूर्व उक्तरीतिसे आपने जहां अभावके अधिकरणका नेत्रादि इन्द्रियके साथ सन्निकर्ष हो सके वहां अभावको अनुपलब्धिप्रमाणसे ग्राह्य माना है वहां ऐसे स्थलमें यदि अवश्य होनेवाले नेत्रादि इन्द्रियोंहीको अभावाकार वृत्तिमें भी कारण मानलिया जाय तो हानि क्या है ? क्योंकि अभावाकार वृत्तिका अन्वय व्यतिरेक इन्द्रियोंहीके साथ प्रतीत होता है । अर्थात् इन्द्रियसम्बन्धसत्त्वे अभाव ज्ञानसत्त्व, तथा इन्द्रियसम्बधाभावे अभावज्ञानका अभाव इत्येवंरूप अन्वय व्यतिरेक, अभावका इन्द्रियोंहीके साथ प्रतीत होता है । (समाधान) 'तत्' अभावके प्रतियोगिकी अनुपलब्धिको भी अभावके प्रत्यक्षमें कारणरूपसे क्लृप्त होनेसे वहांही करणत्व धर्ममात्रकी भी कल्पना कर सकते हैं । और नेत्रादि इन्द्रियोंका तो अभावके साथ सन्निकर्षही नहीं बन सकता इसलिये उनमें अभाव ग्रहणकी योग्यता नहीं है । और पूर्वउक्त इन्द्रियोंका अन्वयव्यतिरेक तो अधिकरणादिके ज्ञानमें चरितार्थ होसकता है इसलिये अभावप्रमाके लिये वह अन्यथासिद्धहै॥

ननुभूतलेघटोनेत्याद्यभावानुभवस्थले भूतलांशेप्रत्यक्षत्वमभयसिद्धमिति तत्रवृत्तिनिर्गमनस्यावश्यकत्वेनभूतलावच्छिन्न चैतन्यवत्तन्निष्ठघटाभावावच्छिन्नचैतन्यस्यापि प्रमात्रभिन्नतया घटाभावस्यप्रत्यक्षतैवसिद्धांतेपीतिचेत् सत्यं अभावप्रतीतेः प्रत्यक्षत्वेपितत्करणस्यानुपलब्धेर्मानांतरत्त्वात् नहिफलीभूत ज्ञानस्यप्रत्यक्षत्वेतत्करणस्यप्रत्यक्षप्रमाणतानियतत्वमस्तिद

शमस्त्वमसीत्यादिवाक्यजन्यज्ञानस्यप्रत्यक्षत्वेपितत्करणस्य वाक्यस्य प्रत्यक्षप्रमाणभिन्नप्रमाणत्वाभ्युपगमात् ॥

(शंका) आपके वेदान्तसिद्धान्तसे भी 'भूतले घटो न' इत्यादि अभाव विषयक अनुभवस्थलमें भूतलअंशमें प्रत्यक्षविषयता उभयसिद्धान्तसिद्ध है । अर्थात् भूतलांशमें प्रत्यक्षतो जैसे हम मानते हैं वैसे ही आपभी मानते हैं । और एतादृश स्थलमें आपके सिद्धान्तानुसार अन्तःकरणकी वृत्तिका निर्गमन भी अवश्य होता है एवं जैसे भूतलावच्छिन्न चैतन्यका वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य के साथ अभेद होकर भूतलका साक्षात्कार होता है, वैसेही भूतलावच्छिन्न चैतन्यकी तरह भूतल निष्ठ जो घटका अभाव तादृश घटाभावावच्छिन्न चैतन्यको भी प्रमातासे अभिन्नस्वरूप होनेसे घटादिकों के अभाव को भी वेदान्तसिद्धान्तसे प्रत्यक्ष रूपता बन सकती है । (समाधान) जो आपने कहा सो यथार्थ है । अभाव-विषयक प्रतीतिके प्रत्यक्ष होनेसे भी उसके करणीभूत अनुपलब्धिको प्रमाणा-न्तरता है । फलआत्मक ज्ञानके प्रत्यक्ष होनेसे, उसके करणमें प्रत्यक्ष प्रमा-णताका नियम नहीं है । अर्थात् प्रत्यक्षात्मक ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाणही से होता है इस वार्ताका नियम नहीं है । क्योंकि 'दशमस्त्वमसि' अर्थात् 'दशमे तुमहो' इत्यादि वाक्यसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञानको प्रत्यक्ष होनेसेभी, इसके करणीभूत वाक्यको प्रत्यक्षप्रमाणसे भिन्न प्रमाणता सबसिद्धान्तसिद्ध है ॥

फलवैजात्यंविनाकथंप्रमाणभेदइतिचेन्न वृत्तिवैजात्यमात्रेण प्रमाणवैजात्योपपत्तेः तथाच घटाद्यभावाकारवृत्तिर्नेन्द्रियज न्या इन्द्रियस्यविषयेणासन्निकर्षात् किन्तुघटानुपलब्धिरूपमा नांतरजन्या इतिभवत्यनुपलब्धेर्मानांतरत्त्वं नन्वनुपलब्धि रूपमानांतरपक्षेप्यभावप्रतीतेः प्रत्यक्षत्वे घटवति घटाभाव-भ्रमस्यापि प्रत्यक्षत्वापत्तौ तत्राप्यनिर्वचनीयघटाभावोऽभ्युप गम्येत नचेष्टापत्तिः तस्यमायोपादानकत्त्वेऽभावत्वानुपपत्तेः मायोपादानकत्त्वाभावे मायायाः सकलकार्योपादानत्वानुपप त्तिरितिचेन्न घटवति घटाभावभ्रमोनतत्कालोत्पन्नघटाभावावि षयकः किन्तुभूतलरूपादौविद्यमानोलौकिको घटाभावोभूतले

आरोप्यत इत्यन्यथाख्यातिरेवारोप्यसन्निकर्षस्थलेसर्वत्रान्य थाख्यातेरेवव्यवस्थापनात् ॥

(शंका) प्रमेयज्ञानरूप फल की विलक्षणता से विना प्रमाण का भेद कैसे बनसकताहै! (समाधान) वृत्तिके विलक्षण होनेसे प्रमाण की विलक्षणता कह सकते हैं । एवं घटादिकों के अभाव को अवगाहन करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रादि इन्द्रियजन्य नहीं है । क्योंकि नेत्रादि इन्द्रियोंका अभावरूप विशेषण के साथ कोइसम्बध नहीं है। किन्तु घटकी अनुपलब्धिरूप जोप्रमाणआन्तर उसप्रमाणा न्तर से जन्या है। इसलिये अनुपलब्धि को भी प्रमाण आन्तर कह सकते हैं । (शंका) अनुपलब्धिको प्रमाणआंतर माननेवालेके पक्षमें भी अभावविषयक प्रतीतिके प्रत्यक्ष होनेसे ' घटवाली भूतलमें घटाभावविषयक भ्रमज्ञानको भी प्रत्यक्ष ही कहना होगा. एवं एतादृश भ्रमस्थल में घटाभावको भी अनिर्वचनीय ही मानना चाहिये ऐसे स्थलमें यदि इष्टापत्ति कहो अर्थात् अभावको अनिर्वचनीय स्वीकार करो तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि उसमें हम फिर ऐसा पूंछ सकते हैं कि उस अनिर्वचनीय अभाव का उपादान कारण कौन है? अर्थात् उसका उपादान कारण माया है? या कि कुछ और है? यदि माया कहो तो उसमें अभावत्व की अनुपपत्ति होगी अर्थात् माया भाव कार्य्यका उपादानकारण है अभाव का नहीं और यदि उक्त अभावका उपादानकारण मायाको न मानो तो 'मायाको सर्व कार्य्यके उपादान स्वीकार करण' रूप आपके सिद्धान्तकी हानि होंगी (समाधान) घटवाली भूतलमें घटके अभावका भ्रम, तादृश भ्रम कालीन उत्पन्न अनिर्वचनीय घटाभावके अवगाहन करनेवाला नहीं है किन्तु भूतलके रूपरसादिकों में विद्यमान जो लौकिक घटाभाव, उस लौकिक घटाभावका भूतलमें आरोप किया जाता है इसलिये ऐसे स्थलोंमें अन्यथा ख्याति ही जाननी चाहिये क्योंकि पूर्व हमने सन्निकृष्ट आरोप्य स्थलमें सर्वत्र अन्यथा ख्याति ही का स्वीकरण किया है ॥

अस्तुवाप्रतियोगिमतितदभावभ्रमस्थले तदभावस्यानिर्वचनी यत्वम् तथापितदुपादानंमायैवनह्युपादानोपादेययोरत्यंतसा जात्यंतन्तुपटयोरपि तंतुत्वपटत्वादिनावैजात्यात् यत्किंचित्सा जात्यस्यमायाया अनिर्वचनीयस्यघटाभावस्यचमिथ्यात्वधर्म स्यविद्यमानत्वात् अन्यथाव्यावहारिकघटाद्यभावंप्रतिकथंमा

योपादानमितिकुतोनाशंकेथाः नचविजातीययोरप्युपादानोपादेयभावेब्रह्मैव जगदुपादानंस्यादितिवाच्यम् प्रपंचविभ्रमाधिष्ठानत्वरूपेणतस्येष्टत्वात् । परिणामित्वरूपस्योपादानत्वस्य निरवयवेब्रह्मण्यनुपपत्तेः । तथाच प्रपंचस्यपरिणाम्युपादानं मायानब्रह्म इति सिद्धांत इत्यलमतिप्रसंगेन ॥

अथवा घटादिप्रतियोगी वाले भूतलादिमें घटाभावके भ्रमस्थलमें उस अभावको अनिर्वचनीय भी माने तो हानि नहीं है और उसका उपादानकारण भी माया ही है. जिनका परस्पर अत्यन्त साजात्य होता है उनही पदार्थोंका आपसमें उपादान उपादेयभाव होता है, इसवार्ताका नियम नहीं है; क्योंकि उपादानउपादेयभावको प्राप्त हुए, तन्तुपटादिकोंको भी 'तंतुत्व' 'पटत्व' आदि रूपसे वैजात्य देखनेमें आता है । और यदि उपादानउपादेयभावको प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका परस्पर यत्किंचित् साजात्य कहो तो उपादानरूपा मायामें अनिर्वचनीयता तथा उपादेयरूप अभावमें मिथ्यारूपता विद्यमानही है । अन्यथा यदि आपके चित्तमें भ्रमस्थलीय अभावमें मायाउपादानत्वका असम्भव प्रतीत होता हो तो 'व्यावहारिक घटादि अभावके प्रति मायाउपादानता कैसे है' ऐसी शंकाही क्यों नहीं करते? अर्थात् जैसी शंका आपकी भ्रमस्थलीय अभावमें है वैसीही व्यावहारिक अभावमें भी बन सकती. (शंका) यदि परस्पर विपरीत गुणस्वभाववाले पदार्थोंका भी उपादानउपादेयभाव बन सकता है तो केवल ब्रह्महीको यावत् जगत्का उपादान कारण मानना चाहिये मध्यमें माया माननेका कौन काम है (समाधान)प्रपंचभ्रमके अधिष्ठानरूपसे अर्थात् प्रतीयमान मिथ्याप्रपंचका भ्रम, ब्रह्मरूप अधिष्ठानहीमें होताहै, इत्येवंरूपेण, हमको ब्रह्ममें उपादानता भी इष्टहै । परन्तु निरवयवस्वरूप ब्रह्ममें परिणामिरूपसे उपादानता बन नहीं सकती इसलिये प्रपंचका परिणामि उपादानकारण माया है, ब्रह्म नहीं; यह हमारे वेदान्तका सिद्धान्त है. एवं कहीं भी अतिप्रसङ्गरूप दोषकी प्रसक्ति नहीं है ॥

सचाभावश्चतुर्विधः प्रागभावःप्रध्वंसाभावोऽत्यंताभावोऽन्योन्याभावश्चेति । तत्रमृत्पिंडादौकारणेकार्यस्यघटादेरुत्पत्तेः पूर्वयोभावः सप्रागभावः सचभविष्यतीतिप्रतीतिविषयः तत्रैव घटस्यमुद्गरपातानंतरंयोभावः सप्रध्वंसाभावः ध्वंसस्यापि स्वाधिकरणकपालनाशे नाश एव । नचैवं घटोन्मज्जनापत्तिः

घटध्वंसध्वंसस्यापि घटप्रतियोगिकध्वंसत्वात् । अन्यथाप्राग भावध्वंसात्मकघटस्यविनाशेप्रागभावोन्मज्जनापत्तिः ॥

एवं पूर्वउक्त अनुपलब्धि प्रमाणके विषय होने वाला अभाव चार प्रकारका है प्रथम का नाम 'प्रागभाव' है. दूसरेका नाम 'प्रध्वंसाभाव' है; तीसरे का नाम 'अत्यन्ता भाव' है और चौथे का नाम 'अन्योऽन्याभाव' है इनमें घटादि कार्य्योंके कारणीभूत जो मृत्पिण्डादि उन में घटादि कार्य्योंका जो उत्पत्तिसे प्रथम अभाव उस अभावका नाम 'प्रागभाव'है. उस प्रागभाव को 'इह मृत्पिण्डे घटो भविष्यति' अर्थात् 'इस मृत्पिण्डसे घट बनेगा ' इत्याकारक प्रतीति विषय करती है। एवं जब मृत्पिण्डसे घट बन जावे तो उसी मृत्पिण्डमें जो घटके मुद्गर मारके फोड़ देनेसे प्रतीत होनेवाला अभाव, उस का नाम प्रध्वंसाभाव है. वह प्रध्वंसाभाव भी हमारे सिद्धान्तमें नैयायिकोंकी तरह नित्य नहीं है किन्तु उस ध्वंसका भी अपने अधिकरण कपालादिकोंके नाश होनेसे नाश होता है. (शंका) 'अभाव का अभाव प्रतियोगिस्वरूप होता है' इस वार्ताको अनुभवअनुरोध से अनेक विद्वान् मानते हैं. एवं यदि घटके ध्वंसका ध्वंस भी होगा तो फिर घट का (उन्मज्जन) उद्भव होना चाहिये. (समाधान) घटके ध्वंसके ध्वंसको भी हम घटप्रतियोगिक ध्वंस ही मानते हैं. भाव यह कि जैसे घटके ध्वंसका काल, घटका काल नहीं है वैसे ही घटके ध्वंसके ध्वंसका काल भी घटका काल नहीं है.एवं घटके उन्मज्जनकी सम्भावना नहीं होसकती अन्यथा यदि हमारी इस व्यवस्था पर ना दृष्टि देकर अभावाभावको प्रतियोगिस्वरूपके अभिप्राय से उक्तस्थलमें घटके उन्मज्जन की आपत्ति कहो तो हम कहते हैं कि यदि अभावाभावको प्रतियोगिस्वरूप मानना आपका सार्वत्रिक है तो स्वप्रागभावका ध्वंसरूप जो घट उस घटके ध्वंस होनेसे भी फिर उसी घटके प्रागभावका उन्मज्जन होना चाहिये परन्तु यह वार्ता आपके स्वीकृत नहीं है क्योंकि प्रागभावको आपने अनादि माना है ॥

नचैवमपियत्रध्वंसाधिकरणं नित्यं तत्रकथंध्वंसनाश इतिवा च्यम्।तादृशाधिकरणंयदिचैतन्यव्यतिरिक्तं तदातस्य नित्य त्वमसिद्धं ब्रह्मव्यतिरिक्तस्यसर्वस्यब्रह्मज्ञाननिवर्त्त्यतायावक्ष्य माणत्वात् ।यदिचध्वंसाधिकरणंचैतन्यं तदासिद्धिः आरोपित प्रतियोगिकध्वंसस्याधिष्ठानेप्रतीयमानस्याधिष्ठानमात्रत्वात् तदुक्तम्–"अधिष्ठानावशेषोहिनाशः कल्पितवस्तुन"इति ॥

(शंका) यदि ध्वंसका ध्वंस मानभी लिया जाय तो जहां ध्वंसका अधिकरण नित्य है अर्थात् जैसे ज्ञानसुखादि ध्वंसके अधिकरण आत्मा आदि नित्य हैं वहां ध्वंसका ध्वंस कैसे होगा? (समाधान) ऐसा अधिकरण यदि कोई चैतन्य से भिन्न कहो तो वह हमारे सिद्धान्तमें नित्य ही नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे भिन्न यावत् प्रपञ्चकी निवृत्तिः ब्रह्मज्ञान ही से आगे हम कहनेवाले हैं और यदि ध्वंस का अधिकरण चैतन्य कहो तो उस ध्वंसको चैतन्य से (व्यतिरिक्त) पृथक् नित्यता सिद्ध नहीं है किन्तु आरोपित प्रतियोगिके ध्वंसको आरोपके अधिष्ठान में प्रतीति अधिष्ठान स्वरूपा है इसी वार्ता को सुरेश्वराचार्य्य जीने भी कहाहै कि कल्पित वस्तु का नाश अधिष्ठानस्वरूप होता है. इति ॥

एवंशुक्तिरूप्यविनाशोपीदमवच्छिन्नचैतन्यमेव यत्राधिकरणे यस्यकालत्रयेप्यभावः सोऽत्यंताभावः यथावायौ रूपात्यंताभावः सोपिघटादिवत्ध्वंसप्रतियोग्येव। इदमिदंनेति प्रतीतिविषयोऽन्योन्याभावः अयमेवविभागोभेदः पृथक्त्वंचेतिव्यवह्रियते भेदातिरिक्तविभागादौप्रमाणाभावात् अयंचान्योन्याभावोऽधिकरणस्यसादित्वेसादिः यथाघटेपटभेदः अधिकरणस्यानादित्वेनादिरेव यथाजीवेब्रह्मभेदः ब्रह्मणिवाजीवभेदः द्विविधोपिभेदोध्वंसप्रत्तियोग्येव अविद्यायानिवृत्तौतत्परतंत्राणांनिवृत्यवश्यंभावात् ॥

एसेही शुक्तिरजतका विनाश भी 'इदमवच्छिन्न' चैतन्यस्वरूपही है । एवं जिस अधिकरणमें जिस वस्तुका तीनों कालमें अभाव प्रतीत हो वह 'अत्यन्ताभाव' है । जैसे 'वायौ रूपं नास्ति' इत्याकारक प्रतीतिसिद्धवायुमें रूपका अत्यन्ताभाव है । यह अत्यन्ताभाव भी घटादिकोंकी तरह ध्वंसका प्रतियोगी है अर्थात् अत्यन्ताभावभी हमारे सिद्धान्तमें विनाशी है । किन्तु नैयायिकों की तरह नित्य नहीं है । एवं 'घटः पटो न' इत्यादि प्रतीतिके विषय अभावका नाम 'अन्योन्याभाव' है । इसीको 'विभाग' 'भेद' तथा 'पृथक्त्व' भी कहते हैं । भेदसे जुदा विभागादिके माननेमें कोई प्रबल प्रमाण नहीं है । यह अन्योन्याभाव अधिकरणके सादि होनेसे सादि है । जैसे घटमें पटप्रतियोगिक भेद सादि है और अधिकरणके अनादि होनेसे अनादि भी है । जैसे जीवमें ब्रह्मप्रतियोगिक भेद तथा ब्रह्ममें जीव प्रतियोगिक भेद अनादिसिद्ध है । यह दोनों प्रकारका भेद अनादि अविद्याजन्य होनेसे

भी पूर्वोक्तरीतिसे ध्वंसका प्रतियोगि है । क्योंकि अनादि अविद्याके आत्मज्ञानसे निवृत्त होनेसे तद्‌अधीन होनेवाले जीव ईशादिभेदोंका नाश भी अवश्यही होताहै॥

पुनरपिभेदोद्विविधः सोपाधिकोनिरुपाधिकश्चेति। तत्रोपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वंसोपाधिकत्वं तच्छून्यत्वंनिरुपाधिकत्वं तत्राद्योयथा एकस्यैवाकाशस्य घटाद्युपाधिभेदेन भेदः । यथावा एकस्यसूर्य्यस्य जलभाजनभेदेनभेदः। तथाच एकस्यैवब्रह्मणोऽन्तःकरणभेदाद्भेदः।निरुपाधिकभेदो यथा घटेपटभेदः । नचब्रह्मण्यपि प्रपंचभेदाभ्युपगमेऽद्वैतविरोधः तात्विकभेदादेरनभ्युपगमेनवियदादिवदद्वैताव्याघातकत्वात् ॥

पूर्वोक्त अन्योऽन्याभाव फिर दो प्रकारका है । एक सोपाधिक अन्योऽन्याभाव है और दूसरा निरुपाधिक अन्योन्याभाव है । उनमें उपाधिसत्ताकी व्याप्यीभूत जो सत्ता तादृश सत्तावालेका नाम सोपाधिक अन्योन्याभाव है अर्थात् जहां २ आकाशादि भेदकी सत्ता है । वहां २ घटादिरूप उपाधिकी सत्ता है इस रीतिसे भेद तथा उपाधिसत्ताका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव है । एतादृश व्याप्यीभूत सत्तासे शून्यका नाम निरुपाधिकभेद है । इन दोनोंमें प्रथम उदाहरण जैसे एकही आकाशका घटादिउपाधिके भेदसे भेद है । अथवा जैसे एकही सूर्य्यका जलके पात्रोंके भिन्न २ होनेसे भेद है । ऐसेही एकही चिद्रूप ब्रह्मका अन्तःकरणरूप उपाधिके भेदसे भेद है । एवं निरुपाधिकभेदका उदाहरण जैसे घटमें पटप्रतियोगिक भेद है । (शंका) आपके वेदान्तसिद्धान्तमें यदि ब्रह्ममें भी प्रपञ्चप्रतियोगिक भेद रहता है तो अद्वैतसिद्धान्तसे विरोध होगा ? (समाधान) हमारे सिद्धान्तमें ब्रह्ममें प्रपञ्चप्रतियोगिक भेद या प्रपञ्चप्रतियोगिक अत्यन्ताभाव (तात्विक) वास्तविक नहीं है । किन्तु जैसे आकाशादिप्रपञ्चस्वाधिष्ठानमें अतात्विक अर्थात् कल्पित होनेसे सद्रूप अद्वैत का विरोधि नहीं है । वैसेही प्रपञ्चप्रतियोगिक भेद भी वास्तविक अद्वैतका विरोधि नहीं है ॥

प्रपंचस्याद्वैतेब्रह्मणिकल्पितत्वाङ्गीकारात् तदुक्तं सुरेश्वराचार्यैः

"अक्षमाभवतःकेयंसाधकत्वप्रकल्पने ॥

किन्नपश्यसिसंसारंतत्रैवाज्ञानकल्पितम्" इति ॥ १ ॥

अतएवविवरणेऽविद्यानुमाने प्रागभावव्यतिरिक्तविशेषणं तत्त्व

प्रदीपिकायामविद्यालक्षणे भावत्वविशेषणंच संगच्छते। एवंच तुर्विधाभावानां योग्यानुपलब्ध्याप्रतीतिः तत्रानुपलब्धिर्मानां तरम् ॥

हमारे वेदान्तसिद्धान्तमें यावत् प्रपञ्च अद्वैतब्रह्ममें कल्पित है । इसी वार्ता को सुरेश्वराचार्य्यजीने भी कहा है, कि "हे तार्किक! तुमको साधकत्व प्रकल्प नमें अर्थात् ब्रह्ममें मुमुक्षुपन या जगद्धेतुत्व कल्पना करनेमें क्या (अक्षमता) असहिष्णुता है । इस सारे संसारको ही उसी ब्रह्ममें अज्ञानसे कल्पित किये हुए को क्यों नहीं देखता" ॥ १ ॥ इति ॥ एवं पूर्वोक्तरीतिसे अभावके चार प्रकारके होनेहीसे विवरणमें अविद्यासाधक अनुमानमें 'प्रागभाव व्यतिरिक्त' विशेषण देना सफल है और चित्सुखाचार्य्यके किये तत्वप्रदीपिका नामक ग्रन्थमें 'अनादिभावरूपत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वमविद्यात्वम्' इत्याकारक अविद्याके लक्षणमें 'भावत्व' विशेषणभी संगत होसकता है । एवं पूर्वोक्त चारोंप्रकारके अभावोंकी योग्यानुपलब्धिसे प्रतीति होती है । इसलिये अनुपलब्धिप्रमाणान्तरहै ॥

एवमुक्तानां प्रमाणानां प्रामाण्यं स्वत एवोत्पद्यते ज्ञायते च। तथाहि स्मृत्यनुभवसाधारणं संवादिप्रवृत्त्यनुकूलं तद्वतितत्प्रकारकज्ञानत्वं प्रामाण्यं तच्चज्ञानसामान्यसामग्रीप्रयोज्यं नत्व धिकंगुणमपेक्षते प्रमामात्रे ऽनुगतगुणाभावात् नापि प्रत्यक्ष प्रमायांभूयोऽवयवेन्द्रियसन्निकर्षःरूपादिप्रत्यक्षे आत्मप्रत्यक्षेच तदभावात् सत्यपि तस्मिन् पीतःशंख इतिप्रत्ययस्य भ्रम त्वाच्च ॥

एवं पूर्वोक्तप्रमारूपप्रमाणोंमें 'प्रमात्व' स्वयंही उत्पन्न होता है तथा स्वयंही ज्ञात भी होता है. (तथाहि) उसका प्रकार यह है कि स्मृतिज्ञान तथा अनुभवआत्मकज्ञान साधारण जो (संवादि) सफलप्रवृत्तिके अनुकूल तद्वति तत्प्रकारक ज्ञान, तादृश ज्ञानहीमें 'प्रमात्व' रहता है । वह 'प्रमात्व' ज्ञानभी इन्द्रियसन्निकर्षादि या आत्ममनःसंयोगादि सामान्य सामग्रीसे प्रयोज्य है

(१) विवादगोचरापन्नं प्रमाणज्ञानं. स्वप्रागभावव्यतिरिक्त स्वविषयावरणस्वनिवर्त्य स्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकं भवितुमर्हति. अप्रकाशित अर्थप्रकाशकत्वात् अन्धकारे प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभावत् इत्यनुमानाकारम् ।

किन्तु सामान्यसामग्रीसे अधिक गुणादिकों की अपेक्षा नहीं करता। क्योंकि प्रमामात्रमें किसी भी गुणके अनुगत होनेमें प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्षप्रमामें यदि पदार्थोंके अनेक अवयवोंके साथ इन्द्रियों के सन्निकर्षरूप गुणको हेतुता कहो तो सोभी ठीक नहीं। क्योंकि रूपादिके प्रत्यक्षमें तथा आत्माके प्रत्यक्षमें भूयो अवयवइन्द्रियसन्निकर्षरूप गुणको कारणता नहीं है। और भूयो अवयवइन्द्रियसन्निकर्षरूप कारणके होनेसे भी 'पीतः शंखः' इत्यादि ज्ञानमें भ्रमरूपता सिद्ध है॥

अत एव नसल्लिंगपरामर्शादिकमप्यनुमित्यादिप्रमायांगुणःअसल्लिंगपरामर्शादिस्थलेपि विषयावधेनानुमित्यादेःप्रमात्वात् नचैवमप्रमापिप्रमास्यात् ज्ञानसामान्यसामग्र्याअविशेषादिति वाच्यम् दोषाभावस्यापिहेतुत्वांगीकारात् नचैवंपरतस्त्वमिति वाच्यम् आगंतुकभावकारणापेक्षायामेवपरतस्त्वात्॥

एवं अन्वयव्यतिरेकव्यभिचारादि दोषके होनेहीसे अनुमितिज्ञानरूप प्रमामें सद्लिंग परामर्शादिको भी गुणरूपता नहीं है। क्योंकि असद्लिङ्गविषयक परामर्शात्मक ज्ञानकालमें भी विषयके अबाध होनेसे अनुमिति आदि ज्ञान प्रमात्मक उत्पन्न होता है। एवं गुणोंका प्रमात्मकज्ञानके साथ व्यतिरेकव्यभिचार है. (शंका) एवं प्रमात्वके ज्ञानसामान्यसामग्रीप्रयोज्यत्व स्वीकार करनेसे ज्ञान सामान्यसामग्रीके उभयत्र तुल्य होनेसे अप्रमाज्ञानभी प्रमारूपही होना चाहिये (समाधान) प्रतिबन्धकाभावमें कार्य्यमात्रके प्रतिहेतुता सर्वतंत्र सिद्धान्तसिद्ध है. एवं दोषाभावको भी प्रतिबन्धकाभावत्वेन हेतुता हमको अंगीकार है। (शंका) एवं ज्ञानप्रमात्वके प्रति दोषाभावमें हेतुता माननेसे प्रमात्वमें परतस्त्वहोगा (समाधान) ज्ञानसामान्यसामग्रीसे व्यतिरिक्त आगन्तुक भावरूप कारणकी अपेक्षा होनेसे परतस्त्व व्यवहार होता है। प्रकृतमें दोषाभाव भावरूप कारण नहीं है। इसलिये दोष नहीं॥

ज्ञायतेचप्रामाण्यं स्वतः स्वतोग्राह्यत्वं च दोषाभावे सतियावत्स्वाश्रयग्राहकसामग्रीग्राह्यत्वं स्वाश्रयोवृत्तिज्ञानं तद्ग्राहकं साक्षिज्ञानं तेनापिवृत्तिज्ञाने गृह्यमाणे तद्गतंप्रामाण्यं गृह्यते। नचैवं प्रामाण्यसंशयानुपपत्तिः तत्रसंशयानुरोधेन दोषस्यापिस

त्त्वेन दोषाभावघटितस्वाश्रयग्राहकाभावेन तत्रप्रामाण्यस्यैवा ग्रहात् ॥ ॥

एवं जैसे प्रमाज्ञानम 'प्रमात्व' स्वतः उत्पन्न होता है वैसेही 'प्रमात्व' ज्ञातभी स्वतःही होता है अर्थात् तादृश प्रमात्वका ग्रहण भी स्वतःही होता है । उक्त 'प्रमात्व' में स्वतोग्राह्यत्व तो दोषाभाव विशिष्ट जो यावत् 'स्व' प्रमात्वके आश्रय प्रमात्मकज्ञानकी ग्राहक सामग्री, तादृश सामग्री ग्राह्यत्व है । यहां 'स्व' शब्दसे प्रमात्वरूप धर्मका ग्रहण है । उसका आश्रय अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान है । उसका ग्राहक साक्षिरूप ज्ञान है । उस साक्षिज्ञानसे वृत्तिज्ञानके ग्रहण होनेसे वृत्ति-ज्ञाननिष्ठ प्रमात्वका ग्रहणभी होता है । (शंका) यदि उक्तरीतिसे सर्वत्र साक्षीही प्रमात्वका ग्राहक है तो संशयात्मक ज्ञान अर्थात् 'इदं ज्ञानं प्रमा न वा' इत्यादि प्रमात्व विषयक सन्देह कहीं भी नहीं हुआ चाहिये. (समाधान) जहां ज्ञाननिष्ठ प्रमात्वविषयक सन्देह होता है वहां संशयके अनुरोधसे दोषके सत्त्वका निश्चय भी हो सकता है एवं ऐसे स्थलमें दोषके अभावसे घटित जो 'स्व' प्रमात्वके आश्रय प्रमात्मक ज्ञानका ग्राहक साक्षी, तादृश साक्षीके अभाव होनेसे ऐसे स्थलमे प्रमा-ण्यहीका अभाव है अर्थात् दोषाक्रान्तस्थलमें साक्षीसे ज्ञाननिष्ठ प्रमात्वका ग्रहण नहीं होता ॥

यद्वा यावत्स्वाश्रयग्राहकग्राह्यत्वयोग्यत्वं स्वतस्त्वं संशयस्थ लेप्रामाण्यस्योक्तयोग्यतासत्त्वेपिदोषवशेनाग्रहात् नसंशया नुपपत्तिः ॥

अथवा यावत् जो 'स्व' प्रमात्वाश्रय प्रमात्मकज्ञानके ग्राहक, तादृश ग्राहक से ग्राह्यत्वकी योग्यतावाले होना ही प्रमात्वनिष्ठ स्वतस्त्व है. एवं संशयस्थलमें प्रमात्वधर्मनिष्ठ उक्त योग्यता है भी परन्तु दोषवशसै उस योग्यताके न ग्रहण होनेसे संशयकी अनुपपात्ति नहीं है किन्तु संशय बन सकता है ॥

अप्रामाण्यं तु नज्ञानसामान्यसामग्रीप्रयोज्यं, प्रमायामप्यप्रा माण्यापत्तेः । किन्तुदोषप्रयोज्यम् । नाप्यप्रामाण्यं याव त्स्वाश्रयग्राहकग्राह्यं अप्रामाण्यघटकतदभाववत्त्वादेर्वृत्तिज्ञा नाऽनुपनीतत्वेन साक्षिणाग्रहीतुमशक्यत्वात् । किंतु विसंवा

दिप्रवृत्त्यादिलिंगिकानुमित्यादिविषय इति ।परतएवाप्रामाण्य मुत्पद्यते ज्ञायतेचेति ॥

॥ इत्यनुपलब्धिपरिच्छेदः ॥ ६ ॥

एवं अप्रमात्मक ज्ञाननिष्ठ 'अप्रमात्व' धर्म तो ज्ञानसामान्यकी सामग्रीसे (प्रयोज्य) जन्य नहीं है; क्योंकि यदि अप्रमात्मक ज्ञानको ज्ञानसामान्य सामग्रीप्रयोज्य ही मानेंगे तो प्रमात्मकज्ञानको भी ज्ञानसामान्य सामग्री प्रयोज्य होनेसे प्रमात्मकज्ञानमें भी 'अप्रमात्व' धमकी आपत्ति होगी. इसलिये यही कहना उचित है कि, ज्ञाननिष्ठ 'अप्रमात्व' धम का प्रयोजक केवल दोष है. एवं अप्रमाज्ञाननिष्ठ 'अप्रमात्व' धर्म का यावत् 'स्व' अप्रमात्वाश्रय अप्रमा. ज्ञानके ग्रहण करनेवालों से ग्रहण भी नहीं होता अर्थात् जिस सामग्रीद्वारा अप्रमात्मक ज्ञान का ग्रहण होता है उसी ही सामग्रीद्वारा तादृश अप्रमात्मक ज्ञाननिष्ठ 'अप्रमात्व' धर्म्म का ग्रहण नहीं होता;क्योंकि अप्रमात्व धर्मके (घटक) सम्पादक जो 'तदभाववत्त्वादि' धर्म हैं उनको वृत्तिआत्मक ज्ञानके अविषय होनेसे साक्षीद्वारा ग्रहण होना भी उनका दुर्घट है। भाव यह कि 'तदभाववति तत्प्रकारकत्व' रूप ही अप्रमाज्ञान में 'अप्रमात्व'है उस का ग्रहण यद्यपि तत्प्रकारकत्वेन होता है तथापि 'तदभाववति तत्प्रकारकत्वेन' नहीं होता. यदि ऐसा होय तो ज्ञान में अप्रमात्व धर्महीका उच्छेद होजायगा क्योंकि जब जान ही लिया कि यह तदभाववाले में तत्प्रकारक ज्ञान है तो उस को अप्रमात्मक नहीं कह सकते किन्तु यथार्थ है, इसलिये अप्रमात्मक ज्ञानस्थल में अप्रमात्व घटक तदभाववत्त्वादि धर्मोंको वृत्त्यात्मक ज्ञान के अविषय होनेसे उनका साक्षी से ग्रहण भी नहीं होता किन्तु विसंवादि प्रवृत्ति आदि लिंगसे उत्पन्न होनेवाली जो अनुमिति तादृश अनुमिति के विषय हैं । अर्थात् 'इयं शुक्तिरजतार्थिप्रवृत्तिः' प्रामाण्यशून्या, निष्फलप्रवृत्तित्वात्' इत्यादि विसंवादि प्रवृत्तिरूप लिङ्गसे उत्पन्न होनेवाली अनुमितिसे अप्रमात्वादि धर्मोंका ग्रहण होता है । इसरीतिसे अप्रमाणज्ञान में अप्रमात्व की उत्पत्ति तथा ज्ञान परतोही सर्वत्र होता है–इति ॥

इति श्रीनिर्मलपण्डितस्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषा–
विभूषितवेदान्तपरिभाषाप्रकाशे अनुपलब्धिपरिच्छेदः ॥ ६ ॥

अथ विषयपरिच्छेदः ७.

मिथ्योपाधिकृतं भेदं संविधूय मुहुर्मुहुः ॥
यल्लक्ष्यं श्रौतवाक्यानां वन्दे तं नानकं गुरुम् ॥ १ ॥

एवं निरूपितानां प्रमाणानां प्रमाण्यं द्विविधम्, व्यावहारिकतत्त्वावेदकत्त्वं पारमार्थिकतत्त्वावेदकत्त्वंचेति । तत्रब्रह्मस्वरूपावगाहिप्रमाणव्यतिरिक्तानां सर्वप्रमाणानामाद्यं प्रामाण्यं तद्विषयाणां व्यवहारदशायां बाधाभावात् । द्वितीयंतु जीवब्रह्मैक्यपराणां "सदेवसोम्येदमग्र आसीत्" इत्यादीनां 'तत्त्वमसि' इत्यंतानां तद्विषयस्य जीवपरैक्यस्य कालत्रयाबाध्यत्वात् ॥

एवं पूर्व निरूपण किये प्रमाणों में प्रमाणता दो प्रकारकी है । प्रथम संसारान्तर्गत व्यावहारिक पदार्थों के यथार्थस्वरूप के बोधक होनेसे प्रमाणता है । दूसरे ब्रह्मात्मक पारमार्थिक तत्त्वसाक्षात्कार के बोधक होनेसे प्रमाणता है । उनमें ब्रह्मस्वरूप के अवगाहन करनेवाले प्रमाणोंसे भिन्न यावत् प्रमाणोंको प्रथम कही अर्थात् व्यावहारिक प्रमाणता है । क्योंकि व्यावहारिक पदार्थों के अवगाहन करनेवाले प्रमाणों के घटपटादि विषयों का व्यवहारदशामें बाध नहीं होता । एवं ' सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ' इन श्रुतिवचनोंसे आदि लेकर तथा 'तत्त्वमसि' इस श्रुतिवचन पर्य्यन्त यावत् श्रुतिवाक्यों को जीवब्रह्मकी ऐक्यता परायण होनेसे दूसरी अर्थात् पारमार्थिक तत्त्वावेदकत्वेन प्रमाणता है । क्योंकि उक्त श्रुतिवचनों का विषय जो जीवब्रह्मकी एकता वह तीनों काल में निराबाध है ॥

तच्चैक्यं तत्त्वं पदार्थज्ञानाधीनज्ञानमिति प्रथमं तत्पदार्थो लक्षणप्रमाणाभ्यां निरूप्यते।तत्र लक्षणं द्विविधम्,स्वरूपलक्षणं तटस्थलक्षणं चेति।तत्र स्वरूपमेवलक्षणं,स्वरूपलक्षणंयथा "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म"इति।अत्र सत्यादिकं स्वरूपलक्षणम् ॥

वह पूर्वोक्त जीवब्रह्म की एकता 'तत्' तथा 'त्वम्' पदार्थविषयक जो ज्ञान तादृश ज्ञान के अधीन जो ज्ञान तादृश ज्ञानस्वरूपा है। इसलिये लक्षण तथा प्रमाणपूर्वक प्रथम 'तत्' पदार्थ का निरूपण करते हैं. उन में पदार्थमात्र का लक्षण दो तरह का होता है,प्रथम का नाम'स्वरूपलक्षण' है, द्वितीय का नाम 'तटस्थलक्षण' है उन में स्वरूपलक्षण तो स्वरूपभूत ही जो लक्षण हो वह स्वरूपलक्षण है जैसे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' अर्थात् 'सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप तथा अनन्तस्वरूप ब्रह्म है' इत्यादि श्रुतिवचनों में (सत्यादि) ब्रह्मके स्वरूप भूत लक्षण हैं॥

ननु स्वस्य स्ववृत्तित्वाभावे कथंलक्षणत्वमिति चेत्,न,स्वस्यैवस्वापेक्षयाधर्मिधर्मभावकल्पनया लक्ष्यलक्षणत्वसंभवात्। तदुक्तम्–

आनंदो विषयानुभवो नित्यत्वंचेतिसन्तिधर्माः।
अपृथक्त्वेपि चैतन्यात्पृथगिवावभासन्त इति॥

(शंका) लक्षण नाम असाधारण धर्मविशेष का है एवं किसी भी पदार्थ के स्वरूपमें अपने आप में धर्मधर्मिभावसे वृत्तिता नहीं बन सकती अर्थात् धर्मरूप से जब अपने में आप कोई भी पदार्थ नहीं रहता तो लक्षणत्वव्यवहार कैसे हो सकता है? (समाधान) एकही पदार्थ के स्वरूप में धर्मधर्मिभाव की कल्पना करने से लक्षलक्षणभाव का सम्भव भी हो सकता है। इसी वार्ताको पद्मपादाचार्य्यने भी कहा है कि 'आनन्द' विषयानुभव अर्थात् 'ज्ञान' तथा 'नित्यत्व' ये तीनों चेतनके धमस्वरूप हैं. ये तीनों वास्तव से चेतन से अभिन्नस्वरूपही हैं तथापि चैतन्य से भिन्न चैतन्यधर्मोंकी तरह प्रतीत होते हैं॥ इति॥

तटस्थलक्षणं यावल्लक्ष्यकालमनवस्थितत्वे सति यद्व्यावर्तकं तदेव यथागन्धवत्त्वं पृथिवीलक्षणं महाप्रलये परमाणुषु उत्त्पत्तिकालेघटादिषु गंधाभावात्। ब्रह्मणि प्रकृते च जगज्जन्मादिकारणत्त्वं अत्रजगत्पदेनकार्यजातं विवक्षितं, कारणत्वं चकर्तृत्वमतोविद्यादौनातिव्याप्तिः॥

एवं यावत् लक्षकाल अवस्थित न होकर अर्थात् यावत् कालपर्य्यन्त लक्ष रहे नियम से तावत् कालपर्य्यन्त उस में न रहकर जो व्यावर्तक हो उसका नाम 'तटस्थलक्षण' है जैसे पृथिवी का 'गन्धवत्त्व' लक्षण है यहां पृथिवी में गन्ध सर्वदा

नहीं रहता; क्योंकि प्रलयकाल में पार्थिव परमाणुओं में तथा उत्पत्तिकालावच्छेदेन घटादि पार्थिव कार्य्यों में गन्ध का अभाव है इसलिये 'गन्धवत्त्व' पृथिवी का तटस्थलक्षण है, ऐसे ही प्रकृत में 'जगत्के जन्म स्थिति प्रलयके कारण होना' ब्रह्म का तटस्थलक्षण है. यहां 'जगत्' पद से यावत् कार्य्यमात्रग्रहण में वक्ता की इच्छा है । ब्रह्म में जगत्निरूपित कर्तृत्वरूपा कारणता है इसलिये उक्त लक्षणकी अविद्यादिकों में अतिव्याप्ति नहीं है ॥

कर्तृत्वंच तत्तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वं ईश्वरस्य तावदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानसद्भावेच "यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयंतपःतस्मादेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नं च जायत" इत्यादिश्रुतिर्मानं तादृशचिकीर्षासद्भावे "सोकामयतबहुस्यां प्रजायेय" इत्यादिश्रुतिर्मानं तादृशकृतौच "तन्मनोऽकुरुत" इत्यादिवाक्यम् ॥

प्रकृत में कर्ता नाम तत् तत् उपादानगोचर जो अपरोक्षज्ञानचिकीर्षा तथा कृति तादृश कृतिवाले का है । प्रथम ईश्वरके उपादानगोचर अपरोक्षज्ञानके होनेमें 'जो सामान्यरूपसे सर्वविषयक ज्ञानवाला है वही विशेषरूपसे सर्वविषयक ज्ञानवाला है' 'जिस भगवान्का ज्ञानमय 'तप' अर्थात् औपाधिक ईक्षण है। एतादृश औपाधिक ईक्षणसहकृत कारणब्रह्मसे यह हिरण्यगर्भरूप कार्य्यब्रह्म घट पटादि नाम शुक्लनीलादिरूप तथा यवव्रीहि आदि अन्न उत्पन्न होता है, इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन प्रमाण हैं । एवं ईश्वरके उपादानगोचर चिकीर्षा वाले होनेमें 'वह परमेश्वर इच्छा करता भया कि मैं प्रजारूपेण उत्पन्न होता हुआ बहुत होवों' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन प्रमाण हैं । एवं परमेश्वरके उपादानगोचर प्रयत्नवाले होनेमें 'वह परमेश्वर मन को बनाता भया' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन प्रमाण हैं ॥

ज्ञानेच्छाकृतीनां मध्येऽन्यतमगर्भलक्षणत्रितयमिदं विवक्षितम् । अन्यथाव्यर्थविशेषणत्वापत्तेः । अतएवजन्मस्थितिध्वंसानामन्यतमस्यैवलक्षणेप्रवेशः । एवं च प्रकृतेलक्षणानि नव संपद्यन्ते ब्रह्मणो जगज्जन्मादिकारणत्वेच "यतोवाइमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति" इत्यादिश्रुतिर्मानम् ॥

उपादानगोचर ज्ञान,इच्छा,या कृति,इन तीनों में से किसी एक के प्रवेश करने से भी कर्ताका निर्दोष लक्षण हो सकताहै इसलिये यहां 'उपादानगोचर ज्ञानवाले होना' उपादान गोचर इच्छावाले होना तथा 'उपादानगोचर प्रयत्नवाले होना' इत्याकारक लक्षण तीनकी वक्ताकी इच्छा है। अन्यथा यदि तीन लक्षणकी विवक्षा न होय तो इच्छा कृति आदि विशेषणों को अव्यावर्तक होनेसे व्यर्थता होगी. विशेषणके व्यर्थ होनेहीसे 'जन्म' 'स्थिति' 'ध्वंस' इन तीनोंमें से भी किसी एक का लक्षण में प्रवेश करने से लक्षणसमन्वय हो सकता है. एवं प्रकृत में कर्ताके लक्षण नव बन सकते हैं। अर्थात् 'कार्य्यजात जन्मगोचर अपरोक्षज्ञानवत्त्व' १। 'कार्य्य जात स्थितिगोचर अपरोक्षज्ञानवत्त्व' २। 'कार्य्यजात लयगोचर अपरोक्ष ज्ञानवत्त्व' ३। एवं 'कार्य्यजात गोचरचिकीर्षाआश्रयत्व' ४। 'कार्य्यजात स्थितिविषयक चिकिर्षाआश्रयत्व' ५। 'कार्य्यजात लयगोचर चिकीर्षा आश्रयत्व' ६। एवं कार्य्यमात्र जन्मगोचर प्रयत्नआश्रयत्व' ७। 'कार्य्य मात्र स्थितिविषयक प्रयत्नआश्रयत्व' ८। 'कार्य्यमात्र लयगोचर प्रयत्नआश्रयत्व' ९। इत्याकारक विवरण करनेसे प्रकृत में कर्ताके नव लक्षण होसकते हैं। एवं ब्रह्मके जगत्जन्मस्थिति प्रलयके कारण होनेमें "जिस परमेश्वर से इन यावत् चराचरभूतोंकी उत्पत्ति होती है तथा उत्पन्न होकर यावत् चराचर जिस परमेश्वर से जीवन अर्थात् स्थिति को लाभ करते हैं तथा प्रलयकाल में यावत् चराचर जिस परमेश्वर में विलय को प्राप्त होते हैं" इत्यादि अर्थवाली श्रुति प्रमाणीभूत है॥

यद्वा निखिलजगदुपादानत्वं ब्रह्मणोलक्षणं उपादानत्वं च जगदध्यासाधिष्ठानत्वम् जगदाकारेण विपरिणममानमायाधिष्ठानत्वं वा एतादृशमेवोपादनत्वमभिप्रेत्य "इदं सर्वं यदयमात्मा सच्च त्यच्चाभवत्" "बहुस्यांप्रजायेय" इत्यादिश्रुतिषु ब्रह्मप्रपंचयोस्तादात्म्यव्यपदेशः घटः सन् घटोभाति घटइष्ट इत्यादिलौकिकव्यपदेशोपि सच्चिदानन्दरूपब्रह्मैक्याध्यासात्॥

अथवा यावत् चराचररूप जगत् के उपादानकारण होना ब्रह्मका तटस्थलक्षण है। ब्रह्ममें जगत्निरूपित उपादानता जगत्अध्यास की अधिष्ठानतारूपा है। अर्थात् चराचरकल्पित जगत् के अधिष्ठानरूपसे ब्रह्म जगत् का उपादानकारण है। अथवा जगद्रूपसे विपरिणत हुई माया के अधिष्ठान होना ब्रह्ममें उपादानत्व है। एतादृश उपादान के तात्पर्य्यहीसे जो यह हिरण्यगर्भसे

से लेकर स्तम्भपर्य्यन्त जगत् प्रतीत होता है सो सब आत्मस्वरूप है, अर्थात् जैसे स्थाणुमें कल्पित चौर स्थाणुसे पृथक् सत्तावाला नहीं है वैसेही हिरण्य गर्भसे लेकर स्तम्भपर्य्यन्त जगत् स्वाधिष्ठानब्रह्ममें कल्पित हुआ ब्रह्मसे पृथक् सत्तावाला नहीं है। वही ब्रह्म 'सत्' अर्थात् मूर्त्त पृथिवी आदि तीन भूतरूप, तथा 'त्यत्' अर्थात् अमूर्त वायुआकाश द्वयभूत स्वरूप (अभवत्) होता भया। तथा 'बहुस्यां प्रजायेय' अर्थात्' मैं प्रजारूपेण उत्पन्न होकर बहुतरूप होवों' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनों में ब्रह्म तथा प्रपञ्च का परस्पर तादात्म्य व्यवहार किया है। तथा 'घटः सन्' अर्थात् घट सद्रूप है। तथा ' घटोभाति' अर्थात् घट चित्प्रकाशस्वरूप है। एवं 'घट इष्टः' अर्थात् 'घट परम प्रिय आनन्द स्वरूप है' इत्यादि लोक में प्रचलित व्यवहार भी 'सत् चित्, तथा 'आनन्द' स्वरूप ब्रह्म के साथ ऐक्याध्यास होनेहीसे होसकता है ॥

नन्वानंदात्मकचिदध्यासाद्धटादेरिष्टत्वव्यवहारेदुःखस्यापि तत्राध्यासात्तत्रापि इष्टत्वव्यवहारापत्तिरितिचेत्,न,आरोपे सति निमित्तानुसरणं नतुनिमित्तमस्तीत्यारोप इत्यभ्युपगमेन दुःखादौसच्चिदंशाध्यासेप्यानंदांशाध्यासाभावात् ॥

(शंका) यदि आनन्दस्वरूप चेतन में अध्यस्त होनेसे घटपटादि पदार्थों में इष्टत्वव्यवहार अर्थात् प्रियबुद्धि होती है तो वैसेही दुःखमें भी 'इष्ट' प्रिय बुद्धि होनी चाहिये। अर्थात् प्रेक्षावत् पुरुषको 'दुःखं मे इष्टं' ' दुःखं मे स्यात् ' इत्यादि प्रत्यय होने चाहिये, क्योंकि घटादिकोंकी तरह दुःख भी तो उसी चेतन में अध्यस्त है इसलिये उक्त प्रत्यय अवश्य होना चाहिये। (समाधान) आरोप के प्रतीत होनेसे उसके निमित्त का अनुसरण किया जाता है अर्थात् आरोपित पदार्थ की प्रतीतिके पश्चात् उसके किंनिमित्तक होनेमें विचार किया जाता है किन्तु आरोपके निमित्त मात्रके होनेसे आरोपके अवश्यंभाव होनेमें नियम नहीं है। ऐसा हमको अनुभवानुरोधसे स्वीकार है। दुःखादिकों में ' अस्ति ' प्रत्यय से 'सत्' अंश का तथा 'भाति' प्रत्ययसे 'चित्' अंश का अध्यास होनेसे भी 'इष्ट' प्रत्यय के न होनेसे 'आनन्द' अंश का अध्यास दुःखमें नहीं कह सकते ॥

जगतिनामरूपांशद्वयव्यवहारस्तु अविद्यापरिणामात्मकनाम रूपसंबंधात् ।

तदुक्तम्—अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम् ॥
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततोद्वयमिति ॥

जगत् में नामरूपात्मक दो अंश का व्यवहार तो अविद्या के परिणाम स्वरूप नामरूपके सम्बन्धमात्रसे होता है । इसी वार्ताको किसी प्राचीन प्रतिष्ठित नेभी कहा है कि—अस्ति, भाति, प्रिय, रूप, तथा नाम, येह पाँच अंश पदार्थ मात्र में प्रतीत होते हैं । उनमें प्रथमके तीन तो ब्रह्मस्वरूप हैं तथा पीछे के जगत्रूप हैं इति ॥

अथजगतो जन्मक्रमो निरूप्यते ॥

अव 'अथ' इत्यादि ग्रन्थ से ग्रन्थकार जगत् के (जन्म) उत्पत्ति क्रम के निरूपणकी प्रतिज्ञा करते हैं ॥

तत्रसर्गाद्यकालेपरमेश्वरःसृज्यमानप्रपंचवैचित्र्यहेतुप्राणिकर्म सहकृतोऽपरिमितानिरूपितशक्तिविशेषविशिष्टमायासहितः सन्नामरूपात्मकनिखिलप्रपंचं प्रथमं बुद्धावाकलय्येदं करिष्यामीतिसंकल्पयति "तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेय"इति"सोकामयत बहुस्यांप्रजायेय"इत्यादिश्रुतेः। तत आकाशादीनिपंचभूतानि अपंचीकृतानि तन्मात्रपदप्रतिपाद्यानि उत्पद्यन्ते । तत्राकाशस्यशब्दोगुणः । वायोस्तुशब्दस्पर्शौ । तेजसस्तुशब्दस्पर्शरूपाणि। अपांतु शब्दस्पर्शरूपरसाः । पृथिव्यास्तुशब्दस्पर्शरूपरसगंधाः ॥

यहाँ होनेवाले प्रपञ्चकी विचित्रता के कारणीभूत जो प्राणिसमुदाय के अनेकप्रकारके शुभाशुभ कर्म, उन कर्मों की सहकारतासे तथा अनन्त अनिर्वचनीय शक्तिविशेषविशिष्ट माया की सहकारतासे सर्व के आद्य कालमें परमेश्वर इस नामरूपात्मक यावत् प्रपञ्चको पहले अपनी बुद्धि में जानकर 'इदं करिष्यामि'अर्थात्'इसबुद्धिस्थ प्रपञ्चको मैं निर्माण करूं'इत्याकारक संकल्प करता है । 'वह ब्रह्म इच्छा करता भया कि मैं प्रजारूपेण उत्पन्न होकर बहुत रूप होवों' 'वह परमेश्वर कामना करता भया कि मैं प्रजारूपेण उत्पन्न हुआ वहुत रूप होवों' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनउक्त उत्पत्ति में प्रमाण हैं । एवं उक्त प्रकारसे परमेश्वर के ईक्षण संकल्प प्रयत्नके अनन्तर अपञ्चीकृत अर्थात् पञ्चीकरणको न

प्राप्त हुए आकाशादि पञ्चमहाभूत, उत्पन्न होते हैं। उन अपञ्चीकृत आकाशादि पञ्चभूतों में आकाशका 'शब्द' गुण है। वायुके शब्द तथा स्पर्श दो गुण हैं। तेजके शब्द, स्पर्श, तथा रूप, तीन गुण हैं। जलके शब्द, स्पर्श, रूप, तथा रस, चार गुण हैं। एवं पृथिवीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध पाँचगुण हैं।१४।

नचशब्दस्याकाशमात्रगुणत्वं वाय्वादावपितदुपलंभात् नचासौभ्रमःबाधकाभावात् इमानिभूतानित्रिगुणमायाकार्य्याणित्रिगुणानि गुणास्सत्त्वरजस्तमांसि एतैश्च सत्त्वगुणोपेतैः पंचभूतैर्व्यस्तैः पृथक् पृथक् क्रमेण श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणानि पंचज्ञानेन्द्रियाणि जायंतेः। एतेभ्य पुनराकाशादिगतसात्विकांशेभ्यः मिलितेभ्यः मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानिजायंते। श्रोत्रादीनां पंचानां क्रमेणदिक्वातार्कवरुणाश्विनोधिष्ठातृदेवताः मनआदीनां चतुर्णां क्रमेण चन्द्रचतुर्मुखशंकराच्युताः अधिष्ठातृदेवताः॥

नैयायिकलोग शब्दको केवल आकाश मात्रका गुण मानते हैं, परन्तु यह मन्तव्य ठीक नहीं, क्योंकि वायुआदिकोंमें भी शब्दका उपलाभ होता है। यदि वायुआदिकोंमें शब्दप्रतीतिको भ्रमरूपकहें तो सोभी ठीक नहीं क्योंकि उसका बाध नहीं होता. यह आकाशादि पञ्चमहाभूत त्रिगुणमायाके कार्य्य होनेसे त्रिगुणात्मक हैं। गुणशब्दसे सत्त्वरजस्तमोगुणोंका ग्रहण है। इन सत्त्वगुणप्रधान व्यस्त पञ्चभूतोंसे अर्थात् सात्विक अंशप्रधान जुदा २ आकाशादि पञ्चभूतोंसे क्रमसे जुदा जुदा श्रोत्र त्वक् चक्षुः रसना घ्राण अर्थात् आकाशकी सात्विक अंश प्रधानसे श्रोत्र। एवंभूत वायुसे त्वक्। एवंभूत तेजसे चक्षुः। एवंभूत जलसे रसना तथा एवंभूत पृथिवीसे घ्राण यह पाञ्च ज्ञानइन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। एवं आकाशादि पञ्चमहाभूतोंके समुदित सात्विकअंशसे मनः बुद्धि अहंकार तथा चित्त ये चार उत्पन्न होते हैं। एवं श्रोत्रादि पांच ज्ञानइन्द्रियोंके यथाक्रम दिक्, वायु, सूर्य्य,वरुण, अश्विनीकुमार ये पाँच अधिष्ठातृदेवता हैं। तथा मन आदि चतुष्टयके क्रमसे चन्द्र,ब्रह्मा,महादेव, तथा विष्णु ये चार अधिष्ठातृदेवता हैं॥

एतैरेवरजोगुणोपेतैः पंचभूतैर्व्यस्तैर्यथाक्रमं वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानि कर्मेन्द्रियाणि जायन्ते। तेषांच क्रमेण वह्नीन्द्रो

पेन्द्रमृत्युप्रजापतयोऽधिष्ठातृदेवताः, रजोगुणोपेतपंचभूतैरेव मिलितैः पंचवायवः प्राणापानव्यानोदानसमानाख्या जायन्ते, तत्रप्राग्गमनवान्, वायुःप्राणः नासादिस्थानवर्ती, अर्वाग्गमनवानपानः पाय्वादिस्थानवर्ती,विष्वग्गतिमान्व्यानः अखिलशरीरवर्ती,ऊर्ध्वगमनवानुत्क्रमणवायुरुदानःकंठस्थानवर्ती,अशितपीतान्नादिसमीकरणः समानः नाभिस्थानवर्ती। तैरेव तमोगुणोपेतैरपंचीकृतभूतैः पंचीकृतानि जायंते। "तासां त्रिवृत्तं त्रिवृतमेकैकांकरवाणि"इतिश्रुतेः पंचीकृतोपलक्षणार्थत्वात् ॥

एवं रजोअंशप्रधान इनही व्यस्त पञ्चमहाभूतोंसे यथाक्रमसे वाक्, (पाणि) हस्त, पाद, (पायु) गुदा, तथा (उपस्थ) लिङ्ग ये पाँच कर्मइन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। इन पाँचोंके क्रमसे अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र यमराज तथा प्रजापति ये पाँच अधिष्ठातृदेवता हैं । एवं रजोगुणप्रधान इनही संमिलित पञ्चभूतोंसे प्राण, अपान व्यान, उदान, समान, यह पाँच प्रकारका वायु उत्पन्न होता है । उनमें 'प्राक् अर्थात् आगेको गमन करनेवाले वायु का नाम 'प्राण' है । नासिकादि स्थानमें प्राण वायु रहता है। एवं 'अर्वाक्' अर्थात् अधोगमनवाले वायुका नाम 'अपान' है। गुदादि स्थानमें उसका निवास है। एवं 'विष्वक्' अर्थात् सर्वतो गमनवाले वायुका नाम 'व्यान' है, समग्र शरीरमें उसका निवास है । एवं जीवके लोकान्तर यात्राकालमें ऊर्ध्व गमनवाले वायुका नाम 'उदान' है। कंठस्थानमें उसका निवास है। खाये पीये पदार्थके पाचन करनेवाले वायुका नाम 'समान' है, नाभि प्रदेशमें उसका निवास है। यह पूर्वोक्त यावत् सृष्टि अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंका कार्य्य है । एवं पूर्वोक्त वही अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत तमोगुणके प्रधान होनेसे पञ्चीकरणको प्राप्त होते हैं । 'उन तन्मात्रोंमेंसे एक एकके तीन तीन विभाग करताहूं' इत्यादि अर्थवाली श्रुतिवचन पञ्चीकरणका उपलक्षण अर्थात् सूचक है। भाव यह कि, यद्यपि जहाँतहाँ पुराणवचनोंके सिवाय किसी प्रामाणिक शास्त्रमें पञ्चीकरणकी प्रक्रिया नहीं दीख पड़ती, किन्तुच्छान्दोग्य उपनिषद्में भूतोंकी उत्पत्ति कहकर उनका 'तासांच त्रिवृतं त्रिवृतं' इत्यादि श्रुतिवचनसे त्रिवृत करण कहा है तथापि भाष्यकारकी संमतिसे च्छान्दोग्यश्रुतिप्रोक्त त्रिवृत्त करण पञ्चीकरणका उपलक्षण अर्थात् उपलखायक है ॥

पंचीकरणप्रकारश्चेत्थम्-आकाशमादौद्विधा विभज्य तयोरेक भागं पुनश्चतुर्द्धाविभज्य तेषां चतुर्णामंशानां वाय्वादिषुचतुर्षु भूतेषु संयोजनं, एवं वायुंद्विधा विभज्य तयोरेकं भागं चतुर्द्धा विभज्य तेषां चतुर्णामंशानामाकाशादिषु संयोजनं एवंतेज आदीनामपि तदेवमेकैकभूतस्यार्द्धं स्वांशात्मकमर्द्धांतरं च तुर्विधभूतमयमिति पृथिव्यादिषु स्वांशाधिक्यात्पृथिव्यादि व्यवहारः ॥

तदुक्तम्-"वैशेष्यात्तुतद्वादस्तद्वाद" इति ॥

उस पञ्चीकरणका प्रकार ऐसे है कि, आकाशके प्रथम समान दो भाग करके उनमेंसे एक भागके फिर चार हिस्से करके उन चारोंभागोंको आकाशको छोडकर बाकी वायु आदि चारोंभूतोंके साथ एक एक भागको मेल देना. ऐसेही वायुके प्रथम समान दो भाग करके.उनमेंसे एक भागके फिर चार हिस्से करके उन चारों भागोंको वायुको छोडकर बाकी आकाशादि चारों भूतोंके साथ एक एक भागको मेलना ऐसेहीं तेज आदि तीनोंमें भी जानलेना. एवं इस प्रकारके भूतोंके विभाग करनेसे भूतोंमें आधा आधा भाग तो अपना विद्यमान रहा तथा आधा आधा भाग अपनेसे भिन्न चारोंके मिलानसे मिला. एवं पृथिवी जलादि भूतोंमें अपने अपने भागके अधिक होनेसे 'यह पृथिवी है' या 'यह जल है' इत्यादि व्यवहार होता रहता है. इसी वार्ताको दूसरे अध्यायके चतुर्थ पादके अन्तिमसूत्रमें व्यासदेवने भी कहा है कि, पृथिवी जलादि भागोंके विशेष होनेसे 'यह पृथिवी है' 'यह जल है' इत्यादि व्यवहार होता है । 'तद्वादः' यह दुबारा पाठ अध्यायकी समाप्तिका सूचक है । इति ॥

पूर्वोक्तैरपंचीकृतैर्लिङ्गशरीरं परलोकयात्रानिर्वाहकं मोक्षप र्यंतं स्थायि मनोबुद्धिभ्यामुपेतं ज्ञानेन्द्रियपंचककर्मेंद्रियपं चकप्राणादिपंचकसंयुक्तं जायते ।

तदुक्तम्-पंचप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।

अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥१॥ इति ॥

तच्च द्विविधं परमपरंच ।

तत्रपरं हिरण्यगर्भलिंगशरीरं, अपरमस्मदादिलिंगशरीरं तत्र हिरण्यगर्भलिंगशरीरं महत्तत्त्वम् । अस्मदादिलिंगशरीरमहंकारइत्याख्यायते ॥

एवं पूर्वोक्त अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों से लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है । उस लिंगशरीर ही के जीवको लोक लोकान्तर में गमन होता है. इस लिंग शरीरकी मोक्षपर्य्यन्त स्थिति रहती है. तथा मनः बुद्धि श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानइन्द्रिय, वागादि पञ्चकर्मइन्द्रिय, प्राणादि पञ्च प्राणोंके साथ इसकी उत्पत्ति होती है इसी वार्ता को प्राचीन आचार्य्यलोगोंने भी कहा है कि "पाँच प्राण मन बुद्धि तथा श्रोत्र वागादि दश इन्द्रियोंसे समन्वित तथा अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों का कार्य्य सूक्ष्मशरीर इस जीवके लोक परलोकके भोग का साधन है" ॥ १ ॥ वह सूक्ष्म शरीर दो प्रकार का है, एक पर सूक्ष्मशरीर है दूसरा अपर सूक्ष्मशरीर है. उन में ब्रह्माण्ड मात्र व्यापि होनेसे 'पर' तो हिरण्यगर्भ का लिंगशरीर है और केवल शरीर मात्र व्यापि होनेसे 'अपर' अस्मदादिके लिङ्गशरीर हैं। उन में हिरण्यगर्भके लिङ्गशरीर को 'महत्तत्त्व' तथा अस्मदादिकोंके लिङ्गशरीर को 'अहंकार' भी कहते हैं ॥

एवं तमोगुणयुक्तेभ्यः पंचीकृतभूतेभ्यो भूम्यंतरिक्षस्वर्महर्जनस्तपः सत्यात्मकस्योर्ध्वलोकसप्तकस्य अतलवितलसुतलतलातलरसातल महातल पातालाख्याधोलोकसप्तकस्य ब्रह्मांडस्य जरायुजांडजस्वेदजोद्भिज्जाख्यचतुर्विधस्थूलशरीराणामुत्पत्तिः । तत्र जरायुजानि जरायुभ्योजातानि मनुष्यपश्वादिशरीराणि । अंडजानि अण्डेभ्योजातानि पक्षिपन्नागादिशरीराणि । स्वेदजानि स्वेदाज्जातानि यूकामशकादीनि। उद्भिज्जानि भूमिमुद्भिद्यजातानि वृक्षादीनि । वृक्षादीनामपि पापफलभोगायतनत्वेन शरीरत्वम् ॥

एवं तमोगुणसंयुक्त पंचीकृत पञ्चमहाभूतों से भूर्लोक, अन्तरिक्षलोक स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, तथा सत्यलोक, इन सात ऊपर के लोकोंकी उत्पत्ति होती है तथा अतललोक, वितललोक, सुतललोक, तलातल लोक, रसातललोक, महातललोक, तथा पाताललोक, इन सात नीचेके लोकोंकी

उत्पत्ति होती है. एवंभूत ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके अनन्तर उस में जरायुज, अण्डज, स्वेदज, तथा उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके जीवोंके स्थूल शरीरोंकी उत्पत्ति होती है। उनमें 'जरायुज'नाम जरायुसे उत्पन्न होनेवाले 'मनुष्य' 'पशु'आदिके शरीरोंका है। 'अण्डज' नाम अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले 'पक्षी' 'सर्प' आदि शरीरोंका है। 'स्वेदज' नाम स्वेदसे उत्पन्न होनेवाले 'यूका' 'मच्छर' आदिके शरीरोंका है। एवं 'उद्भिज्ज' नाम भूमिको उद्भेदन करके उत्पन्न होनेवाले वृक्षादिकोंका है। वृक्षादिकोंको भी पापफल भोगके (आयतन) स्थान होनेसे 'शरीर' कह संकते हैं ॥

तत्र परमेश्वरस्य पंचतन्मात्राद्युत्पत्तौ सप्तदशावयवोपेतलिंग शरीरोत्पत्तौच हिरण्यगर्भस्थूलशरीरोत्पत्तौसाक्षात्कर्तृत्वं इतरनिखिलप्रपंचोत्पत्तौहिरण्यगर्भादिद्वारा "हंताहमिमास्तिस्रोदेवताः" "अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणि" इति श्रुतेः। हिरण्यगर्भोनाम मूर्तित्रयादन्यः प्रथमो जीवः॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥
आदि कर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ १ ॥

"हिरण्यगर्भःसमवर्तताग्रेभूतस्य" इत्यादि श्रुतेः।
एवं भूतभौतिकसृष्टिर्निरूपिता॥

उनमें पूर्वोक्त पञ्चतन्मात्रादिकों की उत्पत्ति में तथा मन बुद्धि आदि सप्तदश अवयवयुक्त लिङ्गशरीरकी उत्पत्तिमें एवं हिरण्यगर्भ के स्थूलशरीरकी उत्पत्ति में परमेश्वरको साक्षात् कारणता है। अर्थात् एतादृश सृष्टिका परमेश्वर साक्षात् 'कर्ता' रूप कारण है और बाकी यावत् प्रपञ्च की उत्पत्ति में परमेश्वर को हिरण्यगर्भादिद्वारा कारणता है.(हन्त) अर्थात् हर्षपूर्वक मैं यह पूर्व कही 'तेजः, 'अप्' तथा 'अन्न' रूपी तीन देवता स्वरूप हूं तथा 'एतद् जीव आत्मस्वरूप से इन में प्रवेश करके नामरूप का विस्तार करता हूं' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन हिरण्यगर्भादिद्वारा परमेश्वर के कर्ता होनेमें प्रमाण हैं। 'हिरण्यगर्भ' नाम उक्त मूर्ति तीन से भिन्न प्रथम जीवका है। "वही निश्चयपूर्वक प्रथम शरीरी है। वही प्रथम पुरुष है। वही सम्पूर्ण भूतों का आदिकर्ता है। वही ब्रह्मा रूपसे सब देवों के अग्रभाग अर्थात् प्रथम वर्तमान था;।१। तथा हिरण्यगर्भरूपेण

सर्व देवों के अग्रभाग में वर्तमान था सम्पूर्ण भूतों का पतिरूपसे प्रथम वही उत्पन्न हुआथा'' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्त मूर्ति तीनसे भिन्न प्रथम जीव के होनेमें प्रमाण हैं इसरीतिसे भूतभौतिक सृष्टिका निरूपण किया ॥

इदानीं प्रलयो निरूप्यते ॥

अब 'इदानीं' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रंथकार प्रलय के निरूपण की प्रतिज्ञा करते हैं ॥

प्रलयोनाम त्रैलोक्यनाशः।सच चतुर्विधः,नित्यः प्राकृतो नैमित्तिक आत्यन्तिकश्चेति । तत्र नित्यः प्रलयः सुषुप्तिः, तस्याः सकलकार्यप्रलयरूपत्वात् । धर्माधर्मपूर्वसंस्काराणां च तदा कारणात्मनावस्थानम् । तेन सुषुप्तोत्थितस्य नसुखदुःखाद्यनुभवानुपपत्तिः,नवास्मरणानुपपत्तिः, नच सुषुप्तावन्तःकरणस्य विनाशे तदधीनप्राणादिक्रियानुपपत्तिः । वस्तुतः श्वासाद्यभावेपि तदुपलब्धेः पुरुषांतरविभ्रममात्रत्वात् सुप्तशरीरोपलंभवत् ॥

प्रलय नाम त्रिलोकी के विनाश का है । वह विनाश चार प्रकारका है। प्रथम नित्य है । दूसरा प्राकृत है । तीसरा नैमित्तिक है । चौथा आत्यन्तिक है। उनमें नित्यप्रलय तो सुषुप्तिअवस्था का नाम है । क्योंकि सुषुप्ति में भी सम्पूर्ण कार्य्यजातका प्रलय होजाता है । जीवों के धर्म अधर्म तथा पूर्व संस्कारों का उस सुषुप्तिकालमें कारणरूपसे अवस्थान अर्थात् स्थिति होती है । इसलिये सुषुप्तिसे उत्थान हुए पुरुषके सुखदुःखादिविषयक अनुभवकी अनुपपत्ति नहीं है किन्तु सोनेसे अनन्तर उठकर भी पूर्व सुखदुःखादिका अनुभव बन सकता है । एवं पूर्वदृष्ट पदार्थोंके स्मरणकी अनुपपत्ति भी नहीं है । किन्तु स्मरणभी बन सकता है । (शंका) प्राणोंकी निश्वास प्रश्वासादि क्रिया केवल अन्तःकरणही के अधीन है. एवं अन्तःकरणके सुषुप्तिकालमें विनाश होनेसे अर्थात् स्वकारणरूपेण परिणत होनेसे उसके अधीन होनेवाली प्राणादि क्रियाभी नहीं हुई चाहिये. (समाधान) सुषुप्त पुरुषके वास्तव श्वासादिके अभाव होनेसे भी उनकी दूसरे जाग्रित पुरुषको उपलब्धि होनी उस जाग्रित पुरुषका विभ्रम मात्र है । अर्थात् जैसे सुषुप्तपुरुषकी दृष्टिमें स्वशरीरसत्ताका लेशभी नहीं परन्तु दूसरा निकटस्थ

जाग्रित पुरुष उसीके शरीरकी भ्रान्तिसे कल्पना करता है।वैसेही सुषुप्त पुरुष की दृष्टिसे प्राणसत्ताके न होनेसेभी दूसरे समीपवर्ति पुरुषको प्राणसत्ताकी भ्रांतिहुईहै॥

न चैवं सुप्तस्य परेतादविशेषः सुप्तस्य हि लिंगशरीरं संस्कारात्मनाऽत्रैववर्तते परेतस्य तु लोकांतरे इति वैलक्षण्यात् । यद्वा अंतःकरणस्यद्वेशक्ती, ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिश्चेति।तत्र ज्ञानशक्तिविशिष्टान्तःकरणस्य सुषुप्तौविनाशः, नक्रियाशक्तिविशिष्टस्येति प्राणाद्यवस्थानमविरुद्धं "यदा सुप्तः स्वप्नं न कंचनपश्यति,अथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति,अथैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति सतासोम्यतदासंपन्नो भवति, स्वमपीतो भवति" इत्यादि श्रुतिरुक्तसुषुप्तौ मानम् ॥

(शंका) यदि ऐसा है तो सुषुप्तपुरुषको (परेत) मुरदेसे अविशेष अर्थात् परेतसदृशही होना चाहिये. (समाधान) सुषुप्त पुरुषका लिङ्गशरीर कारण रूपसे यहांही विद्यमान है और परेतपुरुषका लिंगशरीर तो जन्मान्तरीय तत्त-देहजनक अदृष्टरूप संस्कारोंसे लोकान्तरमें प्राप्त हुआ है; यही दोनोंकी परस्पर विलक्षणता है । (शंका) जाग्रित पुरुषको सुषुप्त पुरुषका शरीर तथा उसमें प्राणक्रियाका भ्रमसे भान होता है, और कर्मइन्द्रियोंके व्यापारादिका भ्रमसे भान नहीं होता, इसमें विनिगमक क्या है ? अर्थात् एकही शरीरमें किसी अंशकी भ्रमसे प्रतीति तथा किसी अंशकी न प्रतीति इस विषमतामें नियामक कौन है? । (समाधान) अथवा ऐसे समझो कि अन्तःकरणकी शक्ति दो हैं; एक ज्ञान शक्ति है, दूसरी क्रियाशक्ति है । उनमें ज्ञानशक्तिविशिष्ट अन्तःकरणका सुषुप्तिकालमें विनाश होता है । क्रियाशक्ति विशिष्ट अन्तःकरणका विनाश नहीं होता; इस लिये सुषुप्तपुरुषके प्राणादिकोंका संचारभी बन सकता है कोई विरोध नहीं है । "जब यह जीव सुषुप्तिअवस्थाको प्राप्त होता है उस कालमें कुछ भी 'स्वप्न' अर्थात् शुभ या अशुभ वासना विलास नहीं देखता है।(अथ) उसके अनन्तर इस प्राणसंज्ञक अन्तर्यामीरूप ब्रह्ममें अभिन्न होता है । (अथ) उसके अनन्तर सुषुप्तिकालमें इस प्राणसंज्ञक अन्तर्यामिमें सम्पूर्ण संज्ञाओंके साथ वाणी भी विलयको प्राप्त होती है" इत्यादि अर्थवाली कौषीतकी शाखाकी श्रुति भी उक्त सुषुप्तिअवस्थामें प्रमाण है. एवं " हे सोम्य (तदा) उस सुषुप्तिकालमें यह

जीव सद्रूप ब्रह्मके साथ (सम्पन्न) अभेदको प्राप्त होता है. तथा 'स्व' शब्द वाच्य ब्रह्ममें (अपीत) लीनताको प्राप्त होता है " इत्यादि अर्थवाली छान्दोग्यकी श्रुतिभी उक्त सुषुप्तिमें प्रमाण है ॥

प्राकृतप्रलयस्तु कार्यब्रह्मविनाशनिमित्तकः सकलकार्यनाशः यदातु प्रागेवोत्पन्नब्रह्मसाक्षात्कारस्य कार्य्यब्रह्मणोब्रह्मांडाधिकारलक्षणप्रारब्धकर्म्मसमाप्तौ विदेहकैवल्यात्मिका परामुक्तिः तदातल्लोकवासिनामप्युत्पन्नब्रह्मसाक्षात्काराणां ब्रह्मणासहविदेहकैवल्यम् ॥

"ब्रह्मणासहते सर्वेसम्प्राप्ते प्रतिसंचरे ॥
परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम्" इतिश्रुतेः ॥

प्राकृतप्रलय नाम कार्य्यब्रह्मविनाशनिमित्तक यावत् कार्य्यविनाशका है अर्थात् यावत् कार्य्यका स्वकारणीभूत प्रकृतिमें विलयका नाम प्राकृतप्रलय है । यहां'कार्य्यब्रह्म'नाम हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा का है और जिस कालमें कार्य्य ब्रह्मरूप प्रथम जीवको प्रथमही ब्रह्मात्मके साक्षात्कार होनेसे यावत् ब्रह्माण्डोंके स्वामित्वके सम्पादक प्रारब्धकर्म्मोंके विनाशके अनन्तर विदेह कैवल्यात्मिका परामुक्ति होती है अर्थात् जिसकालमें यदि हिरण्यगर्भरूप जीवको सृष्टि विलयके प्रथमही ब्रह्मात्मसाक्षात्कार होजाय तो उसके ब्रह्माण्डाधिकारके सम्पादक प्रारब्धकर्मोंकी समाप्ति होती है । तथा उसकी विदेहकैवल्यआत्मिका परामुक्ति होती है । तब उस कालमें उस हिरण्यगर्भके लोकमें अर्थात् ब्रह्मलोकमें निवास करनेवाले जीवोंको भी ब्रह्मात्मक साक्षात्कार होनेसे उस हिरण्यगर्भके साथही उन जीवोंका भी विदेहकैवल्य होता है । "प्रतिसंचर अर्थात् प्राकृतप्रलयके प्राप्त होनेसे 'पर' हिरण्यगर्भके 'अन्त' अर्थात् मुक्तिकालमें सत्यलोकवासी लोग कृतात्मा होकर अर्थात् ब्रह्मात्मतत्त्वसाक्षात्कारसम्पन्न होकर सभी ब्रह्माके साथही परमपदको अर्थात् विदेहकैवल्यको प्राप्त होते हैं" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन जीवोंके विदेहकैवल्यमें प्रमाण हैं ॥

एवं स्वलोकवासिभिः सह कार्य्यें ब्रह्मणि मुच्यमाने तदधिष्ठितब्रह्माण्डतदन्तर्वर्तिनिखिललोकतदंतर्वर्तिस्थावरादीनांभौतिकानां भूतानां च प्रकृतौ मायायांच लयः, नतु ब्रह्मणि वा

धरूपविनाशस्यैव ब्रह्मनिष्ठत्वात् । अतः प्राकृत इत्युच्यते । कार्यब्रह्मणोदिवसावसाननिमित्तकस्त्रैलोक्यमात्रप्रलयः नैमित्तिकप्रलयःब्रह्मणोदिवसश्चतुर्युगसहस्रपरिमितकालः। "चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते" इति वचनात् ॥ प्रलयकालो दिवसकालपरिमितः रात्रिकालस्यदिवसकालतुल्यत्वात् प्राकृतप्रलयेनैमित्तिकप्रलये च पुराणवचनानि ॥

एवं अपने लोकमें निवास करनेवाले प्राणिसमुदायके साथ कार्य्यब्रह्मके मुक्त होनेसे उस कार्य्यब्रह्मके आश्रित यावत् ब्रह्माण्डोंका तथा उन ब्रह्माण्डोंके अन्तर्वर्ति यावत् लोकोंका तथा उन लोकोंके अन्तर्वर्ति होनेवाले स्थावर जंगम भूत भौतिक यावत् प्राणियोंका प्रकृतिमें लय होता है । किन्तु ब्रह्ममें नहीं होता; क्योंकि बाधरूप विनाश का ब्रह्मनिष्ठ होनेका नियम है । प्रकृति में विलय होनेहीसे इसका नाम प्राकृतप्रलय है। एवं कार्य्यब्रह्मके दिवस के समाप्त होनेसे त्रिलोकी अर्थात् भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोकके विलयमात्रका नाम नैमित्तिकप्रलय है।कार्य्यब्रह्म अर्थात् ब्रह्मा का दिवस,हमारे चार चार युगोंके एक सहस्रवार व्यतीत होनेसे एक दिवस होता है । 'चार चार युगोंकी एक सहस्र चौंकडीका नाम ब्रह्माका दिवसहै' इत्यादि अर्थवाले पुराण वचन उक्त अर्थमें प्रमाण हैं। एवं प्रलयकालभी दिवसकालके समानही है अर्थात् जितना कालपर्य्यन्त ब्रह्माका दिवस रहताहै उतनेही कालपर्य्यन्त प्रलयभी रहताहै; क्योंकि प्रलयकाल ब्रह्माका रात्रिकाल है और रात्रिकाल प्रायः दिवसकाल के तुल्यही होताहै उक्त प्राकृतप्र, लयमें तथा नैमित्तिकप्रलयम पुराणवचन प्रमाणीभूत हैं ॥

द्विपरात्वर्द्धेत्वतिक्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
तदाप्रकृतयः सप्त कल्प्यंते प्रलयाय हि ॥ १ ॥
एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते ॥

इतिवचनं प्राकृतप्रलयेमानम् ।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्रविश्वसृक् ॥
शेतेनंतासनेनित्यमात्मसात्कृत्यचाखिलम् ॥ १ ॥

इतिवचनंनैमित्तिकप्रलये मानम् ॥

हमलोगोंके दोपरार्द्धके व्यतीत होनेसे अर्थात् हमलोगोंके एकपरार्द्धवर्षके बीतनेसे ब्रह्माके पचासवर्ष होते हैं. तथा दोपरार्द्धवर्षके बीतनेसे ब्रह्माके शतवर्ष होतेहैं और एतादृश शतवर्ष परिमितही ब्रह्माका आयु है. "एवं अस्मदादिकोंके दो परार्द्ध तथा वही परमेष्ठी ब्रह्माके शतवर्षके व्यतीत होनेसे उसकालमें महत्तत्त्व, अहंकार-पंचतन्मात्रारूप सप्तप्रकृतियोंका स्वकारणीभूत मूलप्रकृति अर्थात् प्रधान विलय होताहै; हेराजन्! इसीका नाम प्राकृतप्रलय है, क्योंकि इसमें यावत् प्राकृत पदार्थोंका स्वकारणीभूत प्रकृतिमें लय होताहै" इत्यादि अर्थवाले पुराणवचन प्राकृत प्रलयमें प्रमाण हैं। एवं "जिसकालमें विश्वस्रष्टा ब्रह्मा सम्पूर्ण विश्वको स्वात्मामें विलय करके 'अनन्त' नामक अपने आसनपर शयन करताहै उसकालका नाम नैमित्तिकप्रलयकाल है। और उस विलयका नाम नैमित्तिकप्रलय है," इत्यादि अर्थवाले पुराणवचन नैमित्तिकप्रलयमें प्रमाण हैं ॥

तुरीयप्रलयस्तु ब्रह्मसाक्षात्कारनिमित्तकः सर्वमोक्षः सचैकजीववादेयुगपदेव,नानाजीववादे तु क्रमेण"सर्वएकीभवन्ति"इत्यादिश्रुतेः। तत्राद्यास्त्रयोपि लयाः कर्मोपरतिनिमित्ताः, तुरीयस्तु ज्ञानोदयनिमित्तः लयोज्ञानेन सहैवेतिविशेषः एवंचतुर्विधः प्रलयोनिरूपितः ॥

एवं चतुर्थप्रलय, ब्रह्मसाक्षात्कार निमित्तक है अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार होनेसे चौथा प्रलय होताहै, वह चतुर्थ प्रलयसर्व मोक्षस्वरूप है अर्थात् अज्ञानके साथ यावत् अज्ञानके कार्यका विनाशस्वरूप है। वह एकजीव वाधके सिद्धान्तसे तो यावत् कल्पित जीवोंकी ना अपेक्षा कर, केवल एक महाजीवके तत्त्वसाक्षात्कारसे युगपत् अर्थात् एककालावच्छेदेन यावत् प्रलय होताहै। और नानाजीववादके सिद्धान्तसे तो क्रमक्रमसे जिस जिस जीवको तत्त्वसाक्षात्कार होताहै उस उसकी अपेक्षासे प्रलय होताहै। "सम्पूर्ण जीव अपने जीवत्वभावको छोड़कर अवस्थाविशेषमें एकरूप होतेहैं" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्त चतुर्थ प्रलयमें प्रमाण हैं। इन चारों प्रकारके प्रलयमें प्रथमके तीन तो प्रकृतिमें लयस्वरूपहैं तथा प्राणियोंके कर्म उपरतिनिमित्तक हैं। और चतुर्थ तो ब्रह्मात्मऐकत्व ज्ञाननिमित्तक होनेसे ब्रह्मज्ञानके साथही उसका भी विलय होता है. यह इन उक्त प्रलयों में विशेष है. इस प्रकार से चारों प्रकारके प्रलय का निरूपण किया ॥

तस्येदानींक्रमो निरूप्यते ॥

अब 'तस्य' इत्यादि ग्रन्थ से ग्रन्थकार प्रलयके क्रमके निरूपणकी प्रतिज्ञाकरतेहैं।

भूतानां भौतिकानांच न कारणलयक्रमेण लयः कारणलयसमये कार्य्याणामाश्रयांतराभावेनावस्थानानुपपत्तेः किंतुसृष्टिक्रमविपरीतक्रमेणतत्तत्कार्यनाशेतत्तज्जनकादृष्टनाशस्यैवप्रयोजकतया उपादाननाशस्याप्रयोजकत्वात् । अन्यथा न्यायमते महाप्रलये पृथिवीपरमाणुगतरूपरसादेरविनाशापत्तेः ॥

इस भूतभौतिक सृष्टि का जैसे नैयायिकोंने माना है कि "कारणनाशात्कार्य्यनाशो भवति" इत्यादि विनाशक्रम नहीं है, क्योंकि यदि कारणके विनाशके पश्चात् भाविकार्य्य का विनाश मान लिया जाय तो घटादि कार्योंके कपालादि कारणके विनाशकाल में घटादि कार्य्य का आश्रय सिवा कपालोंके कोई दूसरा तो हैही नहीं तौ फिर घटादि कार्य्योंकी स्थिति किसके आश्रय होगी ? अर्थात् कार्य्य से प्रथम कारण का विनाश मानने से कार्य्यकी कारणके विनाश से पीछे स्थिति नहीं बन सकती किन्तु जिस क्रम से सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है उससे विपरीत क्रम से विनाश होता है घटपटादि तत्तत् कार्य्यके विनाश में उस उस कार्य्यके जनक प्राणियोंके अदृष्टोंके विनाश ही को हेतुता है । किन्तु उपादानके विनाशके कार्य्यविनाश में हेतुता नहीं है अन्यथा उपादानकारणके विनाश से कार्य्य विनाश माननेवाले नैयायिकके मतसे महाप्रलयकाल में पृथिवीपरमाणुगत रूपरसादिकों का विनाश नहीं हुआ चाहिये। क्योंकि परमाणुगत रूपरसादिकों को उपादानकारणीभूत परमणुओंका विनाश उसको स्वीकृत नहीं है और पार्थिवरूप रसादि भी उसके सिद्धान्त में नित्य नहीं हैं किन्तु तेजःसंयोग से उत्पन्न होनेसे 'पाकज' अर्थात् अनित्य हैं इसलिये नैयायिककल्पित विनाश क्रमसंयुक्त नहीं है ॥ २६ ॥

तथाच पृथिव्याः अप्सु, अपां तेजसि, तेजसो वायौ, वायोराकाशे, आकाशस्य जीवाहंकारे, तस्यहिरण्यगर्भाहंकारे, तस्य चाविद्यायामित्येवं रूपाः प्रलयाः । तदुक्तम् विष्णुपुराणे--

जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते ॥
तेजस्यापः प्रलीयंते तेजो वायौ प्रलीयते ॥ १ ॥

वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते ॥
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन् निष्कले संप्रलीयते ॥२॥ इति ।
एवंविधप्रलयकारणत्वंतत्पदार्थस्यब्रह्मणस्तटस्थलक्षणम् ॥

किन्तु पृथिवी का जल में विलय, तथा जल का तेज में विलय तथा तेज का वायु में विलय; एवं वायु का आकाश में, आकाश का जीवके अहंकार में, जीवके अहंकार का हिरण्यगर्भके अहंकार में, हिरण्यगर्भके अहंकार का अविद्या में, विलय होता है; इसरीति से प्रलयक्रम का मानना युक्तियुक्त है. यही प्रलय का स्वरूप विष्णुपुराण में भी कहा है "हे देवऋषे ! इस संसारकी प्रतिष्ठा अर्थात् मूलस्थिति ऐसी है कि—इस पृथिवीका जल में विलय होता है, जल का तेजमें विलय होता है, तेज का वायु में विलय होता है, वायु का आकाश में विलय होता है, आकाश का अव्यक्तशब्दवाच्य जीवके अहंकार में विलय होता है तथा अव्यक्त का हे ब्रह्मन्! आदिपुरुष हिरण्यगर्भ में विलय होता है" इत्यादि अर्थवाले विष्णुपुराणके वचन उक्त प्रलय में प्रमाण हैं. इस प्रकारके प्रलय का कारण होना 'तत्' पदवाच्य ब्रह्म का तटस्थलक्षण है ॥

ननुवेदांतैर्ब्रह्मणिजगत्कारणत्वेनप्रतिपाद्यमानेसतिसप्रपंचब्रह्म स्यादन्यथासृष्टिवाक्यानामप्रामाण्यापत्तेरितिचेत्, न, नहि सृष्टि वाक्यानां सृष्टौतात्पर्यं किंतु अद्वितीये ब्रह्मण्येव ॥

(शंका) यह जो आपने 'तत्' पदार्थका लक्षणस्वरूप कहा सो यह क्या यथार्थ है? कि अथवा अयथार्थ है? यदि यथार्थ कहो तो वेदान्तवचनोंसे ब्रह्ममें जगत्की कारणताका प्रतिपादन होनेसे ब्रह्म सप्रपञ्चसिद्ध होगा अर्थात् आपका सिद्धान्तीभूत निष्प्रपञ्च निष्कल ब्रह्म सिद्ध नहीं होगा और यदि उक्त लक्षण स्वरूपको 'अन्यथा' अर्थात् अयथार्थ कहो तो उसके प्रतिपादक श्रुतिपुराणादिवचनोंको अप्रमाणता होगी. (समाधान) सृष्टिबोधक श्रुतिस्मृतिपुराणादि वचनोंका सृष्टिमें तात्पर्य्य नहीं है । किन्तु सच्चिदानन्द परिपूर्ण अद्वितीय ब्रह्ममें तात्पर्य्य है. भाव यह कि जैसे भोजनार्थ शत्रुगृहमें गमन करनेवाला पुरुष, अपने स्नेहीके 'विषं भुङ्क्ष्व' इत्यादि वाक्य श्रवण करनेसे उस वाक्यके अर्थको प्रकृतमें बाधित शोचकर प्रकृत तात्पर्य्य अभावपूर्वक शत्रुगृहमें भोजनके निषेधपरत्व उक्त वाक्य को निश्चय करता है । वैसेही सृष्टिप्रतिपादक वाक्योंको भी "नेह नानाऽस्ति

किंचन" "न निरोधो न चोत्पत्तिः" इत्यादि श्रुतिबोधित अर्थके प्रतिपादक होनेसे उनका स्वार्थमें तात्पर्य्य नहीं है किन्तु अद्वितीय ब्रह्मपरत्व होनेसे वही उनका प्रतिपाद्यार्थ बन सकता है ॥

तत्प्रतिपत्तौ कथंसृष्टेरुपयोगः इत्थं यदिसृष्टिमनुपन्यस्य निषेधोब्रह्मणि प्रपंचस्य प्रतिपाद्येत तदाब्रह्मणि निषिद्धस्य प्रपंचस्य वायौ प्रतिषिद्धस्य रूपस्येव ब्रह्मणोऽन्यत्रावस्थान शंकायां ननिर्विचिकित्समद्वितीयत्वं प्रतिप्रादितं स्यात् ततः सृष्टिवाक्याद्ब्रह्मोपादेयत्वज्ञानेसत्युपादानं विनाकार्यस्यान्यत्रसद्भावशंकायां निरस्तायां नेतिनेतीत्यादिना ब्रह्मण्यपि तस्यासत्वोपपादनेप्रपंचस्य तुच्छत्त्वावगमे निरस्ताखिलद्वैत विभ्रममखंडं सच्चिदानंदैकरसं ब्रह्मसिद्ध्यतीति परंपरयासृष्टिवाक्यानामप्यद्वितीये ब्रह्मण्येव तात्पर्यम् ॥

(शंका) उस ब्रह्मविषयक सम्यक्बोध सिद्धिके लिये सृष्टिका उपयोग क्या है? तथा कैसे है ? (समाधान) 'इत्थं' अर्थात् इस रीतिसे ब्रह्मज्ञानमें सृष्टिका उपयोग है कि यदि प्रथम सृष्टिका ब्रह्ममें ना उपन्यास करके उसमें उसका निषेध किया जाय तो ब्रह्ममें निषेधित किये हुए प्रपंचका ब्रह्मसे अन्य अधिकरणमें अवस्थानका सन्देह हो सकता है अर्थात् जैसे आरोपसे विना वायुमें रूपका " वायौ रूपं नास्ति" इत्यादि प्रत्ययसे करा हुआ निषेध, रूपादिकोंका घटादिकोंमें अवस्थान बोधन करताहै । वैसेही आरोपसे विना ब्रह्ममें प्रपञ्चका निषेध, प्रपञ्चका अधिकरणान्तरमें सद्रूपेण अवस्थान बोधन करता. यदि ऐसा होता तो निःसन्देह ब्रह्मकी अद्वितीयताका प्रतिपादन अतिकठिन होता अर्थात् (निर्विचिकित्स) निःसन्देह अद्वितीय ब्रह्मका प्रतिपादन न होसकता इसलिये सृष्टिप्रतिपादक वाक्योंसे पहले ब्रह्मउपादाननिरूपित उपादेयत्व, प्रपञ्चमें सिद्ध हुआ तो अपने उपादानसे विना कार्य्यकी अन्यत्र सद्भावकी शंकाके निरास होनेसे पीछे ' नेतिनेति ' इत्यादि श्रुतिवचनोंसे ब्रह्ममेंभी उक्त प्रपञ्चको असत्त्वप्रतिपादनसे प्रपञ्चमें तुच्छता निश्चय हुई तो निरस्त यावत् द्वैतके विभ्रमपूर्वक अखण्ड. सच्चिदानन्द एकरस शुद्ध ब्रह्मकी सिद्धि होती है । इसरीतिसे परंपरासम्बन्धसे सृष्टिप्रतिपादक वचनोंकाभी अद्वितीयब्रह्माहीमें तात्पर्य्यका अवधारण होताहै ॥

उपासनाप्रकरणपठितसगुणब्रह्मवाक्यानांचोपासनाविध्यपेक्षितगुणारोपमात्रपरत्वं, नगुणपरत्वम् । निर्गुणप्रकरणपठितानां सगुणवाक्यानांतुनिषेधवाक्यापेक्षितनिषेध्यसंपादकत्वेनविनियोगइति नकिंचिदपिवाक्यमद्वितीयब्रह्मप्रतिपादनेनविरुध्यते।

एवं उपासनाके प्रकरणमें पठित तथा सगुणब्रह्मके प्रतिपादक "य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः" इत्यादि श्रुतिवचनोंका उपासनाविधिमें अपेक्षित जो तत्तद्गुण, तादृश गुणोंके आरोपमात्रमें तात्पर्य्य है । किन्तु गुणोंके सद्रूपप्रतिपादनमें नहीं है । भाव यह कि–जैसे "योषिद्वाव गौतमाग्निः" अर्थात् 'हे गौतम! (योषित्) स्त्रीभी अग्निरूपसे जानकर वीर्य्यरूपआहुतिके करने योग्य है' इत्यादि श्रुतिवचनोंमें स्त्रीमें अग्निके गुणोंके आरोपसे उपासना कहीहै, वैसेही गुणोंके आरोपसे उपासनाका सर्वत्र सम्भव होनेसे 'केवलो निर्गुणश्च' इत्यादि श्रुतिवचनोंसे विरुद्धार्थप्रतिपादन करनेवाले गुणविधायक वचनोंको मानना युक्तियुक्त नहींहै । इसलिये सगुण ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले वचनोंका चित्तकी एकाग्रता द्वारा अद्वितीय ब्रह्मके बोधन हीमें तात्पर्य्य निश्चय होताहै । एवं निर्गुण ब्रह्मप्रतिपादक प्रकरणमें पठित"मूर्तं चामूर्त्तं च मर्त्यं चामर्त्यंच"इत्यादि सगुणब्रह्मप्रतिपादक श्रुतिवचनोंका तो निषेधवचनोंको अपेक्षित जो निषिध्यमान पदार्थ, तादृश निषिध्यमानपदार्थसम्पादकत्वेन 'विनियोग' उपयोग होसकताहै । अर्थात् निषेधवाक्योंको निषेधनीयपदार्थकी अपेक्षा होनेसे तत्सम्पादकत्वेन सगुण बोधकवचन सफलहैं.इसरीतिसे किसीभी श्रुतिवचनका अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादनमें परस्पर किंचित्भी विरोध नहींहै ॥

तदेवं स्वरूपतटस्थलक्षणलक्षितं तत्पदवाच्यमीश्वरचैतन्यंमायाप्रतिबिंबितमितिकेचित्।तेषामयमाशयः-जीवपरमेश्वरसाधारणंचैतन्यमात्रं·बिंबं, तस्यैव बिंबस्याऽविद्यात्मिकायां मायायां प्रतिबिंबमीश्वरचैतन्यमन्तःकरणेषु प्रतिबिंबं जीवचैतन्यं "कार्योपाधिरयंजीवः कारणोपाधिरीश्वर" इति श्रुतेः।एतन्मते जलाशयगतशरावगतसूर्यप्रतिबिंबयोरिवजीवपरमेश्वरयोर्भेदः अविद्यात्मकोपाधेर्व्यापकतया तदुपाधिकेश्वरस्यापि व्याप

कत्वं, अन्तःकरणस्य परिछिन्नतया तदुपाधिकजीवस्यापि परिछिन्नत्वम्।एतन्मतेऽविद्याकृतदोषाजीवेइवपरमेश्वरेपिस्युरु पाधेः प्रतिबिंबपक्षपातित्वादित्यस्वरसात् ॥

इस प्रकारसे पूर्वोक्त स्वरूप तथा तटस्थलक्षणसे लक्षित 'तत्' पदके वाच्य ईश्वरचैतन्यको कई एक विद्वान् लोग 'मायाप्रतिबिम्बित' मानते हैं। उनके हृदयका आशय यह है कि जीव परमेश्वर साधारण चैतन्यमात्र तो बिम्बरूप है। उसीही बिम्बरूप चेतनका अविद्याअपर नामक मायामें प्रतिबिम्ब पडनेसे उसकी ईश्वरसंज्ञा होती है। तथा अन्तःकरणोंमें प्रतिबिम्ब पडनेसे जीवसंज्ञा होती है. "अन्तःकरणरूप कार्य्यउपाधिउपहित चैतन्य का नाम जीव है. तथा मायारूप कारणउपाधिउपहित चैतन्य का नाम ईश्वर है" इत्यादि अर्थ वाला श्रुतिवचन उक्त अर्थमें प्रमाण है. इस सिद्धान्तमें जलके (आशय) महा ह्रदगत सूर्य्यप्रतिबिम्बके तथा (शराव) कटोरे आदि अल्पपात्रगत सूर्य्य प्रतिबिम्बके परस्पर भेदके सदृश जीव तथा परमेश्वर का भेद है. अविद्या-आत्मकउपाधिके व्यापक होनेसे तादृश उपाधिउपहित ईश्वर में भी व्यापकता है. एवं, अन्तःकरणरूप उपाधिके परिच्छिन्न होनेसे तादृश उपाधिउपहित जीवमें भी परिच्छिन्नता है. इस पूर्वोक्त सिद्धान्तमें यह अस्वरस है कि अविद्या-कृत रागादि दोष, जैसे जीवमें प्रतीत होते हैं वैसेही ईश्वर में भी प्रतीत होने चाहिये क्योंकि प्रतिबिम्बके पक्षपाति होना अर्थात् स्वगत धर्म्मोंको प्रतिबिम्बमें प्रतीत करवाना उपाधि का सहज स्वभाव है ॥

बिंबात्मकमीश्वरचैतन्यमित्यपरे। तेषामयमाशयः—एकमेवचैतन्यं बिंबत्वाक्रांतमीश्वरचैतन्यं प्रतिबिंबत्वाक्रांतं जीवचैतन्यं बिंबप्रतिबिंबकल्पनोपाधिश्चैकजीववादे अविद्या, अनेकजीव वादे तु अन्तःकरणान्येव अविद्यान्तःकरणरूपोपाधिप्रयुक्तो जीव परभेदः उपाधिकृतदोषाश्च प्रतिबिंबे जीवे एव वर्तंते, नतुबिम्बे परमेश्वरे उपाधेः प्रतिबिंबपक्षपातित्वात्।एतन्मते च गगनसूर्यस्य जलादौ भासमानप्रतिबिंबसूर्यस्येव जीवपरयोर्भेदः ॥

इस पूर्वोक्त दोषसे विमुक्त होनेके लिये दूसरे कई एक विद्वान् लोग बिम्बा-त्मक चैतन्यही को ईश्वर चेतन मानते हैं. उनके हृदयका अभिप्राय यह है कि एकही चेतनमें बिम्बरूप होनेसे 'ईश्वर' व्यवहार होता है. तथा प्रतिबिम्ब

स्वरूप होनेसे 'जीव' व्यवहार होता है। अर्थात् बिम्बत्वधर्माक्रान्त बिम्बरूप चेतन का नाम 'ईश्वर' है. तथा प्रतिबिम्बत्व धर्माक्रान्त प्रतिबिम्बरूप चेतन का नाम 'जीव' है. यहां बिम्ब प्रतिबिम्बभाव कल्पना करनेकी उपाधि एकजीववादके सिद्धान्त से तो अविद्याको माना है तथा नाना जीववादके सिद्धान्तसे अन्तःकरणोंको मानाहै। अविद्या तथा अन्तःकरणरूप उपाधि प्रयुक्तही जीव ब्रह्मका भेद है। अर्थात् कल्पित उपाधिके उच्छेदसे प्रतिबिम्ब स्वरूप जीव स्वकीय बिम्बस्वरूप ब्रह्मसे पृथक् स्वरूप नहीं है। उपाधिकृत रागद्वेषादि यावत् दोष प्रतिबिम्बात्मक जीव हीमें प्रतीत होतेहैं किन्तु बिम्बात्मक ब्रह्ममें नहीं क्योंकि प्रतिबिम्बपक्षपाति होना, अर्थात् स्वगतधर्मोंको प्रतिबिम्बमें प्रतीत करवाना उपाधिका सहजधर्म है। इस बिम्बप्रतिबिम्बवाद रूप सिद्धान्तमें गगनगत सूर्य्यके तथा जलाशय आदिकोंमें प्रतीत हुये प्रतिबिम्ब स्वरूप सूर्य्यके परस्परभेदकी तरह जीवब्रह्मका भेद है अर्थात् प्रतीतिमात्र है; वास्तव नहीं॥

ननु ग्रीवास्थमुखस्यदर्पणप्रदेश इव बिंबचैतन्यस्य परमेश्वरस्य जीवप्रदेशेऽभावात्तस्य सर्वांतर्यामित्वंनस्यादितिचेन्न साभ्रनक्षत्रस्य आकाशस्य जलादौप्रतिबिंबितत्वे बिंबभूतमहाकाशस्यापि जलादिप्रदेशसंबंधदर्शनेन परिच्छिन्नबिंबस्य प्रतिबिंबदेशासंबंधित्वेप्यपरिच्छिन्नब्रह्मबिंबस्य प्रतिबिंबदेशसंबंधाविरोधात्॥

(शंका) जैसे ग्रीवामें होनेवाला मुख, दर्पणदेशमें नहीं है अर्थात् जैसे ग्रीवागत मुखका दर्पणदेशमें अभाव है वैसेही यदि बिम्बचैतन्यस्वरूप परमेश्वरकाभी प्रतिबिम्बस्वरूप जीवप्रदेशमें अभावमानें तो परमेश्वरमें सर्वान्तर्यामीपना या सर्वोपादानपना नहीं बनसकेगा. (समाधान) (अभ्र) मेघ तथा (नक्षत्र) तारागणके सहित आकाशका प्रतिबिम्ब, जलादिकोंमें देखनेमें आता है और उसके बिम्बभूत महाआकाशकाभी जलादिकोंमें प्रवेशरूपसम्बन्ध अनुभवसिद्ध है इसलिये परिच्छिन्न, अर्थात् प्रदेशवृत्तिबिम्बका सम्बन्ध प्रतिबिम्बदेशमें न होनेसेभी आकाशकी तरह अपरिच्छिन्न ब्रह्मस्वरूप बिम्बके सम्बन्धका प्रतिबिम्बप्रदेशके साथ कोई विरोध नहीं है भाव यह है कि परिच्छिन्न बिम्बका प्रतिबिम्बप्रदेशके साथ सम्बन्ध न होनेसेभी अपरिच्छन्नबिम्बके सम्बन्धका प्रतिबिम्बप्रदेशके साथ कुछ विरोध नहीं है॥

नच रूपहीनस्य ब्रह्मणो नप्रतिबिंबसंभवः रूपवत एव तथा त्वदर्शनादितिवाच्यम्,नीरूपस्यापिरूपस्यप्रतिबिंबदर्शनात् । नचनीरूपस्य द्रव्यस्य प्रतिबिंबाभावनियमः आत्मनो द्रव्यत्वाभावस्योक्तत्वात् ॥

(शंका)रूपरहितब्रह्मका प्रतिबिम्ब नहींपडसकता क्योंकि जहां तहां रूपवाले पदार्थों हीका प्रतिबिम्बदेखनेमें आता है। और जो आपने आकाशका उदाहरण दियाहै वहभी सयुक्त नहीं हैं क्योंकि वहां प्रतिबिम्ब तो केवल अभ्र नक्षत्र आदिकोंकाही पड़ता है;आकाश रूप रहित है;इसलिये उसमें प्रतिबिम्बसम्पादन योग्यता नहीं है (समाधान) रूपरहित पदार्थका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता यह कथन तुम्हारा मिथ्या है क्योंकि रूपराहित भी रूपका प्रतिबिम्ब देखनेमें आता है (शंका) हमारा यह नियम है कि रूपरहित द्रव्यका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता है एवं रूप यद्यपि रूपरहित है तथापि वह द्रव्य नहीं है किन्तु गुण है इस लिये हमारे नियम का रूपमें व्यभिचार नहीं है (समाधान) यदि ऐसा है. तो आत्मा भी तो द्रव्य नहीं है क्योंकि आत्मामें द्रव्यत्वाभाव हम पूर्व सिद्धकर चुके हैं । भाव यह कि समवायिकारण होना या गुणोंके आश्रय होना आपके सिद्धान्तमें द्रव्यका लक्षण है । परन्तु आत्मा तो किसीका समवायिकारण नहीं है क्योंकि समवाय कुछ वस्तु नहीं है । युक्तिसे उसका सिद्ध होना दुर्घट है और नाहीं समवाय सम्बन्धसे आत्मामें गुणादि रहते हैं जो जिससे उसको 'समवायिकारण' या गुणोंका आश्रय मान लिया जाय किन्तु आत्मा तो 'केवलो निर्गुणश्च' इत्यादि श्रुतिवचनोंसे निर्गुण स्वरूप है । एवं आत्माको द्रव्यस्वरूप न होनेसे उसके प्रतिबिम्ब पड़नेमें कोई प्रतिरोध नहीं है ॥

"एकधाबहुधाचैवदृश्यतेजलचन्द्रवत्"
"यथाह्ययंज्योतिरात्माविवस्वानपोभिन्नाबहुधैकोनुगच्छन्"
इत्यादिवाक्येन ब्रह्मप्रतिबिंबाभावानुमानस्य बाधितत्वाच्च तदेवंतत्पदार्थोनिरूपितः ॥

(शंका) "ब्रह्म न प्रतिबिम्बितुमर्हति, अचाक्षुषत्वात् गन्धादिवत्" अर्थात् 'ब्रह्मको गन्धादिकी तरह अचाक्षुष होनेसे उसका प्रतिबिम्बभी नहीं पड़ सकता' इत्यादि अनुमानप्रमाणसे ब्रह्मके प्रतिबिम्बका अभाव सिद्ध होता है (समाधान) ब्रह्मको द्रव्य मानकर भी ब्रह्मके प्रतिबिम्बके अभावके साधक अनुमानोंका

'एकधा' अर्थात् ईश्वररूपसे तथा बहुधा जीवरूपसे एकही आत्मा जल चन्द्रकी तरह प्रतीत होता है. जैसे "विवस्वान् अर्थात् सूर्य जलगत प्रतिबिम्बद्वारा भेदको प्राप्त हुआ एक भी बहुतरूपसे प्रतीति होता है, वैसेही यह ज्योतिःस्वरूप आत्मा भी वास्तवसे एकरूप होनेसे भी अन्तःकरणादि उपाधियोंसे भेदको प्राप्त हुआ बहुतरूपसे प्रतीत होता है" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवाक्योंसे बाध हो सकता है।एवं पूर्वोक्त प्रकारसे यहां तक 'तत्' पदार्थ का निरूपण किया है॥

इदानीं त्वंपदार्थो निरूप्यते ॥

अब 'इदानीं' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार 'त्वं' पदार्थके निरूपणकी प्रतिज्ञा करते हैं ॥

एकजीववादेऽविद्याप्रतिबिंबो जीवः, अनेकजीववादे अंतःकरण प्रतिबिंबः । स च जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपावस्थात्रयवान्, तत्रजाग्रद्दशानामेन्द्रियजन्यज्ञानावस्था अवस्थांतरे इन्द्रियाभावान्नातिव्याप्तिःइन्द्रियजन्यज्ञानंचांतःकरणवृत्तिः,स्वरूपज्ञानस्यानादित्वात् सा चांतःकरणवृत्तिरावरणाभिभवार्थेत्येकं मतम् ॥

यहां एकजीववादके सिद्धान्तसे अविद्याके प्रतिबिम्बका नाम 'जीव' है। तथा अनेकजीववादके सिद्धान्त से अन्तःकरण में प्रतिबिम्ब का नाम 'जीव' है। वह जीव जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थावाला है. उनमें इन्द्रियजन्य ज्ञानअवस्था का नाम जाग्रत्अवस्था है स्वप्नसुषुप्ति आदि अवस्थाआन्तर में इन्द्रियों का अभाव होताहै इसलिये जाग्रत्लक्षणकी अवस्थांतर में अतिव्याप्ति नहींहै यहां 'इन्द्रियजन्यज्ञान' शब्द से अन्तःकरणकी वृत्ति का ग्रहण है, किन्तु स्वरूपभूत ज्ञान का नहीं; क्योंकि स्वरूपभूतज्ञान तो अनादि है इसलिये उत्पन्न नहीं होता वह अन्तःकरणकी वृत्तिः कइएक विद्वानोंने अवरण भङ्गके लिये मानी है अर्थात् कइएक विद्वान् लोक आवरणभङ्ग मात्र वृत्तिका प्रयोजन मानते हैं ॥

तथाहि अविद्योपहितचैतन्यस्य जीवत्वपक्षे घटाद्यधिष्ठानचैतन्यस्य जीवरूपतया जीवस्य सर्वदाघटादिभानप्रसक्तौ घटाद्यवच्छिन्नचैतन्यावरकमज्ञानं मूलाविद्यापरतंत्रमवस्थापदवाच्यमभ्युपगन्तव्यम् । एवं सति घटादेर्न सर्वदाभानप्रसंगः अनावृतचैतन्यसंबंधस्यैव भानप्रयोजकत्वात्।

तस्यचावरणस्य सदातनत्वे कदाचिदपिघटभानं न स्यादिति तद्भंगे वक्तव्ये तद्भंगजनकं न चैतन्यमात्रं, तद्भासकस्य तदनिवर्तकत्वात् ।नापि वृत्त्युपहितचैतन्यं परोक्षस्थलेपि तन्निवृत्त्यापत्तेरित्ति परोक्षवृतिव्यावृत्तवृत्तिविशेषस्यतदुपहितचैतन्यस्य वाऽऽवरणभंगजनकत्वमित्यावरणाभिभवार्था वृत्तिरित्युच्यते ॥

(तथाहि) उसका प्रकार यह है कि, अविद्याउपहित चैतन्यके जीवपक्षमें अर्थात् जब अविद्याउपहित चैतन्य को जीवस्वरूप माना, तौ घटपटादिकों का अधिष्ठानभूत चैतन्य भी जीवस्वरूप ही है इसलिये जीव को घटपटादि विषयों का भान सर्वदाकाल होना चाहिये; परन्तु होता तो किसी जीवको नहीं; याते इस आपत्तिके वारणके लिये घटादिअवच्छिन्न चैतन्यके आच्छादन करनेवाला तथा मूलाविद्याके वशवर्ति 'अवस्था' इस पद का वाच्य कोईक 'अज्ञान' अवश्य स्वीकार करना चाहिये । एवं आवरकअज्ञानके स्वीकार करने से घटादि पदार्थोंके सर्वदा भानकी प्रसक्ति नहीं है क्योंकि पदार्थभान का प्रयोजक अनावृत चैतन्यके साथ पदार्थ का सम्बन्ध है और आवरकअज्ञानके सत्त्वकाल में घटादिचैतन्य अनावृत नहीं है, किन्तु आवृत है । ऐसे ही उस आवरकअज्ञान को भी यदि सदैव रहनेवाला मान लियाजाय तो घटादि पदार्थों का कदापि भान नहीं हुआ चाहिये । परन्तु घटादिभान का होना तो सर्वानुभवसिद्ध है; इसलिये उक्त आवरकअज्ञानका किसी रीतिसे भंग कहना चाहिये । उसका भञ्जक अर्थात् निवर्तक यदि चैतन्यमात्र को मानें तो उचित नहीं; क्योंकि उसके भासक अर्थात् सत्तास्फूर्तिप्रदानेन सहायक चैतन्य में उसकी निवर्तकता नहीं बन सकती. भाव यह कि, अज्ञान को सत्तास्फूर्ति देनेवाला समानचैतन्य अज्ञान का विरोधि कदापि नहीं हो सकता और यदि वृत्तिउपहित चैतन्य को उक्त अज्ञान का निवर्तक मानें तो तौभी उचित नहीं. यदि ऐसा होय तो परोक्षस्थल में भी अज्ञान की निवृत्ति होनी चाहिये । इसलिये परोक्षवृत्ति से भिन्न वृत्तिविशेष को अर्थात् अपरोक्षात्मकवृत्ति को अथवा वृत्तिउपहित चैतन्य को उक्त अज्ञानरूप आवरणके निवर्तक होनेसे आवरण का (अभिअव) तिरस्कार करनेके लिये विचारशील लोगोंने अन्तःकरणकी वृत्तिको अंगीकार किया है ॥

संबंधार्था वृत्तिरित्यपरं मतम् । तत्राविद्योपाधिकोऽपरिच्छिन्नो

जीवः, स च घटादिप्रदेशे विद्यमानोपि घटाद्याकारापरोक्षवृत्ति विरहदशायां न घटादिकमवभासयति घटादिनातस्य संबंधा भावात्। तदाकारवृत्तिदशायां तु भासयति तदासंबंधसत्त्वात्॥

घटादि विषयोंके साथ चेतनका विशेषसम्बन्ध सम्पादनके लिये वृत्तिका स्वीकार करना, यह दूसरा मत है। इस सिद्धान्तमें 'अविद्याउपाधिक तथा अपरिच्छिन्न' अर्थात् परिच्छेदरहित 'जीव' का स्वरूप है। वह जीव स्वरूपसे घटादिप्रदेशमें विद्यमान हुआभी जबतक घटादिविषयके आकार अर्थात् घटादिविषयके अवगाहन करनेवाली अन्तःकरणकी अपरोक्षवृत्ति उत्पन्न न हो तबतक घटादिविषयोंको प्रकाश नहीं करता। क्योंकि घटादिविषयोंके साथ उस जीवचेतनका कोई विशेषसम्बन्ध नहीं है। और घटादि विषयोंके अवगाहन करनेवाली अतःकरणकी वृत्तिके होनेसे तो उक्त जीवचेतन घटादिविषयोंको प्रकाश कर सकताहै। क्योंकि उस कालमें उसका वृत्तिद्वारा सम्बन्ध विशेष विद्यमान है॥

नन्वविद्योपाधिकस्यापरिच्छिन्नस्य जीवस्य स्वत एव समस्तवस्तुसंबंधस्य वृत्तिविरहदशायां संबंधाभावाभिधानमसंगतम्। असंगत्वदृष्ट्यासंबंधाभावाभिधाने वृत्त्यनंतरमपि संबंधो नस्यादितिचेत्, उच्यते। नहिवृत्तिविरहदशायां जीवस्य घटादिना सह संबंधसामान्यं निषेधामः, किंतर्हि घटादिभानप्रयोजकं संबंधविशेषं स च संबंधविशेषो विषयस्य जीवचैतन्यस्य व्यंग्यव्यंजकतालक्षणः कादाचित्कः तत्तदाकारवृत्तिनिबंधनः॥

(शंका) अविद्यारूप उपाधिवाला तथा परिच्छेदरहित जीवचेतन, तो स्वाभाविकही समग्रवस्तुजातके साथ सम्बन्धवाला है उसका वृत्तिके अभावकालमें पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नहींहै। ऐसा कहना उचित नहींहै और यदि आपके चित्तमें उसकी असंगता, निराकारता, निर्विकारताको लेकर सम्बन्धके अभावके कहनेका तात्पर्य्य होय, तो वृत्तिके उत्पन्न होनेसे पीछेभी सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। क्योंकि वृत्ति कोई उसके असंगता आदि धर्मोंकी विघातक नहींहै। (समाधान) उच्यते। अन्तःकरणकी वृत्तिके अभावकालमें हम जीवचेतनका घटादिपदार्थोंके साथ सम्बन्धसामान्यका अर्थात् यावत् सम्बन्धमात्रका निषेध नहींकरते, किन्तु घटादिविषयोंके भानमें कारणीभूत किसी एक विशेषसम्बन्धका निषेध

करते हैं । वह सम्बन्धविशेष, घटादिविषयोंका तथा जीवचैतन्यका परस्पर 'व्यंग्यव्यञ्जकभाव' रूप है । अर्थात् घटादिविषय 'व्यंजक' हैं । और जीव चैतन्य उनका 'व्यंग्य' है । यह सम्बध घटादिविषयाकार वृत्ति निबन्धन होने से अर्थात् विषयाकार वृत्ति प्रयोज्य होनेसे नित्य नहीं है किन्तु कदाचित्क है ॥

तथाहि तैजसमन्तःकरणं स्वच्छद्रव्यत्वात् स्वत एव जीवचैतन्याभिव्यंजनसमर्थं घटादिकं तु न तथा अस्वच्छद्रव्यत्वात् स्वाकारवृत्तिसंयोगदशायां तु वृत्त्यभिभूतजाड्यधर्मकतया वृत्त्युत्पादितचैतन्याभिव्यंजनयोग्यताश्रयतया च वृत्त्युत्थानानंतरं चैतन्यमभिव्यनक्ति ॥

(तथाहि) उसका प्रकार यह है कि, तैजस अर्थात् सत्त्वप्रधान अन्तःकरण स्वच्छ द्रव्यस्वरूप होनेसे स्वतःही अर्थात् स्वाभाविकही जीवचैतन्यके (अभिव्यंजन) प्रतिबिम्ब ग्रहण की समर्थ रखता है। परन्तु घटादि पदार्थ तो तमःप्रधान अस्वच्छद्रव्य हैं इसलियेस्वा माक जीवचैतन्यके प्रतिबिम्ब ग्रहण की समर्थ नहीं रखते और घटादिविषयोंके साथ घटादिआकार अन्तःकरणकी वृत्तिके संयोगकालमें तो वृत्तिद्वारा घटादिविषयगत जाड्यधर्म अर्थात् आवरण दूर होता है । एवं आवरणनिवृत्तिपूर्वक वृत्तिने उत्पादन करी जो घटादिविषयोंमें चैतन्यके अभिव्यंजनकी अर्थात् प्रकाशग्रहणकी योग्यता, उस योग्यताके आश्रयभूत घटादिविषयोंमें वृत्तिके उत्थानके अनन्तर अर्थात् घटादिविषयावगाहिनी वृत्तिके उदय होनेके पीछे घटादिविषय, चैतन्यके अभिव्यंजक होते हैं । अर्थात् चैतन्यप्रतिविम्बग्राहित्वानुकूल व्यापारवाले घटादिक विषय होते हैं ॥

तदुक्तं विवरणे–अंतःकरणं हिं स्वस्मिन्निव स्वसंसर्गिण्यपि घटादौ चैतन्याभिव्यक्तियोग्यतामापादयतीति दृष्टंचास्वच्छद्रव्यस्यापि स्वच्छद्रव्यसंबंधदशायां प्रतिबिंबग्राहित्वम् । यथाकुड्यादेर्जलादिसंयोगदशायां मुखादिप्रतिबिंबग्राहिता घटादेरभिव्यंजकत्वं च तत्प्रतिबिंबग्राहित्वं चैतन्याभिव्यक्तत्वं च तत्र प्रतिबिंबितत्वम् ॥

इसी वार्ताको प्रकाशात्मस्वामीने पञ्चपादिका के विवरणमें भी कहा है, । कि "अन्तःकरण अपनी तरह अपने सम्बन्धि घटादिपदार्थोंमें भी चैतन्यके अभिव्यंजनकी अर्थात् प्रतिबिम्बग्रहणकी योग्यता को सम्पादन करदेता है–इति ।

(शंका) अस्वच्छद्रव्यमें प्रतिबिम्बग्रहणयोग्यता संसारमें दृष्ट चर नहीं है। (समाधान) स्वच्छद्रव्यके साथ सम्बन्धदशामें अस्वच्छद्रव्यमें भी प्रतिबिम्ब ग्रहणयोग्यता बन सकती है तथा संसारमें दृष्टचर भी है। जैसे जलादिकों के साथ संयोगकालमें (कुड्य) दीवार आदि अस्वच्छद्रव्योंमें भी मुखादिके प्रतिबिम्बग्रहणकी योग्यता अनुभवसिद्ध है। प्रकृतमें चैतन्यनिरूपित घटादिनिष्ठ अभिव्यंजकता केवल चैतन्यप्रतिबिम्व ग्राहित्वस्वरूपा है। ऐसेही घटादिनिरूपित चैतन्यनिष्ठ 'अभिव्यक्तत्व' भी घटादिकोंमें प्रतिबिम्बितत्वस्वरूप है अर्थात् चैतन्यप्रतिबिम्बग्राही होना घटादिकोंमें अभिव्यंजकता है। और घटादिकोंमें प्रतिबिम्बित होना चैतन्यमें अभिव्यक्तता है॥

एवंविधाभिव्यंजकत्वसिद्ध्यर्थमेववृत्तेरपरोक्षस्थले बहिर्निर्गमनांगीकारःपरोक्षस्थलेतु वह्न्यादेर्वृत्तिसंसर्गाभावेन चैतन्यानभिव्यंजकतया नवह्न्यादेरपरोक्षत्वम्।एतन्मतेच विषयाणामपरोक्षत्वं चैतन्याभिव्यंजकत्त्वमिति द्रष्टव्यम्।एवं जीवस्यापरिच्छिन्नत्वेपि वृत्तेः संबंधार्थत्वं निरूपितम्॥

अपरोक्षज्ञानस्थलमें इस पूर्वोक्त प्रकारकी अभिव्यंजकता सिद्ध करने के लियेही अन्तःकरणकी वृत्तिका बाह्यविषयदेशमें निर्गमन अंगीकार कियाहै और अनुमिति आदि परोक्षज्ञानस्थलमें तो अग्निआदिकोंके साथ अन्तःकरणकी वृत्तिका सम्बन्ध न होनेसे अग्निआदि परोक्षविषय, अपरोक्षविषयस्थलकी तरह उक्त चैतन्यके अभिव्यञ्जक नहीं होते इसलिये अग्नि आदिकोंमें अपरोक्ष व्यवहार नहीं होता इस पूर्वोक्त सिद्धान्तमें विषयगत अपरोक्षता 'चैतन्याभिव्यंजकता' मात्र समझनी चाहिये अर्थात् जो 'विषय' चैतन्यका अभिव्यंजक होगा वह इस सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष कहा जायगा। किन्तु यहां पूर्वोक्त 'विषयस्थ प्रमातृचैतन्याभिन्नत्व' रूप अपरोक्षत्व नहीं है। इस रीतिसे जीव के अपरिच्छिन्न अर्थात् परिच्छेदशून्य होने से भी उसका घटादि विषयों के साथ सम्बन्धनिरूपण करनेके लिये मध्यपाति वृत्तिका निरूपण है॥

इदानीं परिच्छिन्नत्वपक्षे संबंधार्थकत्वं निरूप्यते॥

अब 'इदानीं' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार जीवके परिच्छिन्नत्वपक्षमेंभी वृत्तिके सम्बन्धअर्थकत्वके निरूपण की प्रतिज्ञा करतेहैं॥

तथाहि अंतःकरणोपाधिको जीवः तस्य न घटाद्युपादानताघटादिदेशासंबंधात् किंतु ब्रह्मैवघटाद्युपादानं तस्य मायोपहितस्य सकलघटाद्यन्वयित्वात्।अत एव ब्रह्मणः सर्वज्ञता। तथाचजीवस्य घटाद्यधिष्ठानंब्रह्मचैतन्याभेदमंतरेण घटाद्यवभासासंभवे प्राप्ते तदवभासाय घटाद्यधिष्ठानब्रह्मचैतन्याभेदसिद्ध्यर्थं घटाद्याकारवृत्तिरिष्यते ॥ ४३ ॥

(तथाहि)उसका प्रकार यहहै कि अन्तःकरणउपहित या अन्तःकरण प्रतिविम्ब या अन्तःकरणावच्छिन्नस्वरूप जीवहै उस जीवमें घटपटादिकोंकी उपादानतानहींबन सकती क्योंकि घटपटादि विषयप्रदेशमें उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।किन्तु घटपटादि यावत् कार्य्यजातका उपादान कारण तो ब्रह्महीं बन सकता है । क्योंकि वह मायारूप बृहत्उपाधिसे उपहित है इसलिये उसका घटपटादि यावत् विषयोंके साथ अन्वय हो सकता है । मायाउपाधिउपहित होनेहीसे ब्रह्ममें सर्वज्ञता है । (तथाच) इसरीतिसे जीवचैतन्यका घटादिकोंका अधिष्ठान जो ब्रह्मचैतन्य उस ब्रह्मचैतन्यके साथ अभेदसे विना अर्थात् जबतक जीव का ब्रह्मचैतन्यके साथ अभेद न मानलिया जाय तो घटपटादिकोंका अवभास असम्भव है अर्थात् जीवको घटादिका अवभास बन नहीं सकता. भाव यह कि, अन्तःकरणउपहित जीवचैतन्य घटपटादिदेशमें अनवस्थित है अर्थात् स्थित नहीं है । इसलिये घटादिकोंके अधिष्ठानभूत ब्रह्मचैतन्यके साथ उसका अभेद भी नहीं है अभेदके न होनेसे वह घटादिकोंका अवभासकभी नहीं है । उन घटपटादिकोंके अवभास अर्थ जीवचैतन्यका ब्रह्मचैतन्यके साथ अभेद अवश्य माननीय है. उस अभेदकी सिद्धिकेलिये घटपटादिकोंके अवगाहन करनेवाली मध्यपाति अन्तःकरण की वृत्ति स्वीकार करी है ॥

ननु वृत्त्यापिकथंप्रमातृचैतन्यविषयचैतन्योरभेदः संपाद्यते। घटान्तःकरणरूपोपाधिभेदेन तदवच्छिन्नचैतन्ययोरभेदासंभवादितिचेन्नवृत्तेर्वहिर्देशनिर्गमनांगीकारेण वृत्त्यंतःकरणविषयाणामेकदेशस्थत्वेन तदुपधेयभेदाभावस्योक्तत्वात् । एवमपरोक्षस्थले वृत्तेर्मतभेदेन विनियोग उपपादितः॥

(शंका) अन्तःकरणकी वृत्तिद्वाराभी प्रमातृचैतन्य तथा विषयचैतन्यका परस्पर अभेद कैसे बन सकता है ? क्योंकि घटपटादिविषय तथा अन्तः-

करणरूप उपाधिद्वयके भेद होनेसे तादृश उपाधिद्वयावच्छिन्न चैतन्यद्वयके परस्पर अभेदका होनाभी असम्भव है ।(समाधान) हम अन्तःकरणकी वृत्तिका बहिर्देशावच्छेदेन निर्गमन अंगीकार करते हैं एवं अन्तःकरणकी वृत्ति अन्तःकरण तथा घटादिविषयोंके एकदेशमें स्थित होनेसे उपाधियोंके भेद होनेसे भी 'उपधेय' अर्थात् उपहितत्वेन कल्पनीय चैतन्यका भेद नहीं होता, इस वार्ताका हम पूर्व सविस्तर निरूपण कर चुके हैं । एवं इस पूर्वोक्त प्रकारके मतभेदसे अपरोक्षज्ञानस्थलमें अन्तःकरणकी वृत्तिका (विनियोग) उपयोग प्रतिपादन किया ॥

इन्द्रियाजन्यविषयगोचरापरोक्षान्तःकरणवृत्त्यवस्थास्वप्नावस्था जाग्रदवस्थाव्यावृत्त्यर्थं इन्द्रियाजन्येति अविद्यावृत्तिमत्यां सुषुप्तौ अतिव्याप्तिवारणायान्तःकरणेति सुषुप्तिर्नामाविद्यागोचराविद्यावृत्त्यवस्था जाग्रत्स्वप्नयोरविद्याकारवृत्ते रन्तःकरणवृत्तित्वान्न तत्रातिव्याप्तिः । अत्रकेचिन्मरणमूर्छयोरवस्थान्तरत्वमाहुः अपरेतु सुषुप्तावेवतयोरंतर्भावमाहुः ॥

एवं जाग्रत्अवस्था निरूपणके अनन्तर चक्षुः आदि इन्द्रियोंसे न उत्पन्न होनेवाली अर्थात् आंगतुकदोषसे उत्पन्न होनेवाली जो घटपटादि विषयोंके अवगाहन करनेवाली अपरोक्षरूपा अन्तःकरणकी वृत्ति, तादृश वृत्तिअवस्थाका नाम स्वप्नअवस्था है । यहां जाग्रतअवस्थाकी व्यावृके लिये अर्थात् जाग्रत् अवस्थामें अतिव्याप्तिवारणके लिये "इन्द्रियाजन्य" इस पदका निवेश किया है. जाग्रत्अवस्थामें विषयगोचर अपरोक्षअन्तःकरणकी वृत्तिः 'इन्द्रियाजन्य' नहीं है किन्तु जन्यही है; इसलिये अतिव्याप्ति नहीं है । अविद्यावृत्तिवाली सुषुप्तिमें स्वप्नअवस्थाके लक्षणकी अतिव्याप्ति वारणके लिये 'अंतःकरण' इस पदका लक्षणमें निवेश किया है । एवं अविद्या, अर्थात् अज्ञानको अवगाहन करनेवाली अविद्याकी वृत्तिअवस्था का नाम सुषुप्तिअवस्था है. जाग्रत् तथा स्वप्नअवस्था दोनोंहीमें अविद्याको अवगाहन करनेवाली वृत्ति अन्तःकरणकी वृत्ति है इस लिये उनदोनोंही में सुषुप्तिलक्षणकी अतिप्रसक्ति नहीं है । यहां अवस्थानिरूपणप्रसंगमें कईएक विद्वान्‌लोग मरण तथा मूर्च्छाको अवस्थाआन्तर मानते हैं । और दूसरे कईएक विद्वान् लोग इन दोनोंकाभी सुषुप्तिहीमें अन्तर्भाव मानते हैं ॥

तत्र तयोरवस्थात्रयांतर्भावबहिर्भावयोस्त्वंपदार्थनिरूपणे उपयोगाभावान्न तत्र प्रयत्यते तस्य च मायोपाध्यपेक्षयैकत्वं अन्तःकरणोपाध्यपेक्षया च नानात्वं व्यवह्रियते एतेन जीवस्याणुत्वं प्रत्युक्तम्। "बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेनचैव ह्याराग्रमात्रोह्यवरोपि दृष्टः" इत्यादौजीवस्य बुद्धिशब्दवाच्यान्तःकरणपरिमाणोपाधिकपरिमाणुत्वश्रवणात् ॥

परन्तु वादियोंके इस प्रकारके परस्पर विवाद होनेसे भी इन ऊपर उक्त दोनों मतोंका जाग्रत्आदि अवस्थात्रयके अन्तर्भाव या बहिर्भाव माननेसे प्रकृतमें 'त्वं' पदार्थके निरूपणमें कुछ उपयोग नहीं है। इसलिये हम भी मरण तथा मूर्च्छा अवस्थाको जाग्रत्आदि अवस्थात्रय आन्तर्भाव बहिर्भावके विचारमें प्रयत्न नहीं करते वह उक्त अवस्थात्रयवाला जीव, मायारूप उपाधिकी अपेक्षा एक है अर्थात् जीवकी उपाधि यदि माया मानें तो मायारूप उपाधिके एक होनेसे जीव भी एकही है। और यदि जीव की उपाधि अन्तःकरणको मानें तो अन्तःकरण रूप उपाधिके नाना होनेसे जीवमें भी नाना होनेका व्यवहार हो सकता है। इस पूर्वोक्त प्रकारसे तथा वक्ष्यमाण हेतुसे जीवके विभुत्वप्रदर्शनसे रामानुजादि कथित अणुजीववादका भी निरास किया। "बुद्धिआदिरूप उपाधिके अल्प परिमाणरूप गुणहीसे 'आराग्र मात्र' अर्थात् अल्पपरिमाण वाला जीवशास्त्रसे निश्चय होता है। और आत्मगुणसे अर्थात् निरुपाधिकस्वरूप आत्माके अपरिच्छिन्नत्वादि लक्षण गुणोंसे तो 'अवर' अर्थात् सर्वतो महान्स्वरूप शास्त्रसे निश्चय होता है " इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनोंसे बुद्धिशब्दवाच्य जो अन्तःकरण तादृश अन्तःकरणरूप उपाधिवाले जीवका परम अणुत्व परिमाण श्रवण होता है; निरुपाधिक चिन्मात्रका नहीं ॥

सच जीवः स्वयंप्रकाशः स्वप्नावस्थामधिकृत्य "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः" इतिश्रुतेः। अनुभवरूपश्च 'प्रज्ञानघन' इत्यादिश्रुतेः। अनुभवामीतिव्यवहारस्तु वृत्तिप्रतिबिंबचैतन्यमादायोपपद्यते एवं त्वंपदार्थो निरूपितः ॥

वह जीव स्वयंप्रकाश चेतनस्वरूप है। किन्तु नैयायिकोंकी तरह ज्ञान गुणवाला नहीं है। क्योंकि बृहदारण्यकमें स्वप्नअवस्थाके अधिकारको लेकर "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः " अर्थात् 'स्वप्नअवस्थामें यह पुरुष (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश

स्वरूपहै ' इत्यादिश्रवण होताहै तथा ' वह जीव अनुभवस्वरूप प्रज्ञानघन अर्थात् प्रज्ञानस्वरूप ' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनोंसे जीवका स्वयंप्रकाश स्वरूप श्रवण होताहै । (शंका) आपके सिद्धान्तमें जीवका यदि स्वयंप्रकाश अर्थात् अनुभवरूप स्वरूप है तो 'अहं अनुभवामि' अर्थात् ' मैं अनुभव करताहूं'। इत्यादि प्रतीति अनुभवआश्रयत्वेन होतीहै सो नहींहुई चाहिये. (समाधान) 'अनुभवामि' इत्याकारक व्यवहार तो वृत्तिप्रतिबिम्ब चैतन्यको लेकरभी बनसकताहै।भाव यह कि, जीवका वास्तवस्वरूप स्वयंज्योति है इसलिये बुद्धिवृत्ति प्रतिबिम्ब चैतन्यमें ' अनुभवामि ' इत्यादि व्यवहारका विरोध नहीं है । एवं पूर्वोक्तप्रकारसे ' त्वं ' पदार्थका निरूपण किया ॥

अधुना तत्त्वंपदार्थयोरैक्यं महावाक्यप्रतिपाद्यमभिधीयते ॥

अब ' अधुना ' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार ' प्रज्ञानंब्रह्म ' ' अहं ब्रह्मास्मि ' ' तत्त्वमसि ' 'अयमात्माब्रह्म' इति एतादृशस्वरूप ऋग्वेदादि महावाक्यप्रतिपाद्य ' तत् ' ' त्वं ' पदार्थोंकी एकताके प्रतिपादनकी प्रतिज्ञा करतेहैं ॥

ननु नाहमीश्वर इत्यादिप्रत्यक्षेण किंचिज्ज्ञत्वसर्वज्ञत्त्वविरुद्ध धर्माश्रयत्वादिलिंगेन द्वासुपर्णेत्यादि श्रुत्या–

द्वाविमौपुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

इत्यादिस्मृत्या च जीवपरभेदस्यावगतत्त्वेन तत्त्वमस्यादि वाक्यमादित्योयूपोयजमानः प्रस्तरइत्यादिवाक्यवत् उप चरितार्थमेवेति चेत्, न ॥

(शंका) ' मैं ईश्वर नहींहूं ' ' दुःखीहूं ' ' संसारीहूं ' इत्यादिप्रत्यक्षात्मकअनुभवसे ' तत् ' ' त्वं ' पदार्थोंका परस्पर अभेद नहीं है किन्तु भेद है।एवं "जीवेश्वरौ परस्परं भिन्नौ किंचिज्ज्ञत्वसर्वज्ञत्वादिविरुद्धधर्माक्रान्तत्वात् विरुद्धस्वभावत्वाच्च तेजस्तिमिरवत्" इत्यादि अनुमानोंसेभी भेदही निश्चय होताहै । एवं "द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो भि चाकशीति " अर्थात् "शरीररूप समान अर्थात् एक वृक्षमें सर्वदा मित्रतासे एकसाथ रहनेवाले ' जीव' 'ईश्वर' रूप दो पक्षी शरीररूप वृक्षमें सदैव संलग्न रहते हैं।उन दोनोंमें एक जीवरूप पक्षी तो स्वादिष्ट नानाविध कर्मफलका भोग करताहै।

और अन्य ईश्वर विचित्र कर्म्मफलभोगको नग्रहण करताहुआ केवल प्रकाश करताहै " इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनोंसेभी जीवपरका भेदही सिद्ध होताहै । ऐसे ही "इसलोकमें क्षर तथा अक्षररूप दोही पुरुष प्रतीत होतेहैं । उनमें क्षरसम्पूर्ण भूतहैं कूटस्थ अक्षर है । इन दोनोंसेभी उत्तमपुरुष परमात्मा भिन्न है इत्यादि अर्थवाले भगवद्गीताके वचनोंसेभी जीवपरका भेदही स्पष्ट होताहै । इसलिये 'तत्त्वमसि' इत्यादि वचनोंको "आदित्योयूपः" अर्थात् यह यज्ञस्तम्भ सूर्य्यरूप है ॥ तथा "यजमानः प्रस्तरः" 'अर्थात् यजमान दर्भमुष्टिस्वरूप है' इत्यादि वाक्योंकी तरह (उपचरितार्थ) गौणार्थ मानना उचित है । भाव यह कि जैसे आदित्यभिन्न यूपमेंभी श्रुतिवचनसे गौणरूपेण आदित्यव्यवहार होताहै तथा यजमानसे भिन्न दर्भमुष्टिमेंभी जैसे श्रुतिबलसे गौणरूपसे यजमानव्यवहार होताहै वैसेही वस्तुतो जीवपरके अभेदको सर्वप्रमाण बाधित होनेसेभी 'तत्त्वमसि' इत्यादिवचनोंके बलसे गौण व्यवहार होसकताहै ॥

भेदप्रत्यक्षस्य संभावितकरणदोषस्यासंभावितदोषवेदजन्य ज्ञानेन बाध्यमानत्वात् । अन्यथा चंद्रगताधिकपरिमाणग्राहिज्योतिःशास्त्रस्य चंद्रप्रादेशग्राहिप्रत्यक्षेण बाधापत्तेः । पाकरक्ते घटे रक्तोऽयं न श्याम इतिवत्सविशेषणेहीतिन्यायेन जीवपरभेदग्राहिप्रत्यक्षस्य विशेषणीभूतधर्मभेदविषयत्वाच्च ॥

(समाधान) यद्यपि आपके कथनानुसार आपके कहे प्रमाणोंका 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्योंके साथ विरोध प्रतीत होताहै इसलिये महावाक्योंको गौणार्थक मान कर व्यवस्था लगानी चाहिये तथापि व्यावहारिक भेद के साधक प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके साथ वास्तविक अभेद के बोधन करनेवाले महावाक्यों का कुछ विरोध नहीं है । क्योंकि भेदके साक्षात्कारमें करणोंके दुष्ट होनेकी भी सम्भावना होसकतीहै और वेदरूप प्रमाणको सर्वदा निर्दोष होनेसे उसमें दोषोंकी सम्भावना नहीं होसकती इसलिये असम्भावित दोषवाला जो वेद तादृश वेदजन्य ज्ञानसे प्रत्यक्षादियावत् प्रमाणोंका बाध होता है। अन्यथा यदि शास्त्रप्रमाणसे प्रत्यक्षप्रमाणकोही प्रबल मानो तो चन्द्रादि ग्रहों के अधिक प्रमाणके ग्रहण करवाने वाले ज्योतिःशास्त्रका चन्द्रादि को प्रदेश मात्र परिमाण दिखलानेवाले प्रत्यक्ष प्रमाण से बाध हुआ चाहिये । (शंका) प्रत्यक्ष तथा शब्दप्रमाण का परस्पर उपजीव्यउपजीवकभाव अर्थात् कारणकार्य्यभाव सर्वतन्त्रसिद्धान्तसिद्ध है एवं यदि आप शब्दप्रमाण को प्रबल मानोंगे तो उनके उपजीव्यउपजीवक

भाव का भंग अवश्य होगा. (समाधान) अग्निसंयोग से रक्त हुए घट में "अयंरक्तो घटो न श्यामः" इत्याकारक प्रतीति होती है. यहां 'सविशेषणेहि' इत्यादि न्याय से अर्थात् विशेषणविशिष्टमें प्रवृत होनेवाले विधिनिषेधरूप वचनों का यदि विशेष्यभाग में बाध प्रतीत हो तो वह विधिनिषेधविशेषण भाग मात्र में प्रवृत्त होकर शान्त होजाता है. जैसे पाक रक्त घट में "सोऽयं घटो रक्तो न श्यामः" इत्यादि स्थलों में श्यामतारक्तातादि धर्मोंके भेद होने से भी धर्मी विशेष्य मात्र घटादि के अभेद होनेसे उक्त वाक्य का केवल श्यामता रक्ततादि धर्मभेद ही में तात्पर्य्य निश्चय होता है । वैसे ही जीवपर के भेदग्राहि प्रत्यक्ष को भी विशेषणीभूत अल्पज्ञत्व सर्वज्ञत्वादि धर्मोंके अवगाहन करनेवाला होनेसे अर्थात् 'नाहं ईश्वरः' इत्यादि प्रत्ययोंको केवल विशेषणमात्र में उपक्षीण होनेसे केवल विशेष्य भाग में अभेदके बोधक 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्यार्थ के साथ कुछ विरोध नहीं है ॥

अत एव चनानुमानमपि प्रमाणं आगमवाधात्, मेरुपाषाणमयत्वानुमानवत्।नाप्यागमान्तरविरोधः तत्परातत्परवाक्ययोः तत्परवाक्यस्य बलवत्त्वेन लोकसिद्धभेदानुवादि द्वासुपर्णादिवाक्यापेक्षया उपक्रमोपसंहाराद्यवगताद्वैततात्पर्यविशिष्टस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य प्रबलत्वात् ॥

प्रबल आगमरूप प्रमाण से बाधित होने ही से पूर्वोक्त "जीवेश्वरौ परस्परभिन्नौ विरुद्धधर्म्माक्रान्तत्वात्" इत्यादि अनुमान भी भेद में प्रमाणीभूत नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होय तो "मेरुःपाषाणमयःपर्वतत्वात् विन्ध्यादिवत्" इत्यादि अनुमान को भी प्रमाणीभूत होना चाहिये परन्तु यह भी आगम से बाधित होनेसे प्रमाणीभूत नहीं है; इसलिये प्रकृतमें भी ऐसे ही समझना. चाहिये. एवं आगमआन्तरके साथभी 'तत्त्वमासि' आदि महावाक्यों का विरोध नहीं है क्योंकि वाक्यों के तत्पर अतत्परत्व विचार करने से तत्परायणवाक्य में प्रबलता होती है।

---

१ भाव यह कि भेद तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ज्ञात ही है और शास्त्रको प्रमाणता तो अज्ञात ज्ञापकत्वेन सिद्ध हो सकती है. एवं भेदवादीके आगम को अनुवादकत्वेन उपक्षीण होनेसे उसका अद्वैतार्थ बोधन में तात्पर्य नहीं है इसलिये उसको अतत्परता है । और तत्त्व. मस्यादि महावाक्य तो लोकसिद्ध अर्थके अनुवादक नहीं हैं किन्तु अलौकिक तथा अपूर्व अर्थ के बोधक हैं इसलिये उनको तत्पर होनेसे प्रबलता है ॥

प्रकृत में लोकप्रसिद्ध भेदके अनुवादिक 'द्वासुपर्णा' इत्यादि वाक्यों से 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों को प्रवलता है । क्योंकि उपक्रम उपसंहारादि षड्विध लिङ्गोंके अनुरोधसे इनको तात्पर्य्य का अद्वैत ही में निश्चय होता है ॥

नचजीवपरैक्ये विरुद्धधर्माश्रयत्वानुपपत्तिः, शीतस्यैव जल स्यौपाधिकौष्ण्याश्रयत्वत् । स्वभावतो निर्गुणस्यैवजीव स्यान्तःकरणाद्युपाधिककर्तृत्वाद्याश्रयत्वप्रतिभासोपपत्तेः। य दि च जलादौ औष्ण्यमारोपितं तदाप्रकृतेपि तुल्यम् । नच सिद्धान्तेकर्तृत्वस्य क्वचिदप्यभावादारोप्यप्रमाहितसंस्कारा भावे कथमारोप इतिवाच्यम्, लाघवेनारोप्यविषयसंस्कार त्वेनैवतस्यहेतुत्वात् ॥ ८९ ॥

(शंका) किंचिज्ज्ञत्व सर्वज्ञत्व आदि विरुद्ध धर्मोंके आश्रयकी अनुपपत्ति होनेसे हम जीव ईश्वरके भेदकी कल्पना करते हैं. (समाधान) जीवपरके वास्तवसे एक होनेसे भी विरुद्धधर्मोंके आश्रयत्वकी अनुपपत्ति नहीं है। जैसे वास्तवसे शीत जल अग्नि आदि उपाधिके सम्बन्धसे उष्ण प्रतीत होने लगजाता, है वैसेही स्वरूपसे निर्गुण भी जीवमें अन्तःकरणादि उपाधिके योगसे कर्तृत्वभोक्तृत्वादि मिथ्याधर्मोंकी प्रतीति होने लगजाती है । और यदि जलादिकोंमें उष्णताका आरोप कहो अर्थात् यदि अग्निगत उष्णताका जलमें मिथ्याभान मानों तो प्रकृतमें भी वैसेही अन्तःकरणगत कर्तृत्वादि धर्मोंका जीवचेतनमें मिथ्याभान वन सकता है. (शंका) आपका कहा दृष्टान्त तो विषम प्रतीत होता है। क्योंकि जैसे अग्निमें उष्णता स्वयंसिद्ध है तो उसका आरोप अन्यत्र हो सकता है, वैसेही कर्तृत्वादिका होना अन्तःकरणमें स्वयंसिद्ध नहीं है किन्तु आत्मतादात्म्यापन्नही अन्तःकरणमें कर्तृत्वादि धर्मोंका भान होता है. उससे भिन्न अनात्मपदार्थोंमें कहींभी कर्तृत्वादि धर्मोंका सम्यक् ज्ञान नहीं है तो आरोप कैसे हो सकता है? अर्थात् वेदान्तसिद्धान्तमें वास्तव कर्तृत्वादि धर्मोंके कहीं भी न होनेसे आरोप्य पदार्थके यथार्थज्ञानसे सम्पादित संस्कारोंके न होनेसे आरोप भी कभी नहीं हो सकता. (समाधान) जैसे सूर्य्यादिकिरणसम्पर्कसे प्रतीत हुए घटादिके अधः उर्द्ध्वादि भाग केवल घटादिनिष्ठ ही हैं किन्तु सूर्य्यादिनिष्ठ नहीं हैं. वैसेही आत्म सम्बन्धसे प्रतीत हुए कर्तृत्वादि धर्म भी केवल अन्तःकरणनिष्ठ ही हैं किन्तु आत्मनिष्ठ नहीं है । क्योंकि वह कूटस्थ निर्विकार है। इसलिये कर्तृत्वादि धर्मोंके कहीं पृथक् प्रतीत न होनेसे भी उनके आत्मामें आरोपका कोई बाधक नहीं है ।

क्योंकि लाघवसे आरोप्यविषय संस्कारोंको भ्रम प्रमा साधारण जन्य आरोप्य विषयक संस्कारत्वेन कारणता है । एवं पूर्व पूर्व आरोप्यविषयके संस्कार उत्तर उत्तर आरोपके प्रति कारण हो सकते हैं ॥

नच प्राथमिकारोपेकागतिः, कर्तृत्वाद्यध्यासप्रवाहस्यानादित्वात् । तत्त्वंपदवाच्ययोर्विशिष्टयोरैक्यायोगेपि लक्ष्यस्वरूपयोरैक्यमुपपादितमेव अतएव तत्प्रतिपादकतत्त्वमस्यादिवाक्यानामखंडार्थत्वं सोयमित्यादिवाक्यवत् । नच कार्यपराणामेव प्रामाण्यं,चैत्रपुत्रस्तेजात इत्यादौ सिद्धेपि संगतिग्रहात् । एवं सर्वप्रमाणाविरुद्धं तिस्मृतीतिहासपुराणप्रतिपाद्यं जीवपरैक्यं वेदान्तशास्त्रस्य विषय इतिसिद्धम् ।

इतिश्रीवेदांतपरिभाषायांविषयपरिच्छेदः ॥ ७ ॥

(शंका) सबसे प्रथम होनेवाले आरोपमें क्या गति होगी? अर्थात् वहां संस्कार नहीं बनसकेंगे (समाधान) कर्तृत्वभोक्तृत्वादि अध्यासका प्रवाह अनादि है । इसलिये ऐसे स्थलमें सबसे प्रथम पूछनाही सिद्धान्तानभिज्ञताका सूचक है. (शंका) यहां जैसे आपने कहा है वैसेही रहो तथापि परस्पर विरुद्धधर्माक्रान्त जीव ईश्वर की एकता कैसे होसकती है? (समाधान) 'तत्' 'त्वं' पदोंके वाच्यविशिष्टोंकी ऐक्यताके न होनेसे भी उनके लक्ष्यस्वरूपकी एकता बन सकती है । उसका निरूपण हम पूर्व उत्तम रीतिसे करही चुके हैं । लक्ष्यस्वरूपके एक होनेहीसे 'तत्' लक्ष्यके प्रतिपादक तत्त्वमस्यादि महावाक्योंको 'सोऽयंदेवदत्तः' इत्यादि वाक्योंकी तरह अखण्डार्थ बोधकता है. (शंका) सिद्धअर्थमें प्रयोजक वृद्धकी प्रवृत्ति आदिके न होनेसे वाक्यकी संगतिका ग्रहण भी नहीं होसकता इसलिये क्रियाऽन्वित स्वार्थपरायण वाक्योंहीमें प्रमाणता माननी उचित है.एवं सिद्धरूप ब्रह्म वेदान्तशास्त्रका प्रमेय नहीं बनसकता. (समाधान) 'हे चैत्र पुत्रस्तेजातः' अर्थात् हे चैत्र तेरे घर पुत्र उत्पन्न हुआ है । इत्यादि सिद्धार्थ वाक्योंमें भी परस्पर संगतिग्रहण देखनेमें आता है । भाव यह कि यहां पुत्रका उत्पन्न होना सिद्ध है तथापि सिद्धार्थबोधक 'चैत्र पुत्रस्ते जातः' इत्यादि वाक्यसे चैत्रके मुख प्रसन्नको देखकर इस पुत्रपदकी सुतपदार्थमें संगतिको तटस्थ पुरुष ग्रहण करलेता है इसलिये सिद्धार्थकपदमें संगतिके न ग्रहण होनेका

नियम नहीं है एवं पूर्वोक्त प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंसे अविरुद्ध तथा श्रुति स्मृति इतिहास पुराणों करके प्रतिपादित जो जीवब्रह्मकी एकता वही जीव ब्रह्मकी एकता वेदान्तशास्त्रका विषय सिद्ध है ॥

इति श्रीनिर्मलपण्डितस्वामिगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्यभाषावि-
भूषितवेदान्तपरिभाषाप्रकाशे विषयपरिच्छेदः ॥ ७ ॥

अथ प्रयोजनपरिच्छेदः ८.

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
प्रयोजनं परं प्राप्तं वन्दे श्रीगुरुनानकम् ॥ १ ॥

इदानीं प्रयोजनं निरूप्यते ॥ १ ॥

अब 'इदानीं' इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार प्रयोजनके निरूपणकी प्रतिज्ञा करते हैं ॥

यदवगतं सत्स्ववृत्तितयेष्यते तत्प्रयोजनम्।तच्चद्विविधं,मुख्यं गौणंचेति।तत्र सुखदुःखाभावौ मुख्यंप्रयोजनम् । तदन्यतरसा धनं गौणं प्रयोजनम्।सुखं चद्विविधं,सातिशयं निरतिशयंचेति। तत्र सातिशयं सुखं विषयानुषंगजनितान्तःकरणवृत्तितारत म्यकृतानंदलेशाविर्भावविशेषः "एतस्यैवानंदस्यान्यानिभूता निमात्रामुपजीवंति" इत्यादिश्रुतेः। निरतिशयं सुखंच ब्रह्मैव। "आनंदोब्रह्मेतिव्यजानात्" "विज्ञानमानन्दंब्रह्म" इतिश्रुतेः ॥

जो जाना हुआ हरएक जीवकी 'ममइदं स्यात्' इत्याकारक स्ववृत्तित्वेन इच्छा के विषय हो उसका नाम 'प्रयोजन' है । वह दो प्रकारका है । एक मुख्य है, दूसरा गौण है. उनमें सुख तथा दुःखका अभाव ये दो मुख्य प्रयोजन हैं । इन दोनोंमेंसे किसीएकके साधनका नाम गौणप्रयोजन है । उनमें सुख दो प्रकारका है । एक सातिशयसुख है, दूसरा निरातिशयसुख है । उनमें रूपरसादि विषयों के सम्बन्धसे उत्पन्न हुये अन्तःकरणकी वृत्तिकी न्यूनआधिकता कृत आनन्दलेशके आविर्भावविशेषका नाम सातिशयआनन्द है । "इसी-

महा आनन्दस्वरूप परमात्माके आनन्दलेशको ग्रहण करते हुये सम्पूर्ण प्राणी जीवनको प्राप्त होते हैं" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्त आनन्दमें प्रमाण हैं। दूसरा निरतिशयसुख तो स्वयं परमात्माही है। "आनन्दस्वरूप ब्रह्मही जानने योग्यहै" "विज्ञान तथा आनन्दस्वरूप ब्रह्म है"इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन ब्रह्मके आनन्दस्वरूप होनेमें प्रमाण हैं॥

आनंदात्मकब्रह्मावाप्तिश्च मोक्षः,शोकनिवृत्तिश्च"ब्रह्मवेदब्रह्मैव भवति"इति "तरतिशोकमात्मवित्"इत्यादिश्रुतेः। नतुलोकांतरावाप्तिः, तज्जन्यवैषयिकानंदोवा मोक्षः, तस्य कृतकत्वेनानित्यत्वेमुक्तस्य पुनरावृत्त्यापत्तेः॥

एवं आनन्दात्मक ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्तिहीका नाम मोक्ष है। अथवा शोक निवृत्ति अर्थात् अनर्थहेतुक अविद्यानिवृत्तिहीका नाम मोक्ष है। "ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूपही है" "आत्मवेत्ताशोकसे मुक्त होता है" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्तअर्थमें प्रमाण हैं। किन्तु लोकान्तरमें प्राप्त होनेका नाम 'मोक्ष' नहीं है। अथवा लोकान्तरमें प्राप्तिजन्य विषयोंसे उत्पन्न होनेवाले आनन्दविशेषका नामभी मोक्ष नहीं है। क्योंकि इस दोनों प्रकारके मोक्षके स्वरूपमें 'कृतकत्व' है अर्थात् जन्यत्व है। और जो भावरूपजन्य होता है वह नियमसे अनित्य होता है. एवं इस प्रकारके मोक्षके स्वरूप माननेसे मुक्तपुरुषकीभी पुनरावृत्ति अर्थात् मुक्तकाभी संसारचक्रमें आवागवन होना चाहिये॥

ननु त्वन्मतेप्यानंदावाप्तेरनर्थनिवृत्तेश्च सादित्वेतुल्योदोषः, अनादित्वेमोक्षमुद्दिश्य श्रवणादौ प्रवृत्त्यनुपपत्तिरितिचेत्, न, सिद्धस्यैवब्रह्मस्यरूपस्य मोक्षस्यासिद्धात्वभ्रमेण तत्साधने प्रवृत्त्युपपत्तेः अनर्थनिवृत्तिरप्यधिष्ठानभूतब्रह्मस्वरूपतया सिद्धैवलोकेपिप्राप्तप्राप्तिपरिहृतपरिहारयोः प्रयोजनत्वं दृष्टमेव॥

(शंका) यह दोष आपके सिद्धान्तमें भी तो समानही है क्योंकि आपके सिद्धान्तमें भी परमानन्दस्वरूपकी प्राप्ति तथा समूल अनर्थकी निवृत्ति सादि है। इसलिये तुल्यही दोष है। और यदि आप उसको सादि ना मानों किन्तु अनादि मानों तो मोक्षके उद्देश्यसे अधिकारी पुरुषकी श्रवण मनन आदिकोंमें प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये। (समाधान) हमारे सिद्धान्तमें ब्रह्मस्वरूप मोक्ष वस्तुतः स्वतःसिद्ध है उस सिद्धही ब्रह्मस्वरूप मोक्षमें असिद्धत्वके भ्रमसे उसके

साधनमें प्रवृत्तिभी बन सकती है. (शंका) यद्यपि आनन्दस्वरूप ब्रह्म स्वतः सिद्ध है उसकी प्राप्तिभी स्वतःसिद्ध सम्भव होसकती है तथापि समूल अनर्थकी निवृत्ति तो अभावस्वरूपा है वह स्वयंसिद्ध कैसे होसकती है? (समाधान) समूल अनर्थकी निवृत्तिभी अधिष्ठानभूत ब्रह्मस्वरूपाही है इसलिये उसकाभी स्वयं सिद्ध होना सम्भव है (शंका) स्वतःसिद्ध वस्तुमें पुरुषार्थ देखनेमें नहीं आता यदि मोक्षभी आपका ऐसाही है तो उसमें पुरुषार्थ सिद्ध न होगा (समाधान) लोकमेंभी तो प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति तथा परिहृत वस्तुके परिहारपूर्वक प्रयोजन देखनेमें आता है ॥

यथाहस्तगतविस्मृतसुवर्णादौ तवहस्ते सुवर्णमित्याप्तोपदेशादप्राप्तमिवप्राप्नोति । यथावा वलयितचरणायांरज्जौ सर्पत्वभ्रमवतोनायंसर्प इत्याप्तवाक्यात् परिहृतस्यैवसर्पस्यपरिहारः एवं प्राप्तस्याप्यानंदस्य प्राप्तिः परिहृतस्याप्यनर्थस्य निवृत्तिः मोक्षः प्रयोजनम् ॥

जैसे हाथमें पहरी सुवर्णकी अंगूठीको कार्य्यआन्तरमें प्रवृत्त हुआ पुरुष भूल जाय तो उसके हाथमें देखकर समीपवर्ति दूसरा पुरुष उसको उसीके हाथमें दिखलादे तो उसको वह अंगूठी मानों अप्राप्तसी प्राप्त हुई प्रतीत होती है अथवा जैसे मन्दअन्धकार दशामें किसी मार्ग चलते पुरुषके चरणोंमें अकस्मात् सर्पाकार कोमल रज्जु का वेष्टन हो जाय तो उस पुरुषको उसमें सर्प भ्रम होवे तो समीपवर्ती दूसरा पुरुष उसमें उसको यह निश्चय करादे कि यह सर्प नहीं है किन्तु रज्जु है तो इत्यादि स्थलमें परिहृत स्वरूपही सर्पका परिहार प्रतीत होता है ऐसेही प्रकृतमेंभी नित्यप्राप्त आनन्दस्वरूपहीकी प्राप्ति तथा नित्यनिवृत्तस्वरूप समूल अनर्थहीकी निवृत्तिस्वरूप मोक्षको प्रयोजन कह कह सकते हैं ॥ ९ ॥

स च ज्ञानैकसाध्यः "तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय"इतिश्रुतेः । अज्ञाननिवृत्तेर्ज्ञानैकसाध्यत्वनियमाच्च।तच्चज्ञानं ब्रह्मात्मैक्यगोचरम् । "अभयं वैजनकप्राप्तोसि तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मि" इतिश्रुतेः । "तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं ज्ञानंमोक्षस्यसाधनम्" इति नारदीयवचनाच्च ॥

वह मोक्ष ब्रह्मज्ञानही साध्य है अर्थात् ब्रह्मज्ञानही मोक्षका हेतु है । "उस ब्रह्म स्वरूप आत्माहीको जानकर यह पुरुष (अतिमृत्युं) मृत्युका उलंघन कर सकताहै सिवा इसके और कोई मोक्षका मार्गही नहीं है " इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्त अथमें प्रमाण हैं । बन्ध इस जीवको अज्ञानकृत है और अज्ञानकी निवृत्ति सिवा ज्ञानके उपायान्तरसे होतीही नहीं. इस युक्तिसेभी उक्त अर्थहीकी सिद्धि होतीहै । वह अज्ञान का निवर्तक ज्ञानभी ब्रह्मआत्माकी एकताके अवगाहन करनेवाला होना चाहिये. " हे जनक ! उक्त आत्माको तुमने ब्रह्मरूपसे निश्चय किया तो अभयको प्राप्तहुआ" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन ब्रह्म आत्मएकत्वज्ञानमें प्रमाण हैं । और "तत्त्वमस्यादि वाक्योंसे उत्पन्न हुआ ब्रह्मात्म एकत्वज्ञानही इस जीवकी मोक्षका कारण है" इत्यादि अर्थवाले नारदस्मृतिके वचनभी उक्त अर्थमें प्रमाणी भूतहैं ॥

तच्च ज्ञानमपरोक्षरूपं परोक्षत्वेऽपरोक्षभ्रमनिवर्तकत्वानुपपत्तेः। तच्चापरोक्षज्ञानंतत्त्वमस्यादिवाक्यादितिकेचित् मनननिदिध्यासनसंस्कृतान्तःकरणादेवेत्यपरे।तत्र पूर्वाचार्य्याणामयमाशयः संविदापरोक्ष्यं नकरणविशेषोत्पत्तिंनिबंधनम्, किन्तु प्रमेयविशेषनिबंधनमित्युपपादितम् ॥

वह ब्रह्मात्मएकत्वज्ञान भी अपरोक्षरूपसे विवक्षित है क्योंकि परोक्षज्ञानमें अपरोक्षभ्रमके दूर करनेका सामर्थ्य नहीं है उस अपरोक्ष ज्ञानका प्रादुर्भाव भी कई एकाविद्वान्लोग तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे मानतेहैं । और दूसरे कइ एक विद्वान् लोग मनन तथा निदिध्यासनसे संस्कृत अर्थात् शुद्ध हुए अन्तःकरण हीसे अपरोक्षज्ञानका उद्भव मानतेहैं । इनमें प्रथम तत्त्वमस्यादि वाक्योंसे अपरोक्ष ज्ञान माननेवाले विद्वानोंका अभिप्राय यहहै । कि ज्ञानका अपरोक्ष होना कुछ कारण विशेष उत्पत्तिअधीन नहीं है अर्थात् अमुक २ करण हीसे अपरोक्षज्ञान होताहै अन्यथा नहीं होता, ऐसा नियम नहीं है । किन्तु ज्ञानकी परोक्षता या अपरोक्षता प्रमेयविषयके अधीन होतीहै; इस वार्ताको हम पूर्व प्रत्यक्षपरिच्छेद हीमें सविस्तर कह चुकेहैं ॥

तथाच ब्रह्मणः प्रमातृजीवाभिन्नतयातद्गोचरं शब्दजन्यज्ञानमप्यपरोक्षं, अत एव प्रतर्दनाधिकरणेप्रतर्दनंप्रति "प्राणोस्मिप्रज्ञात्मातं मामायुरमृतमुपास्व" इतीन्द्रप्रोक्तवाक्ये प्राणशब्दस्य

ब्रह्मपरत्वे निश्चिते सति मामुपास्वेत्यस्मच्छब्दानुपपत्तिमाशंक्य तदुत्तरत्वेन प्रवृत्ते "शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशोवामदेववत्" इत्यत्रसूत्रे शास्त्रीया दृष्टिः शास्त्रदृष्टिरितितत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यमहं ब्रह्मेतिज्ञानं दृष्टिशब्देनोक्तमिति ॥

इस रीतिसे जब ज्ञानकी अपरोक्षता प्रमेय विषय विशेष निबन्धन हुई तो ब्रह्मको वस्तुतः प्रमातृजीवसे अभिन्नरूप होनेसे उसको विषय करनेवाला 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यजन्य शाब्दज्ञानभी अपरोक्षही है । शाब्दज्ञानके अपरोक्ष होनेहीसे प्रतर्दनाधिकरणमें अर्थात् शारीरक प्रथम अध्यायके प्रथम पादके "प्राण स्तथाऽनुगमात्" २८ । इत्याकारक सूत्रके "प्राणोऽस्मि" इत्यादि विषयवाक्यमें प्रतर्दनके प्रति इन्द्रने यह कहा कि–" मैं प्राणस्वरूपहूं. मैंही प्रज्ञात्म स्वरूपहूं तथा मैंही आयुः तथा अमृतस्वरूप हूं. ऐसे मुझको हे प्रतर्दन! तूं उपासना कर" इस इन्द्रके कहे वचनमें 'प्राण' शब्दको विचारसे ब्रह्मवाचकत्व निश्चय होनेके पीछे 'मामुपास्व' अर्थात् 'हे प्रतर्दन! तूं मेरी उपासनाकर' इत्याकारक 'अस्मद्' शब्दकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती. भाव यह कि जो ब्रह्म 'प्राण' शब्दका वाच्य है वह 'अस्मद्' शब्दका वाच्य कदापि नहीं हो सकता ऐसी शंका हुई तो इस शंकाके उत्तर रूपसे प्रवृत्त हुआ जो "शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्" ३० यह अग्रिम सूत्र, इस सूत्रमें 'शास्त्रीया दृष्टिः शास्त्रदृष्टिः' अर्थात् 'तत्त्वमसि' आदि शास्त्रसे उत्पन्न होनेवाली जो ' मैं ब्रह्मस्वरूपहूं' इत्याकारिका ब्रह्मात्मविषयक अभेदावगाहिनी बुद्धिः उस बुद्धिहीको दृष्टिशब्दसे कहा है । अर्थात् जैसे वामदेवने शास्त्रदृष्टिसे 'अहं सूर्य्योऽभवमहं मनुः' 'मैंही सूर्य्यरूप हुआ तथा मैंही मनुरूप हुआ ऐसा कहा था वैसेही इन्द्रने भी ब्रह्मात्मके एकत्वके तात्पर्य्यसे प्रतर्दनको 'मामुपास्व' यह वचन कह दिया; इस लिये कुछ दोष नहीं है ॥

अन्येषां त्वयमाशयः–करणविशेषनिबंधनमेव ज्ञानानां प्रत्यक्षत्वम्, नविषयविशेषनिबंधनम् एकस्मिन्नेवसूक्ष्मवस्तुनि पटुकरणापटुकरणयोः प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वव्यवहारदर्शनात् । तथाच संवित्साक्षात्त्वे इन्द्रियजन्यत्वस्यैव प्रयोजकतया नशब्दजन्यज्ञानस्यापरोक्षत्वम् ॥

और दूसरे कई एक आचार्य्य वाचस्पतिमिश्रके अनुयायी विद्वानोंका यह विचार है कि करणविशेष अधीनही ज्ञानमात्रमें प्रत्यक्षता होती हैं किन्तु ज्ञानका प्रत्यक्ष होना विषय विशेष अधीन नहीं है । क्योंकि एकही सूक्ष्मवस्तुका पटुकरण वाले पुरुषको अर्थात् जिसके नेत्रादि इन्द्रिय स्वच्छहों उसको साक्षात्कार होताहै । और जिसके नेत्रादि इन्द्रिय स्वच्छ न हों उसपुरुषको उसवस्तुका साक्षात्कार नहीं होता इसरीतिसे संवित् साक्षात्कारत्वावच्छिन्नके प्रति नियमसे 'इन्द्रियजन्यत्वहीको कारणता होनेसे शब्दजन्यज्ञानमें अपरोक्षता नहीं बनसकती ॥

ब्रह्मसाक्षात्कारेपिमनननिदिध्यासनसंस्कृतं मनएवकरणं"मनसैवानुद्रष्टव्यः" इत्यादिश्रुतेः। मनोऽगम्यत्वश्रुतिश्चासंस्कृतमनोविषया। नचैवम् ,ब्रह्मण औपनिषदत्वानुपपत्तिः अस्मदुक्तमनसोवेदजन्यज्ञानानन्तरमेवप्रवृत्ततयावेदोपजीवितत्त्वात् ॥

एवं ब्रह्मसाक्षात्कारके प्रतिभी मनन तथा निदिध्यासनसे शुद्धहुए मनहीको कारणताहै । "वह परमात्मा मनहीसे देखनेयोग्य है" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्तअर्थमें प्रमाण हैं । (शंका) "यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह" अर्थात् " जिस परमेश्वरको न प्राप्त होकर मनके सहित वाणीवर्ग पीछे चला आताहै " इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनोंकी क्या व्यवस्था होगी ?(समाधान) मनके अविषय कहनेवाले 'यतोवाचो' इत्यादि श्रुतिवचन अशुद्ध मनपर समझने चाहिये । अर्थात् परमात्मा असंस्कृत मनके विषय नहींहै. (शंका) आपका कहा उचित है परन्तु परमेश्वरका तो "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"इत्यादि श्रुतिवचनोंसे केवल उपनिषद्प्रतिपाद्यत्व तथा उपनिषद् एकगम्यत्व श्रवण होताहै. (समाधान) हमारा कहा ब्रह्मात्मविषयक मानसिक साक्षात्कार तो 'तत्त्वमसि' इत्यादि वेदवाक्यजन्य शाब्दबोध होनेसे अनन्तर होताहै इसलिये वेद उपजीवी है अर्थात् वेद उसका सहकारी कारण है ॥

वेदानुपजीविमानांतरगम्यत्वस्यैव वेदगम्यत्वविरोधित्वात् शास्त्रदृष्टिसूत्रमपि ब्रह्मविषयमानसप्रत्यक्षस्य शास्त्रप्रयोजकत्वादुपपद्यते ॥

तदुक्तम्—अपिसंराधनेसूत्राच्छास्त्रार्थध्यानजाप्रमा
शास्त्रदृष्टिर्मतातांतुवेति वाचस्पतिः पर इति ॥ १ ॥

इसलिये जिन अनुमानादि प्रमाणआन्तरोंमें वेद सहकारी कारण नहीं है, उन प्रमाणोंके विषय होना ही ब्रह्मके वेदैकगम्यत्वका विरोधी है । ब्रह्म-विषयक मानसप्रत्यक्षमें शास्त्रको सहकारिकारणता होनेहीसे "शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्" इस सूत्रकी भी व्यवस्था सम्यक् होसकती है । क्योंकि यहां 'शास्त्रदृष्टि' पदसे शास्त्रप्रयोज्य मानसप्रत्यक्षही का ग्रहण है । इसीवार्ता को 'भामती' की व्याख्या कल्पतरुकार श्रीअमलानन्दसरस्वती भी कहते हैं कि, वेदान्तशास्त्रार्थध्यानसे उत्पन्न होनेवाला प्रमाज्ञानही 'शास्त्रदृष्टि' शब्द से माना है अर्थात् "शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्" इस सूत्रगत 'शास्त्र-दृष्टि' शब्दसे अभिमत है । परन्तु उस शास्त्रार्थध्यानसे उत्पन्न होनेवाली शास्त्र-दृष्टिको एक वाचस्पतिमिश्रही अच्छीतरहसे जानते हैं । यदि कहो कि शास्त्रार्थ ध्यानसे उत्पन्न होनेवाली प्रमाहीका नाम 'शास्त्रदृष्टि' है. इसमें प्रमाण क्या है? तो इसका उत्तर यह है कि "अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्" (२४–अ० ३ पा० २) यह शारीरक सूत्रही इसमें प्रमाण है. अर्थ इस सूत्रका यह है कि--संराधन-कालमें भी अर्थात् भक्तिपूर्वक ध्यान प्रणिधानादिके अनुष्ठानकालमें भी प्रत्यक्षअनुमान द्वारा अर्थात् श्रुतिस्मृतिद्वारा निरस्त समस्त प्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप आत्माको योगिलोग देखते हैं अर्थात् साक्षात्कार करते हैं–इति॥ भाव यह कि, इस सूत्रमें सूत्रकारने श्रुतिस्मृतिद्वाराही ब्रह्मात्मविषयक साक्षात्कारका होना योगि-लोगोंको लिखा है इस लिये वाचस्पतिमिश्रका कथन परमप्रमाणिक तथा सयु-क्तिक है ॥

तच्चज्ञानं पापक्षयात् । सचकर्मानुष्ठानादितिपरंपरयाकर्मणां विनियोगः । अत एव "तमेतंवेदानुवचनेन ब्राह्मणाविविदिषंति यज्ञेनदानेनतपसाऽनाशकेन" इत्यादिश्रुतिः, "कषायेकर्मभिः पक्के ततोज्ञानं प्रवर्तते" इत्यादिस्मृतिश्च संगच्छते ॥

वह ब्रह्मात्मएकत्वज्ञान इस पुरुषके पापक्षय होनेसे होता है । इस पुरुषके पापों का क्षय भी विहितकर्मोंके अनुष्ठानसे होता है । इस लिये एवं परंपरा सम्बन्धसे कर्मों का भी ब्रह्मात्मएकत्वज्ञान में उपयोग है । कर्मोंके परंपराविनि-योग होने ही से "उसी इस परमेश्वर को ब्राह्मणलोग वेदोंके पठनपाठनसे जानने की इच्छा करते हैं । तथा यज्ञों से दान से हितमित मेध्यादि अशनरूप अनाशक तपसे जाननेकी इच्छा करते हैं" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन तथा " शुभ कर्मों

द्वारा रागद्वेषरूप काषायके परिपक्व होने से अर्थात् रागद्वेषके शेषावस्थापन्न होनेसे पुरुष में ज्ञान प्रवृत्त होताहै अर्थात् अधिकारी पुरुषमें ब्रह्मआत्मसाक्षात्कारकी योग्यता होती है''इत्यादि अर्थवाले स्मृतिवचन भी संगत हो सकते हैं

एवं श्रवणमननिदिध्यासनान्यपि ज्ञानसाधनानि मैत्रेयी ब्राह्मणे"आत्मावा अरेद्रष्टव्यः"इति दर्शनमनूद्य तत्साधनत्वेन "श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य" इति श्रवणमनननिदिध्यासनानां विधानात् । तत्र श्रवणं नामवेदांतानामद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्यावधारणानुकूलमानसीक्रिया। मननं नाम शब्दावधारितेऽर्थे मानांतरविरोधशंकायां तन्निराकरणानुकूलतर्कात्मज्ञानजनकोमानसोव्यापारः।निदिध्यासनं नाम अनादिदुर्वासनया विषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेभ्योऽपकृष्यात्मविषयकस्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापारः ॥

जैसे कर्मों का तत्त्वज्ञान में उपयोग कहा इसी प्रकार श्रवण मनन तथा निदिध्यासन को भी आत्मज्ञानकी हेतुता है बृहदारण्यकके मैत्रेयी ब्राह्मण में याज्ञवल्क्यने "अरे मैत्रेयि! आत्मा ही एक देखने योग्य है" इत्यादि अर्थवाले वचनों से आत्म दर्शन का अनुवाद करके उसके साधनरूप से "श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यादि वचनों से श्रवण मनन तथा निदिध्यासन का विधान किया है उन में श्रवण नाम वेदान्तवचनोंके अद्वितीयब्रह्म में तात्पर्य्यअवधारणानुकूल मानसी क्रिया विशेष का है । और शब्द से निश्चित किये अर्थ में यदि प्रमाणान्तरके साथ विरोधकी शंका होय तो उस विरोधके निराकरणानुकूल जो तर्क, तादृश तर्क सहकृत आत्मज्ञानजनक मानसव्यापारविशेष का नाम 'मनन' है । एवं अनादि दुर्वासनाओंके वशसे विषयोंमें खैंचे हुए चित्त को विषयों से हटाकर उस चित्तके आत्मविषयक स्थिरीकरणानुकूल मानसव्यापार विशेषका नाम 'निदिध्यासन' है ॥

तत्र निदिध्यासनं ब्रह्मसाक्षात्कारेसाक्षात्कारणं " तेध्यानयोगानुगताअपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढां" इत्यादिश्रुतेः। निदिध्यासने च मननंहेतुः, अकृतमननस्यार्थदार्ढ्याभावेन

तद्विषयेनिदिध्यासनायोगात् ।मनने च श्रवणं हेतुः;श्रवणाभावेतात्पर्यानिश्चयेन शाब्दज्ञानाभावेन श्रुतार्थविषयकयुक्तत्वायुक्तत्वनिश्चयानुकूलमननायोगात् ॥

इनमें निदिध्यासनको ब्रह्मसाक्षात्कारमें साक्षात्कारणता है। "वे योगीलोग ध्यान योगको प्राप्त हुये निर्मलत्वादि स्वगुणोंसे निगूढित अर्थात् व्याप्तदेवात्मशक्तिको देखतेथे" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्तअर्थमें प्रमाण हैं । एवं निदिध्यासनमें मननको कारणता है । क्योंकि जिस अधिकारी पुरुषने मनन नहीं कियाहै उसके हृदयमें अर्थकी दृढताके न होनेसे उस अर्थविषे उस पुरुषका निदिध्यासन कदापि नहीं बनसकता; ऐसेही मननमें श्रवणको कारणता है। क्योंकिजबतक अधिकारी पुरुष श्रवण न करे तबतक उसको तात्पर्य्य निश्चयके न होनेसे शाब्दबोधभी नहीं होता एवं श्रुतअर्थमें युक्तत्वअयुक्तत्वके निश्चयानुकूल मननभी नहीं बनसकता ॥

एतानि त्रीण्यपि ज्ञानोत्पत्तौ कारणानीति केचिदाचार्या ऊचिरे।अपरेतु श्रवणं प्रधानम्।मनननिदिध्यासनयोस्तुश्रवणात्पराचीनयोरपि श्रवणफलब्रह्मदर्शननिर्वर्तकतया आराडुपकारकांगत्वमित्याहुः तदप्यंगत्वं न तार्त्तीयशेषत्वरूपं तस्य श्रुत्याद्यन्यतमप्रमाणगम्यस्य प्रकृते श्रुत्याद्यन्यतमाभावेऽसंभवात् ॥

इस रीतिसे साक्षात् परंपरासम्बन्धसे श्रवणादि तीनोंही आत्मज्ञानकी उत्पत्तिमें कारणीभूत हैं. यह कईएक वाचस्पतिमिश्रानुयायी आचार्य्यलोगोंका कथन है और पञ्चपादिकाकी व्याख्या विवरणकार श्रीप्रकाशात्मयतिका सिद्धान्त तो यह है कि, श्रवणको सबसे प्रधानता है।और मनननिदिध्यासनको तो श्रवणके अनन्तरभावी होनेसेभी श्रवणका फल जो ब्रह्मसाक्षात्कार उस ब्रह्मसाक्षात्कारके सम्पादक होनेसे एक 'आरात्' अर्थात् श्रवणके समीपवर्ति उपकारकत्वेन अंगताहै.यह प्रकृतमें कही मनननिदिध्यासनमें अंगताभी पूर्वमीमांसाके तृतीय अध्यायमें निरूपित 'शेषत्व' रूपा अंगताकी तरह नहीं है । क्योंकि तृतीयअध्यायमें कही 'शेषत्व' रूपा अंगता श्रुतिलिंगादि प्रमाणोंसे जानीजातीहै । और प्रकृतमें मनन निदिध्यासनमें अंगता जाननेकेलिये श्रुतिलिंगादिकोंके न होनेसे तीसरे अध्यायमें कही शेषत्वरूपा अंगताकाभी असंभव है ॥

तथाहि;'व्रीहिभिर्यजेत'दध्नाजुहोति' इत्यादाविवमनननिदिध्या सनयोरंगत्वे न काचित्तृतीयाश्रुतिरस्ति, नापि"बर्हिर्देवसदनं दामि"त्यादिमंत्राणां बर्हिःखंडनप्रकाशनसामर्थ्यवत् किंचि ल्लिंगमस्ति ॥

(तथाहि) उसका प्रकार यहहै कि, जैसे "यजमान व्रीहिसे यजन करे दधिसे यजनकरे"इत्यादि अर्थवाले वचनोंमें निरपेक्षरवस्वरूप तृर्तीया विभक्तिरूपा श्रुति है. वैसेही मनन निदिध्यासनमें अंगताकी बोधक प्रकृतमें कोई तृतीया श्रुति नहीं है । अथवा जैसे " हेबर्हिः दर्भ ! मैं तेरेको देवगृह निर्माणार्थ छेदन करताहूं" इत्यादि अर्थवाले मन्त्रोंसे शब्दोंकी सामर्थ्यहीसे बर्हिः खण्ड प्रकाशन होता है,वैसेही प्रकृतमें कोई शब्दसामर्थ्यरूप लिङ्गभी नहीं है ॥

नापि प्रदेशांतरपठितप्रवर्ग्यस्याग्निष्टोमेप्रवृणक्तीतिवाक्यव च्छ्रवणानुवादेन मनननिदिध्यासनयोःविनियोजकं किंचिद्वा क्यमस्ति नापि'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामोयजेत'इतिवाक्या वगतफलसाधनताकदर्शपूर्णमासप्रकरणे प्रयाजादीनामिव फलसाधनत्वेनावगतस्य श्रवणस्य प्रकरणे मनननिदिध्यास- नयोराम्नानम् ॥

अथवा जैसे प्रदेशआन्तरमें पढ़े हुए 'प्रवर्ग्य' नामक कर्मविशेषमें 'अग्निष्टोमे प्रवृणक्ति' इत्यादि वाक्यद्वारा अग्निष्टोम नामक यागकी अंगता बोधन होती है. वैसेही प्रकृतमें श्रवणके अनुवादसे मनन तथा निदिध्यासनका विनियोजक कोई वाक्य भी नहीं है । अथवा जैसे "स्वर्गकी कामनावाला पुरुष दर्शपूर्णमास नामक यागसे यजन करे" इत्यादि अर्थवाले वाक्यसे दर्शपूर्णमास नामक यागमें जानी हुई स्वर्गरूप फलकी साधनता उसी दर्शपूर्णमासके प्रकरणमें पढे पञ्चप्रयाज तथा पञ्चअनुयाजोंमें भी प्रकरणसे कल्पना कर लीजाती है अर्थात् जैसे किसी एक कर्मबोधक वाक्यमें फलका श्रवण होय और उसी वाक्यके समीपवर्ति उसी प्रकरणमें तत्सहकारी या स्वतन्त्र कर्मबोधक वाक्यान्तरमें फलका श्रवण न होय तो उस कर्ममें उस प्रकरणपठित कर्मके फलहीसे फलवत्ता समझी जाती है. भाव यह कि, जैसे प्रयाजादि कर्मका पृथक् फल कुछ नहीं है; किन्तु दर्शपूर्णमास के

स्वर्गरूप फलहीसे फलवता है परन्तु इसवार्ताका लाभ प्रकरणसे होता है । वैसे प्रकृतमें फलसाधनत्वेन जाने हुए श्रवणके प्रकरणमें मनन तथा निदिध्यासनका पाठ भी नहीं है ॥ १७ ॥

ननु द्रष्टव्य इति दर्शनानुवादेन श्रवणे विहिते सति फलवत्तया श्रवणप्रकरणे तत्सन्निधावाम्नातयोर्मनननिदिध्यासनयोःप्रयाजन्यायेन प्रकरणादेवांगतेति चेत्,न ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्नित्यादि श्रुत्यंतरे ध्यानस्य दर्शनसाधनत्वेनावगतस्यांगाकांक्षायां प्रयाजन्यायेन श्रवणमननयोरेवांगतापत्तेः क्रमसमाख्ये च दूरनिरस्ते ॥

(शंका) 'द्रष्टव्य' इस कथनसे दर्शनके अनुवादसे श्रवण का विधान प्रतीत होता है. एवं फलवाले श्रवणके प्रकरणमें उसीके समीप पठित मनन तथा निदिध्यासनको प्रयाजानुयाज न्यायसे प्रकरणसे ही अंगता होय तो हानि क्या है? (समाधान) ''तेध्यानयोगानुगता अपश्यन्'' अर्थात् ''वे योगीलोग ध्यानयोगपरायण हुए आत्मदशन करते भये '' इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनोंसे ध्यानमें दर्शनसाधनता का निश्चय होता है.एवं यहां भी अंगोंकी आकांक्षा करी जाय तो प्रयाजन्यायसे प्रकरणहीसे श्रवण तथा मनन दोनोंको निदिध्यासनकीही अंगता होनी चाहिये । इसलिये अंगअंगिभाव की कल्पना करनी निरर्थक है । एवं जैसे श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरण का प्रकृतमें कुछ उपयोग नहीं है वैसेही क्रम तथा समाख्याका भी जानलेना अर्थात् क्रमसमाख्याका भी पूर्व प्रमाणोंकी तरह निरास ही समझना ॥

किंचप्रयाजादावंगत्वविचारः सप्रयोजनःपूर्वपक्षेविकृतिषु न प्रयाजाद्यनुष्ठानं सिद्धांते तु तत्रापि तदनुष्ठानमिति प्रकृतेतु श्रवणं न कस्यचित्प्रकृतिः येन मनननिदिध्यासनयोस्तत्राप्यनुष्ठानमंगत्वविचारफलं भवेत् तस्मान्न तार्तीयशेषत्वं मनननिदिध्यासनयोः ॥ १९ ॥

'किञ्च' यहां और भी वक्तव्य है कि प्रयाजादिकों में अंगता का विचार सप्रयोजन है अर्थात् सार्थक है; क्योंकि 'पूर्वपक्ष में' अर्थात् प्रयाजादिकों में दर्श-

पूर्णमासनिरूपित अंगत्वके अभावपक्ष में सौर्य्ययागादि विकृतियोंमें प्रयाजादिका अनुष्ठान नहीं है और सिद्धान्त में तो अर्थात् प्रयाजादिकों में दर्शपूण मास निरूपित अंगत्वपक्ष में तो सौर्य्यादि विकृतियागों में भी प्रयाजादि का अनुष्ठानहै परन्तु प्रकृतमें अर्थात् 'द्रष्टव्य' इत्यादि वाक्य में श्रवण तो किसीकी प्रकृति नहीं है. जो जिस से मनन तथा निदिध्यासन का अनुष्ठान उन श्रवणकी विकृतियोंमें भी अंगत्व विचारके फल को लाभ करे. इसलिये तृतीय अध्याय उक्त 'शेषत्व' अर्थात् अंगता मनन निदिध्यासन में नहीं बन सकती ॥

किंतु यथाघटादिकार्येमृत्पिंडादीनां प्रधानकारणता चक्रादीनां सहकारिकारणतेति प्राधान्याप्राधान्यव्यपदेशः तथा श्रवणमनननिदिध्यासनानामपीति मंतव्यं सूचितं चैतद्विवरणाचार्यैः शक्तितात्पर्यविशिष्टशब्दावधारणं प्रमेयावगमं प्रत्यव्यवधानेनकारणंभवतिप्रमाणस्य प्रमेयावगमंप्रत्यव्यवधानात् ॥

किन्तु जैसे घटादि कार्य्यनिरूपित मृत्पिण्डादिकों में प्रधानकारणता है तथा चक्र चीवरादिको में सहकारी कारणता है. इसरीति से प्राधान्य तथा अप्राधान्य का व्यवहार होता है. वैसे ही श्रवण मनन निदिध्यासनोंमें भी समझ लेना चाहिये अर्थात् श्रवण में आत्मदर्शनके प्रति प्रधानकारणता है तथा मनन निदिध्यासन में सहकारिकारणता है. इसी वार्ता को विवरणाचार्य्य श्रीप्रकाशात्मयतिजीने भी सूचन किया है कि, शक्ति तथा तात्पर्य्यविशिष्ट शब्द का अवधारण अर्थात् निश्चय करना ही प्रमेयविषयक निश्चयके प्रति व्यवधान से रहित कारण है अर्थात् शक्तितात्पर्य्यविशिष्ट शब्द अवधारणके अव्यवहित उत्तर अवश्य प्रमेयविषयक निश्चय ही होता है; क्योंकि प्रमेयविषयक निश्चयत्वावच्छिन्नके प्रति प्रमाण में अव्यवधानरूप से कारणता अवश्य रहती है ॥

मनननिदिध्यासनेतु चित्तस्य प्रत्यगात्मप्रवणता संस्कारपरिनिष्पन्नतदेकाग्रवृत्तिकार्यद्वारेण ब्रह्मानुभवहेतुतां प्रतिपद्यते इति फलंप्रत्यव्यवहितकरणस्य विशिष्टशब्दावधारणस्य व्यवहिते मनननिदिध्यासने तदंगेऽङ्गीक्रियते इति ॥

और मनन तथा निदिध्यासन तो परम्परा अर्थात् अन्तःकरणकी एकाग्र वृत्तिरूप कार्य्यद्वारा ब्रह्मात्मविषयक अनुभवकी हेतुताको प्राप्त होते हैं । वह अन्त

करणकी एकाग्र वृत्तिभी चित्तके प्रत्यगात्मविषयक प्रवाहाकार संस्कारोंसे समुद्भूत होती है । उसी एकाग्रवृत्तिरूप कार्य्यद्वारा ब्रह्मविषयक अनुभवमें मनन निदिध्यासनको भी हेतुता है । एवं ब्रह्मात्मएकत्वरूप फलके प्रति व्यवधानरहित कारणता शक्तितात्पर्य्यविशिष्ट शब्दहीमें निश्चय हुई तो व्यवधानसे उपयुक्त होनेवाले मनन तथा निदिध्यासनमें श्रवणकी अंगता अंगीकार करी है–इति। 'अंगीक्रियेते' यहांतक विवरणके पाठकी आनुपूर्वी है

श्रवणादिषु च मुमुक्षूणामधिकारः काम्ये कर्मणि फलकामस्याधिकारित्वात् । मुमुक्षायांच नित्यानित्यवस्तुविवेकस्येहासुत्रार्थफलभोगविरागस्य शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धानां च विनियोगः ॥

उन पूर्वउक्त श्रवणआदिकोंमें मुमुक्षुका अर्थात् मुक्त होनेकी इच्छावाले अधिकारी पुरुष का अधिकार है । क्योंकि ततूतत् काम्यकर्ममें ततूतत्फलकी कामनावाले पुरुषही का अधिकार होता है । अर्थात् मोक्षरूप फलकी कामनासे करे हुए श्रवणादिकभी काम्य ही हैं । एवं मुमुक्षामें अर्थात् मुक्त होनेकी इच्छा में नित्य अनित्यवस्तुके विवेकका, इसलोकमें तथा स्वर्गादिमें होनेवाले जो फल भोग, उन फलभोगोंके विरागका शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, तथा श्रद्धा का उपयोग है ॥

अंतरिंद्रियनिग्रहः शमः, बहिरिंद्रियनिग्रहो दमः, विक्षेपाभाव उपरतिः, शीतोष्णादिद्वंद्वसहनंतितिक्षा, चित्तैकाग्र्यं समाधानं गुरुवेदान्तवाक्ये विश्वासः श्रद्धा, अत्रोपरमशब्देन संन्यासोऽभिधीयते । तथाच संन्यासिनामेव श्रवणाधिकार इति केचित्। अपरेतु उपरमशब्दस्य संन्यासवाचकत्वाभावाद्विक्षेपाभावमात्रस्य गृहस्थेष्वपि संभवात् जनकादेरपि ब्रह्मविचारस्य श्रूयमाणत्वात्सर्वाश्रमसाधारणं श्रवणादिविधानमित्याहुः ॥

उनमें अभ्यन्तरीय मनोरूप इन्द्रियके निग्रहणका नाम 'शम' हैं । चक्षुरादि बाह्यइन्द्रियनिग्रह का 'नाम' दम है । विक्षेपके न होने का नाम 'उपरति' है । शीत उष्णादि द्वंद्व के सहन का नाम 'तितिक्षा' है । चित्तकी एकाग्रता का

नाम 'समाधान' है ।गुरु तथा वेदान्तवाक्योंमें विश्वासका नाम 'श्रद्धा' है।यहांकईएक संन्यासीलोगोंका यह मन्तव्य है कि ' उपरम ' शब्दसे यहां संन्यासआश्रमका ग्रहण है. इसलिये संन्यासी लोगोंहीका श्रवणादिमें अधिकार है दूसरेका, नहीं है; और अपरशब्दसे ग्रहीत वाचस्पतिमिश्र तो यह कहतेहैं कि,उपरमबोधक उपरति शब्दको संन्यासवाचकत्वही नहीं है किन्तु विक्षेपके अभावमात्रका बोधक ' उपरम ' शब्द वनसकताहै सो विक्षेपाभाव मात्रका सम्भव गृहस्थपुरुषमेंभी होसकताहै क्योंकि राजा जनकादि गृहस्थोंकोभी ब्रह्मात्मविचारका होना श्रुतिसे श्रवण होताहै इसलिये श्रवणादिका विधान सर्वआश्रम साधारण पुरुषमात्रको समझना चाहिये ॥ २३ ॥

सगुणोपासनमपि चित्तैकाग्र्यद्वारा निर्विशेषब्रह्मसाक्षात्कारेहेतुः ।

तदुक्तम्-

निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः ॥
ये मंदास्तेऽनुकंप्यंते सविशेषनिरूपणैः ॥ १ ॥
वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात् ॥
तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम् ॥ २ ॥ इति ॥

एवं सगुण ब्रह्मकी उपासना करनेवाले उपासक पुरुषोंकोभी सगुण उपासना, चित्तकी एकाग्रता द्वारा निर्विशेष ब्रह्मसाक्षात्कारमें कारणीभूता है । इसी वार्ताको कल्पतरुकार श्रीअमलानन्दस्वामीनेभी कहाहै कि, निर्विशेष परब्रह्मके साक्षात्कार करनेमें जो अल्पबुद्धिवाले लोग असमर्थ हैं उनही पर दयादृष्टि करते हुये आचार्य्य लोगोंने सविशेष अर्थात् सगुण ब्रह्मका निरूपण कियाहै ॥ १ ॥ एवं सगुण ब्रह्मके परिशीलनसे उपासक पुरुषोंका मन वशीभूत होजाताहै पश्चात् वही सगुणब्रह्म कल्पितउपाधिसे विनिर्मुक्त होकर उन उपासकलोगोंको साक्षात् आविर्भूत होताहै अर्थात् स्वात्माभिन्नरूपेण बोधविषयीभूत होताहै ॥ २ ॥ इति॥

सगुणोपासकानां चार्चिरादिमार्गेण ब्रह्मलोकगतानां तत्रैव श्रवणाद्युत्पन्नतत्त्वसाक्षात्काराणां ब्रह्मणा सह मोक्षः । कर्मिणांतु धूमादिमार्गेणपितृलोकगतानामुपभोगेन कर्मक्षये सति पूर्वकृतसुकृतदुःष्कृतानुसारेण ब्रह्मादिस्थावरांतेषु पुनरुत्पत्तिः,

तथाच श्रुतिः "रमणीयचरणा रमणीयां योनिमापद्यंते कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते" इति ॥

एवंभूत उक्त सगुणब्रह्मके उपासक लोग 'अर्चिः'आदि मार्गद्वारा ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं. वहां ब्रह्मलोक ही में उन को श्रवण मननादि होकर ब्रह्मतत्त्वसाक्षात्कार होताहै.शेषमें ब्रह्माकी आयु शेष होनेसे उन सगुण ब्रह्मके उपासकोंका भी ब्रह्माके साथ ही मोक्ष होता है. जिस मार्ग में अग्नि वायु आदिके अधिष्ठातृ देवता उक्त उपासक को लेजानेवाले हों ऐसे मार्ग का नाम 'अर्चिरादिमार्ग'[1] है तथा उसी को 'देवयानमार्ग' भी कहते हैं, एवं यज्ञ होम सन्ध्या वन्दनादि विहितकर्म्म करनेवाले अधिकारी लोग, धूममार्ग[2]से पितृलोग अर्थात् स्वर्गलोकमें प्राप्त होते हैं. वहां अनेकप्रकारके भोगोंके अनुभवके पश्चात् पुण्यरूप कर्मोंके क्षय होनेसे पूर्वजन्मकृत पापपुण्योंके अनुसार ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्य्यन्त का फिर जहां तहाँ जन्म होता है. इसीवार्ताको "शुभ आचरणोंवाले अधिकारी लोग शुभगतिको प्राप्त होते हैं तथा अशुभ आचरणोंवाले अनधिकारी लोग अशुभगतिको प्राप्त होते हैं" इत्यादि अर्थवाली श्रुतिभी कहती है ॥

प्रतिषिद्धानुष्ठायिनां तु रौरवादिनरकविशेषेषु तत्तत्पापोपचिततीव्रदुःखमनुभूय श्वशूकरादितिर्यग्योनिषु स्थावरादिषु चोत्पत्तिरित्यलंप्रसंगादागतप्रपञ्चेनेति ॥

---

१ उपासक पुरुषका उत्तरायणमार्गसे गमनका क्रम यह है कि सबसे प्रथम अर्चिःअभिमानी देवताको प्राप्त होता है १ । ततःपश्चात् दिनके अभिमानी देवताको २ । उसके पीछे शुक्लपक्षाभिमानी देवताको ३ । उसके पीछे षण्मासाभिमानी अर्थात् उत्तरायणाभिमानी देवताको ४ । उसके पीछे वर्ष अर्थात् संवत्सराभिमानी देवताको ५ । उसके पीछे देवलोकाभिमानी देवताको ६ । उसके पीछे वायुलोकमें ७ । उससे पीछे सूर्यलोकमें ८ । उससे पीछे चन्द्रलोकमें९ । उससे पीछे विद्युत्लोकमें १० । उससे पीछे वरुणलोकमें ११ । उससे पीछे इन्द्रलोकमें १२ । उससे पीछे प्रजापतिलोकमें १३ । उससे पीछे ब्रह्मलोकमें प्राप्त होता है । यहां सर्वत्र 'लोक' शब्दसे तदभिमानी देवताओंका ग्रहण है । वह तत्तत् लोकाभिमानी देवता उस उपासक पुरुषको अपनेसे अगले २ लोकमें सन्मानपूर्वक पहुँचा देतेहैं ।

२ एवं विहित कर्मकर्ता पुरुष सबसे पहले धूमअभिमानी देवताके लोकमें प्राप्त होता है १ । उससे पीछे रात्रीअभिमानी देवताके लोकमें २ । उससे पीछे कृष्णपक्षाभिमानी देवताके लोकमें ३ । उससे पीछे दक्षिणायनाभिमानी देवताके लोकमें ४ । उससे पीछे पितृलोकमें ५ । उससे पीछे अन्तरिक्षाभिमानी देवताके लोकमें ६ । उससे पीछे चन्द्रलोकमें प्राप्त होताहै ७ ।

एवं वेदप्रतिषिद्ध कर्मोंके अनुष्ठान करनेवाले पापी लोगोंका तो रौरवादि नामक तत्तत् नरक विशेषोंमें गमन होता है। वहां अनेकविध तत्तत् पापकर्मोंसे प्राप्त तत्तत् दुःखोंको भोगकर अन्तमें सर्पसूकरादि तिर्यग्योनियोंमें अथवा वृक्ष लतादि स्थावर योनियोंमें जन्म लेते हैं—इति इस प्रसंगसे प्राप्त निरूपण को हम यहांहीं समाप्त करतेहैं।

निर्गुणब्रह्मसाक्षात्कारवतस्तु न लोकांतरगमनं"नतस्यप्राणाउत्क्रामंति"इतिश्रुतेः।किन्तु यावत्प्रारब्धकर्मक्षयं सुखदुःखे अनुभूय पश्चादपवृज्यते ॥

एवं निर्गुण ब्रह्म साक्षात्कारवाले आत्मज्ञानी पुरुष की लोकान्तरमें गति नहीं होती है. "उस विद्वान्आत्मज्ञानी पुरुषके प्राण उत्क्रमण अर्थात् लोकान्तरमें गमनको प्राप्त नहीं होते हैं" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचन उक्त अर्थमें प्रमाण हैं. भाव यह कि, आत्मज्ञानी पुरुष वर्तमान शरीरको त्यागकर लोकान्तरको प्राप्त नहीं होता किन्तु अपने प्रारब्धकर्मोंके क्षय पर्य्यन्त प्राप्त सुखदुःखको भोगकर पश्चात् अन्तमें विदेह-कैवल्यको प्राप्त होता है ॥

ननु "क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" इत्यादि श्रुत्या "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" इत्यादि स्मृत्या च ज्ञानस्य सकलकर्मक्षयहेतुत्वनिश्चये सति प्रारब्धकर्मावस्थानमनुपपन्नमितिचेत्,न,तस्य तावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्येथसंपत्स्ये इत्यादिश्रुत्या"नाभुक्तंक्षीयते कर्म"इत्यादि स्मृत्याचोत्पादितकार्यकर्मव्यतिरिक्तानां संचितकर्मणामेव ज्ञानविनाशित्वावगमात् ॥

(शंका) "उस परावरपरमात्माके दर्शन से इस विद्वान् पुरुषके यावत् कर्मों का क्षय होता है" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनों से तथा " हे अर्जुन! प्रज्वलित अग्नि जैसे यावत् काष्ठको जलाकर भस्म करता है वैसेही आत्मज्ञानरूप प्रज्वलित अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्मीभूत करता है"इत्यादि अर्थवाले स्मृतिवचनों से ब्रह्मात्मएकत्वज्ञान में सम्पूर्णकर्मक्षय हेतुता निश्चय होती है; इसलिये प्रारब्ध कर्माकी स्थिति माननी उचित नहीं है. (समाधान) "उस आत्मज्ञानी विद्वान्के विदेहकैवल्य में तबतक ही विलम्ब है जबतक प्रारब्धकर्मों का शेष नहीं होता

अर्थात् जबतक उसके प्रारब्ध कर्म भुक्त नहीं लेते(अथ)प्रारब्ध कर्मभोगके अनन्तर आत्मज्ञानी पुरुष विदेहकैवल्य को प्राप्त होता है" इत्यादि अर्थवाले श्रुतिवचनों से तथा "शतकोटि कल्पोंके व्यतीत होनेसे भी भोग विना कर्मों का क्षय नहीं होता" इत्यादि अर्थवाले स्मृतिवचनों से जो कर्मभोग रूप कार्य्य को उत्पन्न कर चुके हैं अर्थात् जिन कर्मों को भोगोन्मुखता हो चुकी है उन प्रारब्ध कर्मों से व्यतिरिक्त संचित कर्मों ही का आत्मज्ञान से विनाश बोधन होता है ॥

संचितं द्विविधं, सुकृतं दुष्कृतंचेति। तथाच श्रुतिः "तस्य पुत्रा दायमुपयंति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषंतः पापकृत्याम्" इति। ननु ब्रह्मज्ञानान्मूलाज्ञाननिवृत्तौ तत्कार्यप्रारब्धकर्मणोपि निवृत्तिः कथं ज्ञानिनोदेहधारणमुपपद्यते इति चेत्, न, अप्रतिबद्धज्ञानस्यैवाज्ञाननिवर्तकतया प्रारब्धकर्मरूपप्रतिबंधकदशायामज्ञाननिवृत्तेरनंगीकारात् ॥

वह संचितकर्मभी दो प्रकारका है; एक सुकृत है, दूसरा दुष्कृत है । " उस आत्मज्ञानी विद्वान् पुरुषके पुत्र, उसके दायभाग अर्थात् धनसम्पत्तिके भागी होतेहैं. सुहृद् अर्थात् उसके प्रेमीलोग उसके क्रियमाण शुभकर्मोंके भागी होतेहैं. एवं उसके द्वेषीलोग उसके क्रियमाण अशुभकर्मोंके भागी होतेहैं " इत्यादि अर्थवाला श्रुति वचन उक्त अर्थमें प्रमाण है. (शंका) ब्रह्मात्मएकत्वज्ञानसे मूलअज्ञानकी निवृत्ति होनेसे मूलाज्ञानके कार्य्यरूप प्रारब्धकर्मोंकीभी निवृत्ति हुई तो पीछे आत्मज्ञानी पुरुषका शरीर धारण कैसे बनसकताहै? (समाधान) अप्रतिबद्ध आत्मज्ञानकोही अज्ञाननिवर्तकता स्वीकार करीहै और प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबन्धकके विद्यमान होनेसे आत्मज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति हमको अंगीकार नहींहै। भाव यह कि, पारमार्थिक व्यावहारिक तथा प्रातिभासिकसत्ताके भेदसे पदार्थोंकी सत्ता तीन प्रकारकीहै. उनमें आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुषोंके तत्त्वसाक्षात्कारसे पदार्थोंमें पारमार्थिकत्व तथा व्यावहारिकत्व सम्पादन करनेवाली अज्ञानशक्तिके विनाश होनेसेभी प्रातिभासिकत्वके सम्पादन करनेवाली अज्ञान की शक्तिविशेषके विनाश न होनेसे आत्मज्ञानी पुरुषका देहादिधारण बनसकताहै ॥

नन्वेवमपि तत्त्वज्ञानादेकस्य मुक्तौ सर्वमुक्तिः स्यात् अविद्याया एकत्वेन तन्निवृत्तौ क्वचिदपि संसारायोगादिति चेत्, न, ॥ इष्टापत्तेरित्येके । अपरेत्वेतद्दोषपरिहाराय "इन्द्रोमायाभिः"

इतिबहुवचनश्रुत्यनुगृहीतमविद्यानानात्वमंगीकर्तव्यमित्याहुः ॥

(शंका) आपके पूर्वोक्त मन्तव्यसेभी आत्मज्ञानसे एकके मुक्त होनेसे सबकी मुक्तिहोनी चाहिये क्योंकि आपके पूर्व प्रतिपादित सिद्धान्तानुसार अविद्याके एक होनेसे आत्मज्ञान द्वारा उसके विनाश होनेसे पीछे कहींभी संसार नहीं होना चाहिये. (समाधान) कईएक विद्वान् लोग आपके कहे को अंगीकारही करतेहैं। अर्थात् एकजीववादके सिद्धान्तसे उसके अज्ञान निवृत्त होनेके पश्चात् संसार नहीं ही रहता यह हमको इष्टहीहै ॥ और दूसरे विद्वान्लोग तो इसदोष परिहारके लिये " इन्द्रोमायाभिः " इसश्रुतिमें होनेवाले बहुवचनके बलसे अविद्याहीको नाना मानतेहैं अर्थात् अविद्या नाना हैं जिसकी अविद्या आत्मज्ञानसे निवृत्तहोतीहै वह मुक्त होता है शेष बद्ध रहते हैं. एवं एक मुक्त होनेहीसे सर्वमुक्त प्रसक्तिरूप दोषनहीं है ॥

अन्येत्वेकैवाविद्या तस्या एवाविद्याया जीवभेदेन ब्रह्मस्वरूपावरणशक्तयो नाना तथाच यस्य ब्रह्मज्ञानं तस्य ब्रह्मस्वरूपावरणशक्तिविशिष्टाविद्यानाशः नत्वन्यं प्रति ब्रह्मस्वरूपावरणशक्तिविशिष्टाविद्यानाश इत्यभ्युपगमात् नैकमुक्तौ सर्वमुक्तिः ॥

और कई एक विद्वान्लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि अविद्या एकही है । उसी एक अविद्याकि आं जीवोंके भेदसे ब्रह्मके स्वरूपको आवरण करनेवाली शक्तियां नाना हैं. इसपक्षमें जिस जीवको ब्रह्मात्मएकता ज्ञान हुआ है उसकी ब्रह्मस्वरूपके आवरण करनेवाली अविद्याशक्तिका विनाश हुआ है दूसरेकी ब्रह्मस्वरूपके आवरण करनेवाली अविद्याशक्तिका विनाश नहीं हुआ ऐसा स्वीकार करसकते हैं. इसरीतिकी कल्पना करनेसे एककी मुक्ति होनेसे सर्वकी मुक्तिप्रसक्तिरूप दोष नहीं है ॥

अत एव "यावदधिकारमवस्थितिरधिकारिकाणाम्" इत्यस्मिन्नधिकरणेधिकारिपुरुषाणामुत्पन्नतत्त्वज्ञानानामिन्द्रादीनांदेहधारणानुपपत्तिमाशंक्याधिकारापादकप्रारब्धकर्मसमाप्त्यनन्तरं विदेहकैवल्यमितिसिद्धांतितम् ॥

एवं एकके मुक्त होनेसे सर्वके मुक्त होनेकी प्रसक्तिके अभावहीसे "व्यास

सिष्ठादि अधिकारी कारकलोगोंकी यावत् अधिकार अवस्थिति अर्थात् जबतक उनको परमात्माकी तरफसे सृष्टिशासन करनेका अधिकार मिला है तबतक उनके आत्मज्ञानी होनेसे भी उनकी संसारमें अवस्थिति बनसकती है" इत्याकारक अर्थवाले शारीरक तीसरे अध्याय के तीसरे पादके ३२– सूत्रमें उत्पन्न हुए तत्त्वज्ञानवाले इन्द्रादि अधिकारी पुरुषोंको देहधारणकी अनुपपत्तिकी शंका करके अधिकारके सम्पादक प्रारब्धकर्मोंकी समाप्तिके अनन्तर विदेहकैवल्यकी प्राप्तिका सिद्धान्त कियाहै ॥

तदुक्तमाचार्य्यवाचस्पतिमिश्रैः–
उपासनादिसंसिद्धितोषितेश्वरचोदितम् ॥
अधिकारंसमाप्यैते प्रविशंति परंपदम् ॥ १ ॥ इति ॥

एतच्चैकमुक्तौ सर्वमुक्तिरिति पक्षेनोपपद्यते तस्मादेकाविद्या पक्षेपि प्रतिजीवमावरणभेदोपगमेन व्यवस्थोपपादनीया।तदेवं ब्रह्मज्ञानान्मोक्षः सचानर्थनिवृत्तिर्निरतिशयब्रह्मानंदावाप्तिश्चेति सिद्धं प्रयोजनम् ॥

इति श्रीधर्म्मराजदीक्षितविरचितायां वेदान्तपरिभाषाया मष्टमप्रयोजनपरिच्छेदः समाप्तः ॥ ८ ॥

इसी वार्ताको आचार्य्य वाचस्पतिमिश्रजीने भी कहा है कि "अनेक प्रकार की उपासनादि संसिद्धिसे तोषित अर्थात् प्रसन्न किया जो ईश्वर उस ईश्वरके प्रदान किये अधिकारको समाप्त करके ये अधिकारी लोग अन्तमेंपरमपदको प्राप्त होतेहैं" इस प्रकारका वाचस्पतिमिश्रका कथन एककी मुक्ति होनेसे सर्वकी मुक्ति होतीहै इसपक्षमें नहीं बनसकता इसलिये एक अविद्या स्वीकार पक्षमें भी प्रतिजीव आवरणके भेद माननेसे व्यवस्थाका उपपादन करना चाहिये. एवं पूर्वोक्त प्रकारसे ब्रह्मात्मएकत्वज्ञानसे मोक्ष होताहै, वह मोक्ष समूल अनर्थकी निवृत्ति तथा निरतिशय ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिस्वरूप है, इस रीतिसे यही वेदान्तोंका प्रयोजन सिद्ध होताहै.

यत्पादपांसुसम्पर्कादगा नागाः खगादयः ॥
लेभिरे सुगतिं तस्मै जानकीपतये नमः ॥ १ ॥
त्वामिव कोपि परोपकृतौ कृती न ददृशे न गुरो किल शुश्रुवे ॥

शरणमेष गतोऽस्ति विचार्य्य तां करुणया करुणामय पाहि माम् ॥ २ ॥
नानावादिविवादबाहुविकले म्लेच्छैः समाक्रोशिते ॥
धर्मे को नु भविष्यतीह शरणं दीनैकसंवत्सलः ॥
इत्येवं विवशं विचारबहुलं संवीक्ष्य चार्य्यान्वयम् ॥
यो भेजे नृतनुं भजेह तमजं श्रीदैशिकं नानकम् ॥ ३ ॥
बोधो विभूतिर्विनयो बलश्च लोकोत्तरं रूपमथो गुरुत्वम् ॥
आश्रित्य यश्चेह गतानि नोऽन्यं गोविन्दसिंहं गुरुमाश्रयेतम् ॥ ४ ॥
येषां यशःशीतकरो दिगन्तं प्राप्तोऽपि लोके लभते न चास्तम् ॥
ते सर्वशास्त्रैकविदां वरिष्ठा वन्द्याः सदा स्युर्गुरुराममिश्राः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्दुःखभञ्जन्याश्रमाधिपतिनिर्मलोदग्रपूज्यपादश्रीठाकुरनिहालसिंहपाद पाथोजभैष्यगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषा विभूषितवेदान्तपरिभाषा प्रकाशे प्रयोजनपरिच्छेदः ॥ ८ ॥

इति वेदान्तपरिभाषा भाषाटीकासहिता समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, खेतवाड़ी—बंबई.